सम्पादक—
पं. पूर्णचन्द्रजी दक न्यायतीर्थ

प्रकाशक—श्री जैन हितेच्छु श्रावक-मंडल रतलाम [म. भा.

मुद्रक—
कृष्णकान्त जैन
व्यवस्थापक
लोकराज प्रिं. प्रेस, लि. रतलाम

व्याख्यान सार-संग्रह पुस्तक-माला का २६ वां पुण्प

श्री मज्जवाहिराचार्य

के

राजकोट-व्याख्यान

सम्पादक

श्री जैन हितेच्छु श्रावक मण्डल, रतलाम.

की तरफ से

पं. पूर्णचंद्रजी दक न्यायतीर्थ

प्रकाशक—

श्री साधुमार्गी जैन,

पूज्य श्री हूक्मीचन्दजी महाराज की सम्प्रदाय का

श्री जैन हितेच्छु श्रावक मण्डल

रतलाम (म. भा.)

मुद्रक—

कृष्णाकान्त जैन

प्रथमावृत्ति १०००

मूल्य १।) रुपया

वि. सम्वत् २००८

जवाहर साहित्य के प्राप्ति स्थानः--

(१) श्री जैन हितेच्छु श्रावक मण्डल, रतलाम।
(२) श्री जैन जवाहर मित्र मण्डल व्यावर (राजस्थान)
(३) श्री जवाहर विद्यापीठ भीनासर (बीकानेर)
(४) श्री सेठीया जैन पारमार्थिक संस्था बीकानेर
(५) श्री जैन नवयुवक मण्डल, कान्धला (मुजफ़्फरनगर)

श्री जैन हितेच्छु श्रावक मण्डल, रतलाम

का

परिचय

पदाधिकारी

प्रेसीडेन्ट—श्रीमान सेठ हीरालालजी नांदेचा।
वा. प्रे.— ,, वालचन्दजी श्रीश्रीमाल।
खजांची— ,, सेठ वदीचन्दजी वर्धभानजी पीतलीया।
सेक्रेटरी— ,, सुजानमल गादिया।

चालू प्रवृत्तियां

(१) श्री धार्मिक परीक्षा बोर्ड का संचालन।
(२) शिक्षण संस्थाओं का संचालन
(३) निवेदन पत्र का सम्पादन एवं प्रकाशन
(४) साहित्य का सम्पादन एवं प्रकाशन
(५) न्यायपूर्ण, सरल,सत्य सिद्धांतों का प्रचार

सदस्य

रूपे ५०१) से अधिक एक मुश्त देने वाले वंश परम्परा के सदस्य

रूपे १०१) से अधिक ५००) तक एक मुश्त देने वाले आजीवन सदस्य

,, २) वार्षिक शुल्क देनेवाले वार्षिक सदस्य माने जाते हैं।

प्रकरण सूची

दो-शब्द

श्री मज्जैनाचार्य स्वर्गीय पूज्य श्री १००८ श्री जवाहिर-लालजी महाराज साहब के संग्राहित व्याख्यानों के आधार पर २८ पुष्प तो मंडल पहले प्रकट कर चुका है। अब यह २९ वां पुष्प 'राजकोट व्याख्यान भाग दूसरा' पाठकों के करकमलों में पहुंचाते हुए अतीव प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है।

राजकोट चातुर्मास के व्याख्यान कुछ तो श्री जवाहिर किरणावली के सातवें भाग में प्रकाशित किये हैं, दस व्याख्यान २७ वें पुष्प में प्रकाशित किये जा चुके हैं। और इसके बाद के ग्यारह व्याख्यान इस पुस्तक में प्रकाशित किये जा रहे हैं। ये व्याख्यान अत्यन्त शिक्षाप्रद एवं सार्वजनिक हैं।

आंजकल सभी स्थानों पर मुनिराज व महासतियों के चातुर्मास हो नहीं सकते हैं, इसलिये ऐसे खाली क्षेत्र वालों को ऐसी पुस्तकें मंगाकर इन उपदेशों द्वारा अपनी धर्म भावनाओं को जागृत एवं पुष्ट बनाये रखना अधिक हितकर होगा। आशा है पाठक पूज्य श्री के विचारों का पूरा २ लाभ उठा कर अपने जीवन को सफल बनावेंगे।

यद्यपि राजकोट चातुर्मास के व्याख्यानों से भी सनाथ अनाथ निर्णय एवं सुदर्शन चरित्र पृथक पुस्तक के रूप में पहले प्रकाशित हो चुके हैं। किन्तु उनमें विषय का विभाजन हो जाने से वे तद्विषयक उपयोगी है और ये व्याख्यान सर्व

विषयोपयोगी होने से जिनको व्याख्यानों की रुची है वे इस साहित्य से लाभ उठावें।

आजकल कागज की इस मंहगाई के समय में तथा छपाई का दर बढ़ने पर भी इस ३०० पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य सिर्फ १।) रु. रखा गया है ताकि साधारण जनता भी इसका लाभ उठा सके और धर्म का प्रचार अधिक हो।

यहां पर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि पूज्य श्री जो व्याख्यान फरमाते थे वे साधु भाषा में ही होते थे। फिर भी संग्राहक या सम्पादक द्वारा, भाषा एवं भाव सम्बन्धी भूल हो गई हो तो ऐसी भूल के लिये संग्राहक और सम्पादक ही उत्तरदायी हैं, न कि पूज्य श्री। अतः जो महानुभव हमें ऐसी भूलें बतावेंगे हम उनका आभार मानेंगे और आगामी संस्करण में उस त्रुटि को निकालने का यथा शक्य प्रयत्न करेंगे। इत्यलम्

रतलाम
आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा
सं. २००८ वि.

भवदीयः—
बालचंद श्री श्रीमाल हीरालाल नांदेचा
वाइसप्रेसिडेन्ट, प्रेसिडेन्ट

श्री साधुमार्गी जैन पूज्य श्री हुक्मीचंदजी
महाराज की सम्प्रदाय का
श्री जैन हितेच्छु श्रावक मंडल
रतलाम (मध्य भारत)

११

आत्म साक्षी से निर्णय करो

श्री जिन अजित नमूं जयकारी, तू देवन को देवजी,
जित शत्रु राजाने विजया रानी को आतम जात स्वमेवजी।
श्री जिन अजित नमो जयकारी ॥ १ ॥

प्रार्थना--

यह भगवान् अजित नाथ की प्रार्थना है। भगवान् अजित-नाथ के नाम के विषय में भक्त लोग बहुत बड़ी कल्पनाएँ करते हैं। उनकी प्रार्थना में महापुरुष आनन्ददायी विचार देखते हैं। और उनसे बहुत बड़ी आशायें रखते हैं।

भगवान् की प्रार्थना में उनका एक विशेषण जयकारी भी है। अजित नाथ जयवन्त हैं। उन्होंने अपनी आत्मा में रहे हुए काम क्रोध लोभ मोह मत्सर आदि शत्रुओं को जीत लिया है जो शत्रु अनन्त काल से उनकी उन्नति में बाधक थे और कष्ट दिया करते थे।

भगवान् अपने अन्तरंग शत्रुओं को जीतकर स्वयं देवों के भी देव बन गये और जगत् जीवों के लिए भी देवाधिदेव बनने का मार्ग प्रशस्त बना गये। इसी मार्ग से अर्थात अन्तरंग शत्रुओं को जीतने से आत्मा का परम कल्याण हो सकता है। काम क्रोधादि दुर्गुण आत्मा में रहे हुए गुणों को दबा रहे हैं। आत्मा का दूसरा कोई शत्रु नहीं है। ये दुर्गुण ही वास्तविक शत्रु हैं।

आप लोग देवों की सेवा करने के लिए दौड़े जाते हो किन्तु यदि अपने भीतर में रहे हुए काम क्रोधादि शत्रुओ को जीत लोगे तो देव स्वयं आपके चरणों में गिरने के लिए तत्पर रहेंगे। शास्त्र में कहा है—

देवा वि तं नमंसंति जस्स धम्मे सया मणो।

जिसका मन सदा धर्म मे लीन रहता है उसको देवता लोग भी नमस्कार करते हैं। देवता आपको नमस्कार करने के लिए उत्सुक हैं यदि आप विषय विकार और काम क्रोध को जीत लेते हैं। किन्तु खेद है कि आप देवों के देव न बनकर देवों के दास बन रहे हैं। देवों से भीख मांगते हैं, उनकी मिन्नतें मानते हैं।

बाहर के देवों के पास भटकते फिरते हैं किन्तु अपने भीतर अनन्त शक्तियां छिपी पड़ी हैं उनको प्रकट करने की कोशिश नहीं करते।

आज से पर्वाधिराज पर्यूषण पर्व आरम्भ होता है। यह पर्व आत्मा में रहे हुए क्रोधादि शत्रुओं को जीतने के लिए है।

ः इन दिनों भगवान् अजितनाथ को इस प्रकार भजो कि
ससे भीतरी शत्रुओं को जीत सको। केवल कहने में ही न
ो मगर कुछ करो भी। शास्त्र में कहा है—

वाया वीरियमित्तेणं समासासेन्ति अप्पयं।

यानी वाक्शूर न बनकर कर्मशूर बनो। केवल बड़ी बड़ी
तें करके अपनी आत्मा को सन्तुष्ट न करो। बातों से काम
ीं चलेगा। क्रिया किये बगैर आत्मा का उद्धार नहीं हो
कता। एक भक्त कहता है--

न्थड़ो निहारूंरे बीजा जिन तणारे अजित अजित गुणधाम।
ते जित्या तिणहूं जीतियो रे पुरुष किसो मुझ नाम ॥ पंथड़ो ॥

हे प्रभो! जिन क्रोधादि शत्रुओं को आपने जीत लिया है
आप से हार खाकर मुझ पर हमला कर रहे हैं। जिस प्रकार
ा हुआ कुत्ता किसी बड़े कुत्ते से पराजित होकर छोटे कुत्ते
अपना बल अजमाता है और अपनी हार छीपाता है। उसी
ार आप से हार खाकर ये काम क्रोध और ईर्ष्या द्वेष मुझ
हमला कर रहे हैं। मुझे जीतकर अपनी झेंप मिटाना चाहते
प्रभो। मैं कैसा पुरुष हूं कि तेरे से हारे हुए शत्रु मुझे
ाना चाहते हैं। मैं तेरा दास हूं अतः मुझे भी हारना तो न
हेए।

भगवन्! मैं इस विषम काल में पैदा हुआ हूं अतः विकारों
जीतना बड़ा कठिन मालूम होता है। दूसरी बात मेरे पास

केवल चमड़े की आंखे हैं जो कभी कभी धोखा भी दे दिया करती हैं।

चरम नयन करी मारग जोवतां रे, भूल्यो सगलो संसार।
जे नयन करी मारग जोइये रे नयन ते दिव्य विचार॥

हे अन्तर्यामी। चर्म चक्षुओं से मार्ग देखकर चलता हूं अतः संसार में भटक रहा हूं। चमड़े की आखों से देखी हुई वस्तुमें वड़ा फर्क होजाता है। जैसे किसी मैदान में खड़े होकर देखने से पृथ्वी और आकाश मिले हुए मालूम देते हैं। किन्तु वास्तव में मिले हुए नहीं हैं। क्यों कि उतनी ही दूरी पर और जाकर देखेंगे तो भी मिले हुए ही मालूम देंगे। रेल्वे लाईन पर सीधे खड़े होकर देखने से दोनों पटरीयां वहुत दूरी पर एक मिली हुई मालूम देती हैं। रेल में वैठे हुओं को किनारे के वृक्ष दोड़ते हुए नजर आते हैं। सपाट मैदान में पानी न होते हुए भी पानी जैसा मालूम पड़ता है। मृग मरीचिका ग्रंथों में प्रसिद्ध ही है। इस प्रकार इन आंखों से जो नहीं है वह भी दिखाई देता है और जो है वह भी नहीं दिखाई देता। इन्द्रिय जन्य ज्ञान प्रामाणिक नहीं हैं। कारण कि उसमें दोप होने की पूरी सम्भावना रहती है।

इस प्रकार की चमड़े की आंखों से मैं भगवान् अजितनाथ का वताया हुआ मार्ग कैसे देखूं? अंतरंग शत्रुओं को जीतने का उपाय चर्म चक्षुओं से देख जाना संभव नहीं है।

उतराध्ययन सूत्रमें भगवान् महावीर ने गौतम स्वामी से कहा है-

न हु जिणे अज्ज दीसई बहुमयदिस्सई मग्गदेसिअं ।
संपइ नेयाउयपहं समयं गोयम मा पमायण ॥

हे गौतम ! तू छद्मस्थ है । छद्मस्थ अपूर्ण ज्ञानी होता है अतः वह पूर्ण ज्ञानी को नहीं देख सकता । वह जिनपने को नहीं देख सकता । जिनत्व देखने के लिए दिव्य दृष्टि चाहिए । किन्तु गौतम तू चिन्ता मत कर । जिनत्व नहीं देख सकता किन्तु जिनेश्वरों का बताया हुआ मार्ग तो देख सकता है । उस मार्ग पर विचार कर कि वह सत्य है या नहीं । वह मार्ग स्याद्वाद से परिपूर्ण अनैकान्तिक मार्ग है । उस मार्ग को अपनाने से जिनत्व प्राप्त हो जाता है ।

चार ज्ञान के धनी गौतम स्वामी के लिए भी जब जिनत्व अदृष्ट है तो हम किस गिनती में हैं अतः हमें उनके द्वारा बताया हुआ मार्ग अपनाना चाहिए । चमड़े की आंखों से नहीं किन्तु दिव्य विचार रूपी नेत्रों से उस मार्ग का विचार करना चाहिए । दिव्य नेत्रों से किसी बात को किस प्रकार देखना चाहिए इसके लिए एक किस्सा सुनाता हूं ।

दिल्ली में बादशाह अकबर राज्य करता था । उसका दिवान हिन्दू था । हिन्दू दिवान को देखकर अन्य मुस्लिम कर्मचारी मन में कुढ़ा करते थे कि यह नापाक हिन्दू हम लोगों में कैसे आ घुसा है । अकबर दिवान की बुद्धिमत्ता और कार्य कुशलता

पर बहुत खुश था और उसे अपने राज्य का एक स्तम्भ मानता था। किन्तु मुसलमान उससे बहुत नाराज रहा करते थे क्यों कि दिवान पद के नाते उसका अदब रखना पड़ता था। कभी कभी बादशाह दिवान की बुद्धिमत्ता के चमत्कार लोगों को बताया करता था और उनको नीचा दिखा दिया करता था। फिर भी उन लोगों को मजहबी झनुन चढ़ जाया करता था।

एक बार ताजियों के त्यौहार पर बादशाह ने दिवान से कहा कि आज मैं अमुक ओलिया के यहां रात्रि को जाने वाला हूं। तुम को भी मेरे साथ चलना है और मेरी तरह जियारत करनी होगी। यह सुनकर सब मुसलमान बहुत खुश हुए कि इस काफिर को बादशाह सलामत ने अच्छा हुक्म दिया है। या तो यह जाने से इन्कार कर देगा या जायगा तो जियारत न करेगा। इसका हिन्दुत्व नष्ट होने का मौका आया है। देखते हैं क्या होता है।

बादशाह का हुक्म सुनकर वजीर ने कहा–अच्छी बात है। हजूर के साथ हाजिर हो जाऊंगा। घर आकर वजीर विचार में पड़ गया कि क्या करना चाहिए। न जाना भी ठीक न होगा और अपना धर्म छोड़ना भी ठीक नहीं हैं। वजीरी तो कभी भी मिल सकती है मगर धर्म का मिलना महा कठिन है। यह विचार कर उसे एक उपाय सूझ गया। जाना भी और इन लोगों को ऐसी शिक्षा देना कि आयन्दा के लिए ऐसी हरकत न करे और मुझे याद रक्खे।

उसने शहर के होशियार मोचियों को बुलाकर कहा कि मेरे लड़के के लिए अच्छी से अच्छी एक जूता जोड़ी बनाकर लाओ। ऐसी जोड़ी लाओ कि जिसकी शानी की दूसरी जोड़ी न मिले सलमा सितारा और मोती आदि लगाकर लाना। रुपयों की चिन्ता मत करना। जितना कहोगे उतना मोल दिया जायगा।

वजीर की आज्ञानुसार मोची एक बहुत बढ़िया और बहुमुल्य जोड़ा बना कर लाये। जिसकी कीमत लाखों रुपया थी। वजीर बादशाह के साथ रातको ओलिया के स्थान पर हाजिर हो गया है। उसे देखकर मुसलमान फूले न समाते थे कि आखिर यह काफिर मुसलमान हो ही गया। उनकी बातें सुनकर वजीर मन ही मन प्रसन्न हो रहा था। उसने ओलिया के मकबरे पर फूल आदि जो चढ़ाने थे चढ़ाये और जाते वक्त धीरे से अपनी जेब में से उस जोड़े का एक जूता वहीं एक तरफ पटक दिया।

जब सब लोग चले गये और भीड़ मिट गई तब वहां के मुजावर की नजर उस बहुमुल्य जूते पर पड़ी। उसने दूसरे को दिखाया। दूसरे ने तीसरे को दिखाया और इस तरह होते होते यह बात फैल गई कि रातको कल की जियारत से खुश होकर ओलिया साहब खुद तशरीफ लाये थे। वे जाते समय अपना एक जूता भूल गये हैं यही उनके आने की सबूत है। दूसरे का ऐसा जूता हो नहीं सकता और हो भी तो यहां कैसे आ सकता है।

एक ने कहा—हां जनाव रातको ओलिया साहव जरूर तशरीफ लाये थे मैंने खुद कबर का गलेफ हिलते देखा था। दूसरे ने कहा—मैंने उनका पैर हिलते देखा है। तीसरे ने कहा—मैंने उनके हाथ देखे हैं। इस प्रकार गपगोला बढ़ता गया। और वात पक्की हो गई। सवूत में एक जूता था ही।

मुजावर लोग उस जूते को सोने की थाली में रखकर गाजे वाजे के साथ वादशाह की सेवा में लाये। क्योंकि ऐसी दिव्य चीज वादशाह के यहीं शोभा दे सकती है।

वादशाह ने पूछा—यह क्या लाये हो? तव मुजावर ने सारा किस्सा सुना दिया कि आपके साथ वजीर साहव भी तशरीफ लाये थे। उनकी जियारत से प्रसन्न होकर रातको ओलिया खुद आये थे। सवूत में यह जूता पेश है। वे एक जूता वहीं छोड़कर चले गये थे। वादशाह ने सोचा अभी ये लोग झनुन में चढ़े हुए हैं। यदि मैं भी इनके जैसा न वनूंगा तो ये लोग कुछ कर वैठेंगे। इस लिए वादशाह ने जूते का सत्कार किया और उसे तख़्त पर रख दिया। तथा उसके सामने लोवान आदि जो कुछ खेना था खेया।

इतने में वजीर भी वहां आपहुंचा। वादशाह ने कहा कि वजीर! तेरी जियारत से खुश होकर रात को ओलिया साहव स्वयं तशरीफ लाये थे और जाते वक्त अपना एक जूता वहीं पर छोड़ गये थे। वही यह जूता है। तू भी इसको सलाम कर।

वजीर ने उत्तर दिया-हजूर ! यह क्या निश्चय कि यह जूता ओलिया साहब का ही है। किसी दूसरे शैतान का भी हो सकता है मैं तो आपको सलाम कर सकता हूं। इसको सलाम नहीं करना चाहता।

बादशाह ने वह सारी हकीकत कह सुनाई जो जूते के सम्बन्ध में हुई थी। किस तरह किसी ने ओलिया साहब का पैर देखा था और किसी ने हाथ आदि।

वजीर ने कहा-मैं भी इस जूते को देखू तो सही कि कैसा है। वजीर ने तख्त पर से जूता उठा लिया और गौर से देखने लगा। देखकर कहने लगा-बादशाह सलामत गजब हो गया। यह जूता तो मेरे लड़के का है। आप जैसे बादशाह मेरे लड़के के जूते को सलाम करें यह अजब हैरानी की बात है।

यह सुनकर जूते के जुलूस में शरीक होकर आने वाले झनूनी लोग कहने लगे कि हजूर ! यह काफिर जियारत में खलल करता है। इसको राज्य से निकाल देना चाहिए।

वजीर ने कहा--हजूर ! हाथ कंगन को क्या आरसी। मैं अपने घर से इसकी जोड़ का दूसरा जूता मंगवा देता हूं। इतना कहकर वजीर ने अपने नौकर से दूसरा जूता मंगवा लिया और सब से कहा कि देख लो यह इसी की जोड़ का है न ? तब झेंप खाकर सब लोग कहने लगे कि हजूर ! यह काफिर दरगाह शरीफ में आया ही क्यों था। बादशाह ने कहा

कि यह मेरे हुक्म से आया था इसमें इसका कोई गुनाह नहीं है। मगर तुम लोग कैसे मूर्ख हो जो इस प्रकार बात का बतंगड़ बनाकर जूते का जुलूस निकाल कर लाये और मुझ को भी शरमिन्दा बनाया।

वजीर ने अपनी सफाई पेश कर दी कि मेरे साथ मेरा लड़का भी आया था वह जाते वक्त जल्दी में अपना एक जूता वहीं पर भूल गया। मैंने हजूर को यह बात कहना इसलिए वाजिब न समझा कि पहली बार ही मैं दरगाह में आया था। और जूते चोरी की बात कहता तो हजूर को मेरा एतबार न होता।

मित्रों! किसी बात का पूरा निर्णय किये बिना केवल लोक अफवाह का शिकार होकर उसे मान लेना कितनी लज्जाजनक बात होती है, यह ऊपर के किस्से से रोशन है।

कहने का मतलब यह है कि लोग वस्तुतत्व का निर्णय नहीं करते और भेड़िया धसान की तरह प्रवाह में बह जाते हैं। मैंने रतलाम में भोपा लोगों को धुनते हुए देखा है। वे धुनते धुनते तालाब पर जाते हैं और ज्यों ही तालाब के गंदे पानी के छींटे उन पर गिरे कि उनका देवता न मालूम कहां हवा हो जाता है। तालाब भी कैसा कि जिसमें स्त्रियां और बच्चे आदि नहाते और गन्दगी फैलाते हैं। कहिये देवता बड़े हुए या तालाब का गन्दा पानी? यह सब धींतिग देखकर मैं इस निर्णय पर पहुंचा हूं कि लोग ढोंग बहुत करते हैं।

चर्मचक्षुओं से देखी हुई बात में भी इतना फर्क पड़ जाता है तो बिना देखी हुई, केवल सुनी सुनाई बात में कितना अंतर पड़ सकता है। अतः दुनिया का बाहरी दिखावा देखकर न स्वयं भूलो और न दूसरों को भुलावे में डालो।

वजीर का कथन सुनकर सब लोग कहने लगे—क्या हम जूते को सलाम करने वाले हैं? वजीर ने कहा-नहीं, आप लोग जूते को सलाम करने वाले नहीं हो किन्तु अपनी भूल को सलाम करने वाले हो। आप लोगों से ऐसी अनेक भूलें हुवा करती हैं। अतः आयन्दा सावधानी रखने की जरूरत है।

वजीर की नसीहत भरी बात सुनकर बादशाह तथा दूसरे सब लोग खूब खुश हो गये।

यह बात हुई हो या न हुई हो इससे हमें कोई प्रयोजन नहीं है। मेरे कहने का भावार्थ यह है कि किसी वस्तु का निर्णय बहुत सावधानी और दिव्य नेत्रों से करना चाहिए। किसी के कहने मात्र से न मानना चाहिए।

भगवान् महावीर गौतम स्वामी से कहते हैं कि केवली ही केवली को देख सकता है। दूसरा छद्मस्थ व्यक्ति नहीं देख सकता। फिर केवली को कैसे जानना चाहिए इसका उत्तर यही है कि केवलिनिर्मित शास्त्रों के द्वारा उसका स्वरूप समझना चाहिए। यदि कोई यह कहे कि हम न संस्कृत जानते न प्राकृत, तो शास्त्रों को कैसे समझ सकते हैं। जब शास्त्र नहीं

जानते तो किसी के पीछे चलने का मार्ग ही हमारे लिए शेष रह जाता है।

किन्तु भगवान् कहते हैं कि किसी बात का निर्णय करने के लिए बहुत दूर जाने की जरूरत नहीं है। अपनी आत्मा से ही निर्णय कर लो। वह तुमको अच्छी से अच्छी सलाह देगी। वह आपको सच्चा मार्ग बतायेगी। जो बात आत्मसाक्षी से ठीक ठहरे उसे मानना चाहिए और जो आत्मसाक्षी से ठीक न उतरे उसे न मानना चाहिए। आत्मा के कांटे में बात को तौलकर निर्णय कर लेना चाहिए। कहा है:—

प्रत्याख्यानञ्च दानञ्च सुखदुःखे प्रियाप्रिये।
आत्मौपम्येन पुरुषः प्रामाण्यमधिगच्छति ॥

आप में आत्मा है। आप ऊंचे से ऊंचे प्राणी हो। फारसी भाषा में कहावत है कि इन्सान कुदरत का बादशाह है। आपका इतना ऊंचा पद है। यह पद आपको केवल हाथ पांव और कान नाक के कारण नहीं मिला हुआ है। आपके शरीर के समान शरीर का ढांचा तो बन्दर का भी है। बल्कि एक पूंछ और अधिक है। फिर भी बन्दर मनुष्य नहीं कहलाता क्योंकि उसमें आत्मसाक्षी से सत्यासत्य निर्णय करने की शक्ति नहीं है। मैंने महामना पं. मदनमोहन मालवीय के एक भाषण में पढ़ा है कि यदि मनुष्य अपनी आत्मा को न भूले तो उसमें वे सभी गुण मौजूद हैं जो एक महापुरुष होने के लिए आवश्यक होते हैं।

यह मनुष्य शरीर मोक्ष का द्वार है। इस शरीर में रहने वाले सब जीव मोक्ष के अधिकारी हैं। आपमें विवेक है। हिताहित का निर्णय करने वाला ज्ञान विवेक कहा जाता है। इस विवेक के द्वारा प्रत्येक बात को तोलो और तौलकर आचरण करो।

उक्त श्लोक में प्रत्याख्यान, दान, सुख, दुःख, प्रिय और अप्रिय को आत्मसाक्षी से तौलकर निर्णय करने की बात कही हुई है। अमुक शास्त्र में प्रत्याख्यान की बात कही हुई है किन्तु आपकी आत्मा में प्रत्याख्यान है या नहीं इसको देखो। जैसे कहा है कि क्रोध न करना चाहिए। अर्थात् क्रोध का त्याग करो। आप अपनी आत्मा के लिए विचार करो कि मेरे में क्रोध है या नहीं। और यदि क्रोध है तो उसका त्याग है या नहीं। यदि आप सदा के लिए क्रोध का त्याग नहीं कर सकते तो कम से कम इन आठ दिनों के लिए तो जरूर त्याग करो। ये आठ दिन आपकी परीक्षा के लिए हैं। आपको क्रोध आता है या नहीं और यदि आता है तो आप उस पर काबू रख सकते हैं या नहीं इस बात का इम्तिहान है। आपको इस परीक्षा में उत्तीर्ण होना है। क्रोध स्वभाव का दोष है। इस दोष को अपने ऊपर हावी न होने देना चाहिए। और कम से कम क्रोध का रूप हाथापाई और गाली गलौच तक न पहुंचने देना चाहिए।

अब इस बात का विचार करें कि क्रोध का प्रत्याख्यान, त्याग आपकी आत्मा को कैसा लगता है। यदि आप पर कोई

क्रोध करे तो आपको उसका क्रोध अच्छा लगेगा या नहीं ? यदि आपको कोई गाली देता है तो गाली देनेवाला कैसा लगेगा ? आपको न क्रोध अच्छा लगेगा और न गाली सुनना ही। इस वात का निर्णय आपने स्वयं ही कर लिया कि क्रोध और गाली वुरी चीज है। जो वात आपके लिए वुरी है वह वात दूसरों के लिए भी वुरी होगी इसमें आपको क्या संदेह रहा ? यह तो मानी हुई वात है कि जिस प्रकार का वर्ताव हम अपने लिए पसन्द नहीं करते वैसा वर्ताव दूसरों के साथ भी न करें। यह प्रत्याख्यान आत्मौपम्य हुआ।

किसी के द्वारा हम पर चिढ़ना क्रोध करना या गाली देना हमें पसन्द नहीं है तो इस में से यह फलितार्थ निकला कि ये काम बुरे हैं। और चूंकि जैसी हमारी आत्मा है वैसी ही दूसरे की आत्मा भी है। जो वात हम अपने लिए अच्छी नहीं समझते वह वात दूसरों के लिए कैसे कर सकते हैं। यह आत्म प्रमाण है। आत्मा की गवाही से यह सिद्ध हुआ कि दूसरों को कष्ट पहुंचाने जैसा वर्ताव करना वुरी वात है। कम से कम पर्यूषण के पवित्र दिनों के लिए तो इस वात का नियम लो कि हम दूसरों पर गुस्सा न करेंगे।

आठ दिनों के लिए यदि ज्यादा न कर सको तो इतना तो करो कि क्रोध को सफल न होने दो, शील व्रत का पालन करो, रात्रि भोजन न करो, आरम्भ समारम्भ मकान वनवा-नादि कार्य मत करो, किसी के साथ विश्वास घात मत करो, झूठ न वोलो, विना छना पानी न पीओ और न विना छने पानी से स्नान करो।

मतलब कि जैन शास्त्र जिस बात का उपदेश देते हैं वह केवल शास्त्रीय बात ही नहीं है किन्तु आपकी आत्मा की आज्ञा भी है। इस शास्त्र में बताई हुई बातों का प्रत्याख्यान करने से आपको किसी प्रकार की हानि नहीं हो सकती इसकी म गारंटी देता हूं।

हां, ऐसे भी प्रत्याख्यान होते हैं जिनको ग्रहण करने से हानि होती हैं। ऐसे प्रत्याख्यानों में आत्मा की साक्षी नहीं होती। आत्मा उस चीज को कबूल नहीं करती। जैसे किसी ने यह नियम ले लिया कि अमुक तीर्थ में जाकर बकरे की बलि चढ़ाऊंगा। किन्तु यह प्रत्याख्यान हमारी प्रकृति से मेल नहीं खाता। क्यों कि यदि कोई हमारा खुद का बलिदान करने की बात कहे तो सुनते ही हम घबड़ा जायंगे। बलिदान का बकरा क्या कहता है सो सुनिये—

कहे पशु दीन सुन यज्ञ के करैया मोहे,
होमत हुताशन में कौन सी बड़ाई है।
स्वर्ग सुख मैं न चहूं देही मुझे यों न कहे,
घास खाय रहूं मेरे यही मन भाई है।
जो तुम यह जानत हो वेद यों बखानत है,
यज्ञ जल्यो जीव पावे स्वर्ग सुखदाई है।
डारे क्यों न वीर या में अपने ही कुटुम्ब को,
मोहे जो जलावे जगदीश की दुहाई है।

यदि पशु से कहा जावे कि मैं तुझे देवता के अर्पण करके तेरा कल्याण करता हूं, तुझे स्वर्ग मिलेगा तो पशु क्या

कहेगा। यही कि मैं घास पात खाकर यहीं रहना पसन्द करता हूं मुझे स्वर्ग नहीं चाहिए। यदि ऐसा करने से स्वर्ग मिलता है तो अपने कुटुम्ब का वलिदान करके उसे स्वर्ग पहुंचा दे।

अब यह बात अपनी आत्मा से तौलो। यदि कोई आपसे कहता है कि हम तुमको स्वर्ग में पहुंचाने के लिए तुम्हारा वलिदान करना चाहते हैं तो आप क्या उत्तर देंगे? कम से कम आप अपना वलिदान देना कभी न चाहेंगे। इस बात का निर्णय आपने आत्मप्रमाण से किया है। आत्मा की साक्षी से ही ऐसा कहा है। यह आत्मसाक्षी से प्रत्याख्यान को जानना हुआ।

अब आत्मसाक्षी से दान की बात कहता हूं। दान को आत्मसाक्षी से देखो। यदि आत्मा के प्रामाण्य से दूसरों पर दान की प्रामाणिकता घटयेंगे तो कभी भूल न होगी। शास्त्र में कहा है—

दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाणं

सब दानों में अभयदान सर्व श्रेष्ठ और प्रधान है। यह विचार करो कि यह दान शास्त्रकारों ने अपनी ओर से उत्पन्न किया है अथवा आपकी आत्मा ने उत्पन्न किया है। मान-लीजिये, आपको फांसी दी जाने वाली है। एक आदमी आपको राज्य देना चाहता है और दूसरा आपकी फांसी छुड़ाना चाहता है। दोनों बातों में से आप क्या अधिक पसन्द करेंगे। मेरा ख्याल है आप फांसी छुड़ाना अधिक

पसन्द करेंगे क्योंकि जीवन ही न रहे तो राज्य किस काम का ! आपका यह कथन आत्मा की साक्षी से ही हुआ न ? अपने पर से दूसरोंके लिए भी सोचो कि मुझे सब जीवों को अभयदान देना है। ये आठ दिन विशषरूप से अभयदान देने के लिए हैं।

इस प्रकार प्रिय अप्रिय और सुख दुःख के लिए भी समझो। जो बात आपको प्रिय लगेगी वही दूसरे को भी लगेगी। जिस प्रकार आपको सुख प्यारा है और दुःख खारा है उसी तरह सब को सुख प्यारा और दुःख खारा है। ऐसा समझकर यह भावना करो कि हे भगवान् ! मैं अपने दुख तो सहन कर लूं मगर पराया दुःख कभी सहन न करूं। अपने को दुःख में डालकर भी पराये का दुःख दूर करने की चेष्टा करूं। दूसरे को कभी दुःख न दूं। यही अहिंसा है। यह अहिंसा धर्मशास्त्र से नहीं निकली है मगर आत्म शास्त्र में से निकली है।

यदि एक आदमी दो सूइयां लेकर एक अपने पैर में चुभोता है और दूसरी किसी दूसरे व्यक्ति के पैर में चुभोता है तब उसे पता लगता है कि जैसी पीड़ा मुझे होती है वैसी ही पीड़ा दूसरे को भी होती है। मगर लोग अपनी पीड़ा तो याद रखते हैं किन्तु दूसरों की भूल जाते हैं। दूसरों की पीड़ा का ख्याल नहीं रखते। दूसरों को पीड़ा पहुंचाते वक्त आत्म साक्षी की बात याद नहीं रखते। केवल अपना ही सुख देखते हैं। अपने ऐश आराम और मौज मजा को देखते हैं। किन्तु

उनके पीछे कितने व्यक्तियों वा जीवों को कष्ट पहुंच रहा है इस पर तनिक भी खयाल नहीं करते। धर्म करने की इच्छा वाले को दूसरे के दुःख का खयाल करना नितान्त आवश्यक है।

आपके घर मेहमान आये हैं। आपने बढ़िया रसोई बनाने का हुक्म दिया है। आपकी पत्नी रसोई बनाकर चख लेती है और निर्णय कर लेती है कि जो चीज मुझे अच्छी लगी है वह मेहमान को भी अच्छी लगेगी। इस में यह सोचने की बात है कि उस बाई ने किस आधार पर यह निर्णय किया कि मेहमान को रसोई पसन्द आ जायगी। अपनी आत्मा की साक्षी से ही बाई ने नक्की किया कि मेहमान को मेरी बनाई रसोई रुच जायगी।

भोजन के विषय तक तो यह नियम याद रहता है। किन्तु यदि यही नियम सास ससुर देवर जेठ देवरानी जेठानी और बहु के साथ वर्ताव करते वक्त भी याद रखा जावे तो कितना अच्छा हो। यदि यह नियम याद रक्खा जाय तो पिता पुत्र, पतिपत्नी, सास बहू; देवरानी जेठानी और भाई भाई आदि में कड़वास उत्पन्न होने का भी प्रसंग ही न आवे।

मित्रों! आत्मसाक्षी के प्रमाण को याद न रखने से संवत्सरी पर्व होने पर भी लोग उनसे खतम खमावणा नहीं करते जिनसे उनका वैर विरोध रहा है। पृथ्वी पानी वायु और अग्नि के जीवों को खमायेंगे, वनस्पति और त्रस जीवों

को खमायेंगे, नरक निगोर और तिर्यञ्च तथा देवों को भी खमायेंगे। मगर जिन मनुष्यों या कुटुम्बियों से वर विरोध है उनको न खमायेंगे उनसे अपने अपराध की क्षमा याचना न करेंगे। यह खमत खमावणा नहीं है किन्तु क्षमापना की मजाक करना है। अतः अपनी आत्मा के समान सब के सुख दुःख को समझ कर वैसा ही वर्ताव करो जैसा तुम चाहते हो कि दूसरे तुम्हारे साथ करें। यही धर्म का रहस्य है।

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्

यदि हम को गाली सुनना पसन्द नहीं है, अपमानित होना और हिकारत की दृष्टि से देखा जाना पसंद नहीं है, लातें घूसे और थप्पड़ खाना अच्छा नहीं लगता है, हमारे घर की कोई वस्तु चोरी में चली जाना बर्दाश्त नहीं है, हमारी बहिन बेटी की इज्जत खराब होते नहीं देख सकते तो हमारा फर्ज है कि हम अपनी तरफ से दूसरों के प्रति ऐसे वर्ताव न करें। कम से कम पर्यूषण तक के लिए यह बात अवश्य ध्यान रक्खो।

चरित्र—

कैसे जाना हाल सुनाओ, कही वितक सब बात।
रानी बोली मतिमन्द तोरी, छली सुदर्शन तात रे॥ धन.॥
छलकर तुझको छला सुघड़ ने तू नहीं पाई भेद।
त्रियाचरित्र का भेद न समझे व्यर्थ हुवा तुझ खेद रे॥ ध.॥
मुझसे जो नहीं छला जायगा वह नर सबसे शूर।
सुर असुर नागेन्द्र नारि से टले न उसका नूर रे॥ धन.॥

कपिला के छल में सुदर्शन नहीं फँसा। वह उसके साथ चरित्र से भ्रष्ट नहीं हुआ। उसने कपिला को ऐसा भाव बताया कि कपिला ने स्वयमेव उसको अपने घर से धिक्कार पूर्वक विदा कर दिया। इस बीती घटना की बात आज पुनः ताजी हो रही है। रानी के साथ कपिला मेला देख रही है। मनोरमा भी उनके पीछे अपने रथ में सवार है। मनोरमा को देखकर पहले कपिला के मन में अच्छे भाव पैदा हुए थे। किन्तु बाद में रानी के मुख से उसका परिचय पाकर वह उसकी मजाक उड़ाने लगी और दोष देखने लगी। नपुंसक पति की पत्नी अपने को सती के रूप में पेश कर रही है। यह जानकर कपिला को बड़ा खेद है; कपिला अपने दूषित नेत्रों से सब को दूषित देखती है। उसका एकमात्र ध्येय ऐश आराम और मौज मजा उड़ाना है। वह जीवन की सफलता विषय वासना की पूर्ति में मानती है।

कपिला सोचती है—जीवन जो मिला है वह आनन्द लूटने के लिए है। न मालूम अपने को समझदार मानने वाले लोग क्यों इन्द्रिय सुख की निन्दा किया करते हैं। लोग निन्दा करते हैं इसी भय से ये काम छिपा कर करने पड़ते हैं।

कपिला का कथन सुनकर रानी कहने लगी कि तू मूर्ख है। यह स्त्री बहुत धर्मात्मा है और सती है। तू जिस प्रकार शरीर पाने का अर्थ मौज उड़ाना करती है उस प्रकार दूसरे नहीं करते। मनोरमा और उसके पति सेठ सुदर्शन जीवन की सार्थकता इन्द्रियों को काबू में करने में मानते हैं।

बुरा कार्य करने वाले लोग भला काम करने वालों को अच्छा नहीं समझते। वे अपने को ही अच्छा मानते हैं। बीड़ी पीने वाले लोग बीड़ी न पीने वालों को मूर्ख समझते हैं। वे यह नहीं सोचते कि मूर्ख हम हैं जो बीड़ी पीते हैं। उत्तम मनुष्य शरीर को इस गन्दी चीज के लिए खो देना कहां तक उचित है। कई लोग अपने कुल संस्कार को छोड़ कर शराब को लाल शर्बत कह कर पी जाते हैं और जो न पीते हैं उनकी निन्दा करते हैं। कई लोग दुराचार सेवन करके उसकी सराहना किया करते हैं। किन्तु दुराचार का सेवन कितने अनर्थ का कारण बनता है, कुछ कहा नहीं जाता।

अभी इन्हीं दिनों में आपके यहीं राजकोट की एक दुःखद घटना विश्वस्त रूप से सुनने में आई है। एक स्त्री का सम्बन्ध अपने यहां झाड़ने के लिए आने वाले भंगी के साथ हो गया। एक दिन उसके चौदह पन्द्रह साल के लड़के ने अपनी माता को भंगी के साथ व्यभिचार सेवन करते हुए प्रत्यक्ष अपनी आंखों देख लिया। लड़का पढ़ा लिखा और होशियार था। किन्तु उसकी मां दुराचार में इतनी अंधी हो गई थी कि परदेश गये हुए अपने पति को भी भूल गई और घर में रहने वाले पुत्र का खयाल भी न कर सकी। अकस्मात् एक दिन लड़का बाहर से घर में आगया और अपनी माता का भंगी के साथ संसर्ग देख लिया।

पुत्र ने अपनी माता को समझाया कि माता यह बात ठीक नहीं है। अपने कुल के लिए महान् कलङ्क की बात है। माता

ने सोचा कि यह मेरा भेद जान गया है तथा अब आयन्दा के लिए मेरे कार्य में विघ्न रूप हो गया है। अतः किसी तरह इसको मार डालना चाहिए। उसने भंगी की सहायता से एक दिन अपने पुत्र को मारकर एक गठरी में बांध कर मेड़ पर रख दिया ताकि प्रातःकाल भंगी अपनी मैले की गाड़ी में डाल कर ले जा सके।

दैवयोग से उसी दिन उसका पति भी परदेश से आ गया। आते ही अपने पुत्र के सम्बन्ध में पूछा कि लड़का कहां गया है। उसने उत्तर दे दिया कि कहीं बाहर गया है अभी आ जायगा। आप भोजन करिये। बाप ने कहा—बेटा आ जायगा फिर भोजन कर लूंगा जल्दी क्या है। किन्तु स्त्री ने बहुत आग्रह करके पति को भोजन करने के लिए बैठा दिया।

पाप छिपाया न छिपे छिपे तो मोटा भाग।
दाबी दूबी न रहे रुई लपेटी आग॥

पाप को छिपाने के लिए कितनी ही कोशिशें की जाय किन्तु वह कभी न कभी प्रकट हो ही जाता है। जब उस स्त्री का पति भोजन कर रहा था कि छत में से खून की बून्दे उसके कमीज पर गिरीं। खून की बून्दे देखकर पति ने पूछा कि उपर से खून क्यों टपक रहा है? स्त्री ने कहा—बिल्ली ने चूहा मार दिया होगा। मगर बूंदे बहुत गिरने लगीं तब वह पुरुष मेड़ पर गया और वह गठरी पड़ी हुई पाई। पति को मेड़ पर जाते देखकर स्त्री बाहर का दरवाजा बन्द करके

पुलिस में दौड़ी गई और रिपोर्ट करदी कि मेरे पति ने मेरे पुत्र को मार डाला है।

पुलिस आई और लड़के के बाप को पकड़ लिया। आखिर में सब भेद खुल गया और स्त्री तथा भंगी को सजा हुई।

यह दुराचार का ही परीणाम था कि माता ने अपने पुत्र तक को मार डाला। अधिक चटक मटक से रहने से भी दुराचार में वृद्धि होती है। चरित्र की रक्षा करनी होतो सादगी को अपनाना चाहिए।

कपिला से अभया रानी कहती है कि संसार का यह नियम है कि बुरा आदमी बुरे आदमियों की प्रशंसा किया करता है और अच्छे आदमियों की निन्दा। तू सेठ की निन्दा करती है और उसे हींजड़ा बताती है। मगर तू छली गई है। तेरी सब होशियारी धूल में मिल गई है। सेठ नपुंसक नहीं है। तू सेठ के पुत्रों को ध्यान से देख कि उनकी शकल सेठ से मिलती है या नहीं। मेरे खयाल से तो ये लड़के सुदर्शन के ही अनुरूप हैं।

अभया के कथनानुसार कपिला ने गौर से पांचों लड़कों को देखा। देख कर कहने लगी कि ये लड़के तो ऐसे मालूम देते हैं। जैसे सेठ स्वयं अपने पांच रूप धारण करके बैठे हैं। मुझे सेठ ने झूठ बात क्यों कही। कपिला ने कहा--तेरे माया जाल से छुटने के लिए ही सेठ ने झूठ बोलकर अपना पिण्ड छुड़ाया मालूम पड़ता है। कपिला! तू अपने को तिरियाचरित्र

में बहुत प्रवीण मानती है। किन्तु तेरे फैल हो जाने से मालूम हो गया कि अभी तू तिरियां चरित्र में पूरी कुशल नहीं है। रानी के वचन सुनकर कपिला कहने लगी कि जो सुदर्शन मेरे जाल से भी छुट निकला है तो वह किसी अप्सरा या देवांगना से भी छला जाने में समर्थ नहीं है।

कपिला की यह अभिमान भरी बात सुनकर अभया कहने लगी कि तू अपनी हार क्यों नहीं मान लेती। तू अपने लिए ही यह क्यों न कहती कि मैं त्रिया चरित्र में पूरी होशियार नहीं हूं। त्रिया चरित्र को जानने वाली तो इन्द्र और मुनियों को भी डिगा सकती है।

तिरिया चरित्र बहुत गजब कर डालती है। इसीलिए शास्त्रकारोंने ब्रह्मचर्य की नव वाड़ में स्त्रियों के परिचय से पुरुष को रोका है। शास्त्र में कहा है कि सौ वर्ष की वुढिया जिसके नाक कान कटे हुए हों यदि किसी मकान में हो तो ब्रह्मचारी को उसके साथ अकेला नहीं रहना चाहिए यह कभी मन में अभिमान न लाना चाहिये कि मैं इन्द्रियों का दमन करनेवालाहूं अतः मेरा क्या नुकसान हो सकता है। मन है, इसे बदलने में देरी नहीं लगती। शास्त्रकारों ने जो जो नियम वनाये हैं वे निष्कारण नहीं वनाये हैं। जो घटना होना शक्य होती है उसी को टालने के नियम वनाये हैं। अतः स्त्री संसर्ग से वचके रहना ही अच्छा है। सुदर्शन इस वात को समझ गया था अतः एकान्त में रहकर धर्म ध्यान करने लगा।

श्री आचारांग सूत्र की टीका में जिक्र है कि एक बार एक केवली के शिष्यों को जङ्गल में प्यास लगी थी। मार्ग में एक अचित्त जल का जलाशय आगया। अचित्त पानी का तालाब भी हो सकता है। केवली ने फरमाया कि यद्यपि इस तालाब का पानी अचित्त है फिर भी मैं तुम लोगों को यह पानी पीने की आज्ञा नहीं दे सकता। कारण कि मैं तो केवल ज्ञान के जरिये यह जानता हूं कि यह पानी अचित्त है। किन्तु जो लोग पूर्ण ज्ञानी नहीं हैं वे भी अगर तालाबों का पानी पीने लग जायंगे तो अनर्थ हो सकता है। अतः व्यवहार का पालन करना बहुत जरूरी है। केवली हो जाने पर भी व्यवहार नहीं छोड़ते। इसी प्रकार यदि किसी ने इन्द्रिय दमन कर भी लिया हो तो भी व्यवहार पालन के खातिर स्त्री संसर्ग से दूर रहना चाहिए।

स्त्रियाश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं
देवो न जानाति कुतो मनुष्यः।

अभया कहती है—कि हम त्रिया चरित्र से देव और मुनियों को भी काबू में कर सकती हैं। हमारे भय से ही मुनि लोग नववाड़ का सहारा लेकर स्त्रियों से किनारा काटते हैं। यदि मुनि लोग भी हमारे संसर्ग में आजावें तो हम उन्हें अछूता न रहने देंगी। उनको चुटकी से उड़ा सकती हैं।

कपिला ने कहा—ऐसे ऐसे महापुरुष भी हैं जिनको वश में करना स्त्रियों के बूते की बात नहीं है। उन पर त्रिया चरित्र नहीं चल सकता।

अभया बोली—ऐसा एक भी मर्द नहीं हो सकता जो त्रिया चरित्र के कारण स्त्रियों का दास न बनाया जा सके।

कपिला कहने लगी—तो क्या आप यह आशा रखती हैं कि आप सुदर्शन सेठ को अपने काबू में कर लेंगी ?

अभया ने कहा—हां, मैं सुदर्शन को भी फंसा सकती हूं।

कपिला—यदि आपने सुदर्शन को अपने चंगुल में फंसा लिया तो मैं समझूँगी आप त्रिया चरित्र में पूर्ण निष्णात हैं और स्त्रियों में शिरोमणि हैं।

अभया—देख, मैं किस प्रकार सेठ को अपने जाल में फंसाती हूं, तू देखती रहना मेरी कलाबाजी को।

इस प्रकार दोनों सखियों में बाजी लगी है। आप लोग ऐसी बाजी को कैसी मानते हैं। आप इसे बुरा ही बतायेंगे। और वास्तव में है भी यह बुरी बात। किन्तु किसी बात को एकान्त दृष्टि से न सोचना चाहिए। अनेकान्त दृष्टि से विचार करना चाहिए। मैं कहता हूं अगर इस प्रकार की इन सहेलियों में होड़ न होती तो सुदर्शन के शील की परीक्षा कैसे होती।

गज सुकुमार मुनि के मस्तक पर सोमिल ब्राह्मण ने जलते हुए अंगारे रखे थे। कहिये, इस प्रकार का घातक कार्य कितना निकृष्टतम और हृदय हीनता दर्शक है। किन्तु गजसुकुमार के लिए मस्तक पर अंगारे रखे जाना भी कल्याण कारी साबित

हुए थे। सोमिल ब्राह्मण के लिए इस प्रकार का निर्दयता पूर्ण कार्य करना अत्यन्त हानि कर था। किन्तु गजसुकुमार ने उस चीज को कर्मों की निर्जरा का कारण बना लिया। वे अंगारों की पीड़ा से विचलित न हुए। बल्कि शुक्ल ध्यान के पाये पर चढ़ कर अनन्त क्षमा धारण करके केवली बन गये और उसी चक्त शरीर रूपी पिंजड़ा सदा के लिए छोड़कर सिद्ध शिला में जाकर विराजमान हो गये। अगर गजसुकुमार को यह सहारा न मिलता तो वे संभव है इतनी जल्दी मोक्ष में न पहुंच पाते।

इसी तरह कपिला और अभया की किसी सच्चरित्र आदमी को चरित्र भ्रष्ट करने की होड़ एकान्त बुरी नहीं कही जा सकती इसी अग्नि में तप कर सुदर्शन खरा कुन्दन होकर जगत् के सामने उपस्थित होगा। हम लोग प्रतिदिन सुदर्शन का चरित्र गाते हैं और धन्यवाद देते हैं उसमें कपिला और अभया का भी हाथ है। हाथ तो इनका है मगर प्रशंसा सुदर्शन की ही की जायगी।

मित्रों! दुनिया में कांटे बिछे हुए हैं अतः संभल कर चलना चाहिए दुनिया में बुरे भले सब प्रकार के आदमी हैं। आप यदि ज्ञानी हैं तो बुरे आदमीयों को भी अपनी उन्नति में सहायक बना सकते हैं।

१२

आत्मा ही परमात्मा बनता है

आज म्हारा संभव जिन के, हितचित सुंगुण गास्यां।
मधुर मधुर स्वर राग अलापी, गहरे साद गुंजास्यां राज ॥आज.॥

प्रार्थना—

यह तृतीय तीर्थङ्कर भगवान संभवनाथ की प्रार्थना है। प्रार्थना करने वाला भक्त कहता है कि आज मैं तेरा ही गुण-गान करूंगा। भक्त के पूरे अभिप्राय को मैं नहीं बता सकता वह तो कोई ज्ञानी ही बता सकता है। लेकिन विचार करने से मालूम होता है कि इस प्रार्थना में आपका और हमारा भाव भी शामिल है। इस प्रार्थना में कहा हुआ शब्द आज बड़े महत्त्व का है।

संसार के लोग भी अपने सांसारिक कार्यों के लिए यही सोचते हैं कि अमुक कार्य आज ही करेंगे। आज का दिन

फिर कब आने वाला है। अगर आज का दिन व्यर्थ चला गया तो कल का क्या भरोसा ? संभव है, कल का दिन भी व्यर्थ चला जाय। अथवा यह नक्की थोड़ा ही है कि कल का दिन हमारे लिए आयेगा ही। संभव है, कल हम ही न रहें।

विवाहोत्सव, सब प्रकार के त्यौहार और मित्र के आगमन पर यही कहा जाता है कि आज का दिन अच्छा है। आज का सा दिन फिर न आयेगा अतः जो कुछ करना है कर डालना चाहिए। इसी प्रकार भक्तजन भी कहते हैं कि आज का सा अवसर फिर कब आयेगा अतः भगवान् की प्रार्थना आज ही करूंगा। यह अवसर हाथ से न जाने दूंगा।

भक्त के कथन पर से आम श्रोताजनों को भी विचार करना चाहिए कि ये दिन पर्यूषण पर्व के हैं। इन दिनों में दुनिया के प्रपञ्चों में न पड़कर उत्कृष्ट रीति से परमात्मा का भजन व प्रार्थना करेंगे। यद्यपि सब लोग यह चाहते हैं कि हम परमात्मा का भजन किया करें। और आप लोग भी घर का काम छोड़कर यहां इसीलिए आये हैं। किन्तु भजन में अनेक विघ्न उपस्थित हो जाते हैं।

श्रेयांसि बहुविघ्नानि

अर्थात् अच्छे कार्यों में सदा बहुत विघ्न आजाया करते हैं। इसी नियम के अनुसार प्रभु भजन में भी विघ्न आ जाते हैं और आपकी इच्छा पूर्ण नहीं होती। आप पूछेंगे कि इन विघ्नों को हटाने के उपाय क्या हैं ? भक्त कहते हैं कि विघ्नों

को हटाने का उपाय भी परमात्मा की प्रार्थना ही है। उसी परमात्मा से आरजू करने से विघ्न विनष्ट हो जाते हैं। आज हम लोगों को प्रार्थना करने का यह सुअवसर प्राप्त हुआ है। अतः यह विचार करना चाहिये कि अनन्त काल से मेरी आत्मा इस संसार रूपी अनन्त समुद्र में इधर से उधर हिलोरे ले रही है। जन्म मरण और जरा के चक्र में यह आत्मा फंसी हुई है। जो कि निश्चय नय और वास्तविक दृष्टि से देखा जाय तो आत्मा और परमात्मा में कोई अन्तर नहीं है। स्वरूप की दृष्टि से दोनों एक हैं। शुद्ध संग्रह नय की दृष्टि से 'एगे आया' अर्थात् सिद्ध और संसारी दोनों की आत्मा एक समान ही है।

फिर अंतर क्यों पड़ रहा है, इसी बात पर विचार करना चाहिए। जो अन्तर है उसको समझ कर उसे मिटाने का प्रयत्न करना चाहिए। अन्तर मिटाकर परमात्मा स्वरूप में लीन हो जाना चाहिए। अन्तर मिटाने के लिए ज्ञानियों के कथन पर विचार करना चाहिए।

कुम्भकार मिट्टी से घड़ा बनाता है। मिट्टी में घड़ा है तभी तो कुंभकार उसमें से घड़ा बनाता है। जब तक मिट्टी का घड़ा नहीं बनाया जाता तब तक मिट्टी में कोई पानी नहीं भरता। भरा भी नहीं जा सकता। और न कोई मिट्टी को घड़ा कह कर ही पुकारता है। जब कुंभकार उपाय करके मिट्टी का घड़ा बना देता है तब उसमें पानी भरा जाता है और उसे घड़े के नाम से पुकारा जाता है। मिट्टी उपादान

कारण है और चाक आदि निमित्त कारण। कुंभकार कर्त्ता है। मिट्टी और घड़े में कितना अंतर है? मिट्टी ही तो रूपान्तर होकर घड़े के रूप में परिणत हुई है। मिट्टी और घड़े की पर्यायों में फर्क है। द्रव्य तो वही है। इसी प्रकार आत्मा के विषय में भी देखो। पण्डित देवचन्दजी कहते हैं:—

उपादान आतम सहित पुष्टावलंबन देय,
उपादान कारण पणे प्रकट करे प्रभु सेव।
एक वार प्रभु वंदना आगम रीते थाय,
कारण सहित कार्य नी सिद्धि प्रतीत कराय।

आत्मा परमात्मा का उपादान कारण है। जिस प्रकार मिट्टी घड़े का उपादान कारण है और मिट्टी से ही घड़ा वनता है उसी प्रकार आपकी हमारी आत्मा ही परमात्मा वनने का उपादान कारण है। आत्मा ही परमात्मा के रूप में परिणत हो जाता है। मिट्टी को घड़ा वनाने में कुम्भकार भी कारण है इसी प्रकार आत्मा का परमात्मा वनने में ज्ञानी गुरु कारण वन जाते हैं। उनको सहकारी कारण कह सकते हैं। उपादान कारण तो आत्मा ही है। अगर आगम प्रतिपादित रीति से एक वार भी परमात्मा को वंदना कर ली जाय तो आत्मा परमात्मा वन जाता है। कारण कार्यरूप में वदल जाता है।

अव इस वात का विचार किया जाता है कि परमात्मा का अनन्य भाव से स्मरण कीर्तन करने से या उसको देवाधिदेव मानने से क्या लाभ है। अन्य मत वाले लोग तो

परमात्मा को कर्त्ता मानते हैं। जिस प्रकार कुम्भकार मिट्टी का पिण्ड बनाकर उसे चाक पर चढ़ाकर घड़ा बनाता है उसी प्रकार परमात्मा भी जीव को परमात्म स्वरूप बनाता है। उसको दण्ड भी देता है और पुरस्कार भी। अतः यदि वे लोग परमात्मा की भक्ति प्रार्थना या कीर्तन करें तो ठीक कहा जा सकता है किन्तु जैनों का परमात्मा तो राग द्वेष रहित है। वह न किसी पर प्रसन्न होता है न नाराज। किसी को दण्ड या पुरस्कार भी नहीं देता। वह निरंजन निराकार और अकर्ता है। अतः उसे वंदना करने से क्या लाभ ?

बीच में थोड़ा इस बात पर भी विचार कर लें कि वस्तुतः परमात्मा कर्त्ता है क्या ? जो परमात्मा सांसारिक प्रपञ्चों से मुक्त हो चुका है। वह पुनः उनकी खटपट में क्यों पड़ेगा। न्याय से यह बात सिद्ध है कि जो पूर्ण है वह सांसारिक प्रपंचों में नहीं गिरता और जो गिरता है वह पूर्ण नहीं हो सकता। दूसरी बात परमात्मा दयालु है। यदि वह कर्त्ता है तो जीवों को दुःखी क्यों रखता है। क्यों नहीं सब जीवों को एकान्त सुखी बना देता। जैसे किसी आदमी का लड़का नदी में डूबता रहे और वह समर्थ होता हुआ भी किनारे खड़ा देखता ताकता रहे तो उस आदमी को पिता कहा जायगा या पुत्र घातक ? पिता स्वयं वैद्य हो और उसका पुत्र बीमार हो। यदि वह उसे दवा न दे तो उसे क्या कहा जायगा ? अतः जिस रूप में लोग कर्त्ता मानते हैं उस रूप में तो परमात्मा कर्त्ता नहीं है।

अब मूल प्रश्न पर आ जाइये। परमात्मा को नमस्कार करने से क्या लाभ है ? एक भक्त आचार्य कहते हैं:—

त्वं तारको जिन ! कथं भविनां त एव

त्वामुद्वहन्ति हृदयेन यदुत्तरन्तः ।

यद्वा दृतिस्तरति यज्जलमेष नून

मन्तर्गतस्य मरुतः स किलानुभावः ॥

(कल्याण मन्दिर स्तोत्र—)

इस श्लोक में विरोधाभास अलंकार है। आचार्य कहते हैं—हे जिनेश्वर देव ! तू हमारा तारक कैसे है। बल्कि हमी भव्य प्राणी तेरे को अपने हृदय में धारण करके तैरते हैं। अर्थात् हम तुझको अपने हृदय में रखकर तैराते हैं। इतना कहकर आचार्य वापस अपनी बात को संभाल लेते हैं। नहीं नहीं मैं भूल गया। मैं परमात्मा को अपने हृदय में धारण करके नहीं तैरता हूं किन्तु मेरे हृदय में परमात्मा विराजमान होने से मैं तैरता हूं। संसार समुद्र से पार उतरता हूं। जैसे पानी पर मशक तैरती है। मशक में तैरने की शक्ति नहीं है। किन्तु उसमें वायु भर करके उसका मुख बन्द कर देने से वह पानी पर तैरने लगती है। मशक के अन्तर्गत जो वायु है उसी का प्रभाव है कि वह पानी पर तैरती है।

मित्रो ! इस कथन पर से आप समझ गये होंगे कि परमात्मा स्वयं प्रेरक बनकर हमको संसार समुद्र से पार नहीं

उतारता। किन्तु हम स्वयं ही उसका स्वरूप समझकर उसे अपने हृदय में जागृत करते हैं और इस तरह उसके सहारे से भव समुद्र से पार हो सकते हैं। परमात्मा नहीं तारता किन्तु फिर भी उसका सहारा लिए बिना न कोई तिरा है न तिरता है और न भविष्य में ही तिरेगा।

कोई शंका कर सकता है कि यह तो जैनियों के कथन की चालाकी है। एक तरफ तो कहते हैं कि परमात्मा तारक नहीं है और दूसरी तरफ कहते हैं कि उसकी सहायता के बिना कोई तिर नहीं सकता। यह चालाकी नहीं है। वस्तु स्वरूप ही ऐसा है तब क्या किया जाय। एक आदमी का पिता भी मौजूद है और पुत्र भी है। मैं पूछता हूं इस आदमी को क्या कहा जाय ? पिता कहा जाय या पुत्र ? यह पिता भी है और पुत्र भी। एक ही काल में यह पिता पुत्र दोनों है। अपने बाप की अपेक्षा से पुत्र है और अपने पुत्र की अपेक्षा से पिता। दो तार से उत्पन्न होनेवाली बिजली के लिए एक तार से उत्पन्न होने की बात कैसे कही जा सकती है।

मैं आप लोगों से ही पूछता हूं कि आप ऊपर बैठे हैं या नीचे ? आप एक उत्तर नहीं दे सकते। आप यही उत्तर देंगे कि महाराज ! आपकी अपेक्षा नीचे बैठे हैं और जो लोग हम से नीचे बैठे हैं उनकी अपेक्षा ऊँचे बैठे हैं। अब यदि कोई आदमी जिद् कर बैठे कि एक ही उत्तर दो, ऊपर बैठे हो या नीचे, तो कैसे संभव हो सकता है। एक उत्तर हो नहीं सकता। जगत् की सारी वस्तुएं एक दूसरे की अपेक्षा रखती हैं।

इसी प्रकार दिशा के सम्बन्ध में भी समझो। आपसे कोई पूछे कि आपका मुख किस दिशा में है तो आप यही उत्तर देंगे कि अमुक आदमी की अपेक्षा अमुक दिशा में है और अमुक की अपेक्षा अमुक में। इस प्रकार अनेकान्त वाद की सहायता से वस्तु स्वरूप का निर्णय होता है। इसमें चालाकी क्या है। व्याकरण शास्त्र में भी कहा है—

साभिधेयापेक्षावधि नियमो व्यवस्था।

अर्थात् अपेक्षा से ही वस्तु का प्रतिपादन हो सकता है। अपेक्षा से ही व्यवस्था दी जा सकती है। इसी नियम से भगवान् तारक भी हैं और तारक नहीं भी हैं। भगवान् तारक किस प्रकार है यह बात और खुलासावार बताता हूं।

मान लो एक आदमी नदी के उस पार खड़ा है। उसे नदी पार करनी है। वह तैरना नहीं जानता है। एक दूसरा आदमी वहां आगया। उसने पूछा भाई कोई नदी पार करने का उपाय बताओ। आगन्तुक व्यक्ति ने बताया कि इसमें क्या है। नदी पार करने का सीधा उपाय है। हवा के सहारे नदी पार करलो। इतना कह कर वह तो चला गया। इस आदमी ने सोचा कि हवा तो सर्वत्र है। मेरे मुख में, पेट में और नदी में भी हवा है। यह सोचकर वह नदी में कूद पड़ा। किन्तु वह तैरने के बजाय पानी में डूबने लगा। तुरत वापस बाहर निकल आया। थोड़ी देर बाद दूसरा आदमी फिर आगया। उसने कहा—दोस्त! तेरे कहने में आकर मैं नदी में

कूद पड़ा था। मरते मरते बचा हूं। आगन्तुक ने कहा—भाई! खाली हवा तैरने में सहायक नहीं होती। देख मैं बताता हूं कि हवा किस प्रकार मनुष्य को तैराती है। वह एक मशक ले आया। उसमें हवा भर कर उसका मुंह बंद कर दिया। फिर उस पर उस आदमी को बैठा दिया। वह मशक के सहारे सरलता पूर्वक नदी पार कर गया।

आगन्तुक ने पूछा—अब बताओ हवा पार उतारती है या नहीं? उस आदमी ने कहा—हां भाई हवा पार उतारती है। पहले मैंने हवा को अपनाया न था। अज्ञानता से यों ही कूद पड़ा था।

इसी प्रकार परमात्मा के लिए भी समझियेगा कि जो उसको अपना लेता है, हृदय में उसको बंद करके इन्द्रियों के द्वार बंद कर देता है, परमात्मा उसको इस संसार समुद्र से पार उतार देता है।

कहने का सारांश यह है कि एक उपादान कारण होता है और एक निमित्त कारण होता है। उपादान होने पर भी निमित्त की आवश्यकता होती है। निमित्त कारण के होने पर ही उपादान कार्यरूप में परिणित होता है। प्रधानता उपादान कारण की है। मिट्टी पानी आदि के होने पर भी बीज के बिना वृक्ष नहीं पैदा हो सकता। कितनी ही मिट्टी हो और पानी भी खूब हो किन्तु यदि छोटा सा बीज न हो तो वट वृक्ष पैदा नहीं हो सकता। बीज की मुख्यता है। बीज उपादान

इसी प्रकार दिशा के सम्बन्ध में भी समझो। आपसे कोई पूछे कि आपका मुख किस दिशा में है तो आप यही उत्तर देंगे कि अमुक आदमी की अपेक्षा अमुक दिशा में है और अमुक की अपेक्षा अमुक में। इस प्रकार अनेकान्त वाद की सहायता से वस्तु स्वरूप का निर्णय होता है। इसमें चालाकी क्या है। व्याकरण शास्त्र में भी कहा है—

साभिधेयापेक्षावधि नियमो व्यवस्था।

अर्थात् अपेक्षा से ही वस्तु का प्रतिपादन हो सकता है। अपेक्षा से ही व्यवस्था दी जा सकती है। इसी नियम से भगवान् तारक भी हैं और तारक नहीं भी हैं। भगवान् तारक किस प्रकार है यह बात और खुलासावार बताता हूं।

मान लो एक आदमी नदी के उस पार खड़ा है। उसे नदी पार करनी है। वह तैरना नहीं जानता है। एक दूसरा आदमी वहां आगया। उसने पूछा भाई कोई नदी पार करने का उपाय बताओ। आगन्तुक व्यक्ति ने बताया कि इसमें क्या है। नदी पार करने का सीधा उपाय है। हवा के सहारे नदी पार करलो। इतना कह कर वह तो चला गया। इस आदमी ने सोचा कि हवा तो सर्वत्र है। मेरे मुख में, पेट में और नदी में भी हवा है। यह सोचकर वह नदी में कूद पड़ा। किन्तु वह तैरने के बजाय पानी में डूबने लगा। तुरत वापस बाहर निकल आया। थोड़ी देर बाद दूसरा आदमी फिर आगया। उसने कहा—दोस्त! तेरे कहने में आकर मैं नदी में

कूद पड़ा था। मरते मरते बचा हूं। आगन्तुक ने कहा—भाई! खाली हवा तैरने में सहायक नहीं होती। देख मैं बताता हूं कि हवा किस प्रकार मनुष्य को तैराती है। वह एक मशक ले आया। उसमें हवा भर कर उसका मुंह बंद कर दिया। फिर उस पर उस आदमी को बैठा दिया। वह मशक के सहारे सरलता पूर्वक नदी पार कर गया।

आगन्तुक ने पूछा—अब बताओ हवा पार उतारती है या नहीं? उस आदमी ने कहा—हां भाई हवा पार उतारती है। पहले मैंने हवा को अपनाया न था। अज्ञानता से यों ही कूद पड़ा था।

इसी प्रकार परमात्मा के लिए भी समझियेगा कि जो उसको अपना लेता है, हृदय में उसको बंद करके इन्द्रियों के द्वार बंद कर देता है, परमात्मा उसको इस संसार समुद्र से पार उतार देता है।

कहने का सारांश यह है कि एक उपादान कारण होता है और एक निमित्त कारण होता है। उपादान होने पर भी निमित्त की आवश्यकता होती है। निमित्त कारण के होने पर ही उपादान कार्यरूप में परिणित होता है। प्रधानता उपादान कारण की है। मिट्टी पानी आदि के होने पर भी बीज के बिना वृक्ष नहीं पैदा हो सकता। कितनी ही मिट्टी हो और पानी भी खूब हो किन्तु यदि छोटा सा बीज न हो तो वट वृक्ष पैदा नहीं हो सकता। बीज की मुख्यता है। बीज उपादान

कारण है। उपादान कारण उसे कहते हैं जो पहले कारण रूप में हो और बाद में कार्यरूप में हो जावे। और कारण उसको कहते हैं जो कार्य में सहायक हो। कहा है—

नियमेन कार्यं करोतीति कारणम्

निश्चय से जो कार्य करता है वह उपादान कारण है। और जो स्वयं कार्य रूप में परिणत न हो किन्तु जिसकी सहायता के बिना कार्य न हो वह निमित्त कारण है। घड़ा मिट्टी का बनता है मगर कुंभकार की सहायता के बिना स्वयं नहीं बन जाता।

यही बात आत्मा और परमात्मा के लिए समझो। आत्मा उपादान तो है मगर परमात्मा की सहायता से वह उपादान कारण बन गया। वैसे आत्मा तो अनादि काल से ही है। फिर वह परमात्मा क्यों नहीं बन गया? परमात्मारूप निमित्त कारण का योग न मिलने से उपादान कार्य न कर सका।

परमात्मा का स्मरण सच्चे दिल से हो तभी वह हमारा सहायक बन सकता है। इसमें ऊपरी दिखावा नहीं चल सकता। परमात्मा की अदालत में बाहरी उठ बैठ का उतना महत्त्व नहीं है जितना भावना का है। आपकी भावना देखी जायगी कि किस भाव से प्रेरित होकर आपने धर्म करणी की है। भावना के बिना की हुई करणी द्रव्य करणी गिनी जायगी! परमात्मा का स्मरण करने में यदि काम क्रोध लोभ

मोह आदि विकार न छूटे तो वह स्मरण दिखावटी गिना जायगा। काम क्रोध और परमात्मा दोनों को एक साथ हृदय में स्थान नहीं दिया जा सकता। दो घोड़ों पर एक साथ सवार नहीं हुआ जाता काम क्रोधादि को निकाले बिना परमात्मा का स्मरण नहीं हो सकता। ठाणांग सूत्र में कहा है कि हे गौतम! जब तक दो बातें न छूटे जीव धर्म का अधिकारी नहीं हो सकता। वे दो बातें हैं—आरम्भ और परिग्रह धर्म प्राप्त करने के लिए इनको पतला करना आवश्यक है। कहा है—

आरम्भ परिग्रह दोय ए, तेवीस विषय कषाय
जब लग पतला नहीं पडे नहीं समकित पाय
इम समकित मन थिर करो पालो निराति चार

चाहे आरम्भ परिग्रह कहो चाहे विषय कपाय कहो, जब तक ये पतले नहीं पड़ते, अर्थात् इन पर अरुचि पैदा न हो यह भावना उत्पन्न न हो कि हे प्रभो! कब मैं आरम्भ परिग्रह और विषय कपाय से निवृत्त होऊं। तब तक परमात्मा का भजन नहीं हो सकता।

जो व्यक्ति विषय कषाय और आरम्भ परिग्रह को बढ़ाता जाता है और साथ में परमात्मा का भजन भी करता जाता है वह भजन का रहस्य नहीं समझता। वह उल्टी गंगा बहाता है।

पर्यूषण पर्व है। कई लोग इस वक्त तपस्या कर रहे हैं किन्तु किसी कामना को लेकर तपस्या नहीं करनी चाहिये। निष्काम भाव से तप होना चाहिए। इन दिनों में आपसे बने उतना त्याग करो। किन्तु अहंकार त्याग कर त्याग करो। जो कुछ आड़ अंतराय है वह अहंकार की है। अतः अहंकार त्याग करके परमात्मा की प्रार्थना करेंगे तो सदा कल्याण है।

चरित्र

आज श्रावक सुदर्शन की परीक्षा है। परीक्षक कोई साधारण व्यक्ति नहीं किन्तु स्त्री चरित्र में पारंगत रानी अभया है। अभया ने सेठ सुदर्शन को चरित्र भ्रष्ट करने की प्रतिज्ञा ग्रहण की है। चार प्रकार की संज्ञाएं हैं–अहार संज्ञा, भय संज्ञा, मैथुन संज्ञा और परिग्रह संज्ञा। मनुष्य में मैथुन संज्ञा का अंश अधिक रहता है। जो इस संज्ञा को जीत लेता है वह सबको जीत लेता है। काम को सबसे बड़ा शत्रु कहा गया है। परमात्मा की प्रार्थना करने से काम विकार भी जीता जा सकता है। सुदर्शन मैथुन संज्ञा को जीतने के लिए कृत संकल्प है।

इधर अभया रानी भी सुदर्शन को शील से चलायमान करने के लिए कृत संकल्प है कपिला अभया को समझाती है कि व्यर्थ प्रयत्न मत करो।

व्यर्थ गर्व मत धारो रानीजी मैं सब विधि कर छानी
सुदर्शन नहीं चले शील से यही बात लो मानी रे ॥ धन०॥

जो मैं नारी हूं हुशियारी सुदर्शन वश लाऊं
नहीं तो व्यर्थ जगत् में जीकर तुझे न मुंह दिखलाऊं रे। घन.।

कपिला कहती है-रानीजी व्यर्थ गर्व न करो। दुनिया में किसी का भी अभिमान नहीं चला है। गर्व करने से राजा रावण भी हार गया था तो दूसरों की क्या बात कहना।

कपिला ऊपर से अभया को यह बात कह रही है कि सुदर्शन को तू डिगा नहीं सकती किन्तु उसके मन में यह भावना है कि रानी को जोश चढ़े और किसी तरह उस व्यक्ति को डिगा दे जिसने मुझको धोखा दिया है। वह उस व्यक्ति का मान मर्दन करना चाहती है जिसने उसको छका दिया था।

मनमें कुछ और भाव रखना और शब्दों से कुछ और कहना यही मिथ्यात्व है। शास्त्र में कहा है—

समयं तिमन्नमाणे समया वा असमया वा समया होयाति होय व्वा

और

असमयं ति मन्नमाणे असमया वा समया वा असमया होयाति होय व्वा

कलुषित हृदय होने पर सच्ची या झूठी वात भी झूठी ही गिनी जाती है। और शुद्ध हृदय से कही हुई झूठी या सच्ची वात भी सच्ची गिनी जाती है। हृदय शुद्ध है, विचार न्याययुक्त है फिर भी छद्मस्थ होने से चूक हो जाय तो वह समकिती माना जाता है। शुद्ध हृदय से यह माने कि जो केवली कहते हैं वह सत्य है। ऐसा मानते हुए भी छद्मस्थता

के कारण भूल हो जाय तो भगवान् उसे सम्यग्दृष्टि ही कहते हैं। अतः धर्माराधन के लिए हृदय की पवित्रता प्रथम शर्त है। ऊपर से कोई कुछ भी कहे उसकी नियत पर खयाल करके उसकी बात मानना चाहिए।

कई मुनियों को घानी में पीला गया और गजसुकुमार के सिर पर खीरे रखे गये तब भी वे अपने सत्य से चलायमान न हुए। वे समकिती थे और समकिती ही बने रहे। इसके विपरीत गौशालक और जमाली जैसे लोग भी हुए हैं जिन्होंने भगवान् की निन्दा करने में कसर नहीं रक्खी। इनका ऊपरी व्यवहार कुछ और था। और भीतरी भावना कुछ और थी। इसलिए इनकी करणी विपरीत ही रही। वे मिथ्या-दृष्टि ही बने रहे।

कपिला के मुख से कहे हुए शब्द दूसरे हैं और भीतर में आशय कुछ और है। भीतर में उसका आशय यह है कि दुनिया में धर्म नाम की चीज न रहे। लोग धर्म धर्म चिल्लाते हैं, यह व्यर्थ है। मौज मजा करना और अपनी इच्छाओं की येन केन प्रकारेण पूर्ति करना ही कर्त्तव्य है।

आज इस जमाने में भी कई लोग धर्म और ईश्वर का नाम इस दुनिया से मिटा देना चाहते हैं। वे धर्म और ईश्वर का बॉयकाट करना चाहते हैं। किन्तु कई लोग इसके विरुद्ध मान्यता रखते हैं। वे धर्म और ईश्वर के नाम पर हंसते हंसते अपने प्राणों का बलिदान तक करने के लिए कटिबद्ध

हैं। धर्म भगवान् का प्रवर्ताया हुआ है अतः कोई उस पर कितनी ही धूल उड़ाने की कोशिश करे ज़रा भी सफल नहीं हो सकता। हां, वह ऐसा दुष्प्रयत्न करके अपनी आत्मा को जरूर कलुषित कर लेता है।

कपिला की बातों से और अधिक जोश में आकर अभया ने कहा—मैं तिरियाचरित की आचार्या हूं। यदि मैंने अपनी कला के बल से सुदर्शन को अपना गुलाम न बना लिया तो मैं तुझको अपना मुंह न दिखाऊँगी। कपिला ने कहा—अभी मैं अधिक कुछ नहीं कहना चाहती। अच्छी बात है आप अपने प्रयत्न में सफल हों यह मेरी हार्दिक कामना है। यदि आप सेठ को डिगाने में समर्थ हो गईं तो मैं आपकी प्रशंसा करूंगी।

अभया कहने लगी—सखी, अब से मैं हर बात व काम सुदर्शन को अपने काबू में करने के उद्देश्य से ही किया करूंगी। लोग ऊपर से कुछ भी समझें, मेरा हर काम सुदर्शन को लक्ष्य करके हुआ करेंगे। मेरा खाना पीना, श्रृंगार सजना, उद्यान विहार करना आदि सब कार्य इस मतलब की सिद्धि के लिए होंगे।

कपिला और अभया की, उत्सव देखते हुए रथ में बैठे बैठे, ये सब बातें हो रही थीं। उधर मनोरमा उनके पीछे अपने रथ में नीचे दृष्टि किये बैठी थी मानो ईश्वर और पति का ध्यान कर रही हो। अथवा किसी ने उसको इधर उधर ताकने की मानो आण दिला दी हो। इस तरह चलते चलते सब

के कारण भूल हो जाय तो भगवान् उसे सम्यग्दृष्टि ही कहते हैं। अतः धर्माराधन के लिए हृदय की पवित्रता प्रथम शर्त है। ऊपर से कोई कुछ भी कहे उसकी नियत पर खयाल करके उसकी बात मानना चाहिए।

कई मुनियों को घानी में पीला गया और गजसुकुमार के सिर पर खीरे रखे गये तब भी वे अपने सत्य से चलायमान न हुए। वे समकिती थे और समकिती ही बने रहे। इसके विपरीत गोशालक और जमाली जैसे लोग भी हुए हैं जिन्होंने भगवान् की निन्दा करने में कसर नहीं रक्खी। इनका ऊपरी व्यवहार कुछ और था। और भीतरी भावना कुछ और थी। इसलिए इनकी करणी विपरीत ही रही। वे मिथ्यादृष्टि ही बने रहे।

कपिला के मुख से कहे हुए शब्द दूसरे हैं और भीतर में आशय कुछ और है। भीतर में उसका आशय यह है कि दुनिया में धर्म नाम की चीज न रहे। लोग धर्म धर्म चिल्लाते हैं, यह व्यर्थ है। मौज मजा करना और अपनी इच्छाओं की येन केन प्रकारेण पूर्ति करना ही कर्त्तव्य है।

आज इस जमाने में भी कई लोग धर्म और ईश्वर का नाम इस दुनिया से मिटा देना चाहते हैं। वे धर्म और ईश्वर का बॉयकाट करना चाहते हैं। किन्तु कई लोग इसके विरुद्ध मान्यता रखते हैं। वे धर्म और ईश्वर के नाम पर हंसते हंसते अपने प्राणों का बलिदान तक करने के लिए कटिबद्ध

हैं। धर्म भगवान् का प्रवर्ताया हुआ है अतः कोई उस पर कितनी ही धूल उड़ाने की कोशिश करे जरा भी सफल नहीं हो सकता। हां, वह ऐसा दुष्प्रयत्न करके अपनी आत्मा को जरूर कलुषित कर लेता है।

कपिला की बातों से और अधिक जोश में आकर अभया ने कहा—मैं तिरियाचरित की आचार्या हूं। यदि मैंने अपनी कला के बल से सुदर्शन को अपना गुलाम न बना लिया तो मैं तुझको अपना मुंह न दिखाऊँगी। कपिला ने कहा—अभी मैं अधिक कुछ नहीं कहना चाहती। अच्छी बात है आप अपने प्रयत्न में सफल हों यह मेरी हार्दिक कामना है। यदि आप सेठ को डिगाने में समर्थ हो गईं तो मैं आपकी प्रशंसा करूंगी।

अभया कहने लगी—सखी, अब से मैं हर बात व काम सुदर्शन को अपने काबू में करने के उद्देश्य से ही किया करूंगी। लोग ऊपर से कुछ भी समझें, मेरा हर काम सुदर्शन को लक्ष्य करके हुआ करेंगे। मेरा खाना पीना, श्रृंगार सजना, उद्यान विहार करना आदि सब कार्य इस मतलब की सिद्धि के लिए होंगे।

कपिला और अभया की, उत्सव देखते हुए रथ में बैठे बैठे, ये सब बातें हो रही थीं। उधर मनोरमा उनके पीछे अपने रथ में नीचे दृष्टि किये बैठी थी मानो ईश्वर और पति का ध्यान कर रही हो। अथवा किसी ने उसको इधर उधर ताकने की मानो आण दिला दी हो। इस तरह चलते चलते सब

के रथ जहां उत्सव का स्थान था वहां आ पहुंचे। रानी अपने डेरे में चली गई और मनोरमा अपने डेरे में।

अभया रानी की एक पंडिता नाम की धाय थी। उसने रानी को बहुत उदास देखकर पूछा कि आज आप इतनी उदास क्यों हैं? रानी ने कहा-धाय! क्या कहूं, कुछ कहा नहीं जाता। यदि मेरी मनोकामना पूरी न हुई तो मेरा जीवन टिकना कठिन मालूम देता है। मेरा जीवन गहरे संकट में है मालूम पड़ता है, मेरा अंतिम काल निकट आ गया है। पंडिता ने पूछा-क्या बात है। आपकी यह युवावस्था, इतना सौन्दर्य, भोग विलास की सामग्री की कोई कमी नहीं फिर क्योंकर मरने की भावना पैदा हो गई।

अभया ने कहा-अपमानित होकर जिन्दा रहने की अपेक्षा मौत को स्वीकार कर लेना बेहतर है। मानधनी को मान चाहिए, जीवन नहीं।

धाय ने पूछा-आपका अपमान किसने किया है। कौन ऐसा व्यक्ति है जो आपका अपमान करने की हिमाकत कर सकता है?

अभया—धाय! तुम पुरोहितानी कपिला को जानती हो। उसके साथ रास्ते चलते चलते मेरा वाद हो गया था।

धाय—वाद हो गया तो क्या हुआ। तुम कभी वाद में किसी से हारी हो सदा तुम्हारी जीत हुई है और अब भी होगी। अतः चिन्ता छोड़ो।

अभया—धाय ! मैंने कपिला से वाद ही नहीं किया किन्तु वाद करते करते एक होड़ लगाली है। एक चेलेंज उसके सामने फेंक दिया है। मुझसे अकेले यह बात पार जाना कठिन जान पड़ता है।

धाय—क्या बात है सो मेरे सामने रक्खो। क्या मुझ से भी परहेज रखने लायक़ बात है ?

अभया—धाय ! तेरे से परहेज कैसे रखा जा सकता है। अगर अपने मन की मुराद तेरे सामने भी प्रकट न करूंगी तो किसके सामने करूंगी। मैंने तेरे भरोसे पर ही होड़ की है। सुन, मैंने क्या होड़ की है। नगर सेठ सुदर्शन को तू जानती ही है। कपिला उसको अपने वश में न कर सकी। उल्टे उससे ठगी गई। उसने मेरे सामने बड़े अभिमान से कहा कि इस जगत् में ऐसी कोई नारी नहीं है जो सुदर्शन को अपने चरित्र से भ्रष्ट कर सके ! मैं यह वचन सहन न कर सकी। मैंने उसको सुना दिया कि हम स्त्रियों की कला के सामने बड़े २ देव और ऋषिमुनि भी हार गये तो बेचारा सुदर्शन किस बाग की मूली है मैं उसको काबू में करके रहूंगी। अगर काबू न कर सकूं तो तुझे अपना मुँह न दिखाऊंगी। धाय ! मैंने प्रतिज्ञा तो करली है मगर इसको पार पहुंचाना तुम्हारा काम है। मुझे तुम्हारा ही भरोसा है। मुझे इस बात की बड़ी चिन्ता है कि उसे किस प्रकार वश में करूं क्योंकि वह किसी के घर तक नहीं जाता है।

पण्डिता कहने लगी--बस इतनी सी बात के लिए इतनी चिन्ता ? हम कहो सो काम कर सकती हैं। हम आसमान से तारे उतार कर ला सकती हैं। हथेली में राई जमा कर नखपर छौंक लगाकर जिमा सकती हैं। अतः रानी चिंता छोड़ो। तुम्हारी प्रतिज्ञा पूरी होगी। आप सावधान होइये। आप साधिका और मैं साधन बनती हूं। आप जैसी साधिका और मुझ जैसी साधन रूप हो तब कौनसा ऐसा काम है जो पूरा न हो सकेगा। तुम जिसे कहो उसे पकड़ कर तुम्हारे पास ला सकती हूं। मगर आप एक काम करना। आप ऐसा रूप दिखाना जिससे लोगों को यह विश्वास हो जाय कि आपको कोई देव लग गया है। आप बारंबार मूर्छित हो जाना और जमीन पर गिर जाना। फिर मैं सुदर्शन को पकड़ लाने का उपाय करती हूं।

घाट घड़ बहुविध जब मन में, एक उपाय मन आया
कौमुदी उत्सव निकट आवे, जब काम करूं मन चाया रे ॥धन०॥
कामदेव की प्रतिमा बनाकर महोत्सव खूब मंडाया।
बाहर जावे भीतर आवे सब जन को भरमाया रे ॥धन०॥

रानी को पंडिता धाय ने पट्टी पढ़ा दी थी। वैसे रानी स्वयं ही त्रिया चरित्र में पूर्ण पण्डिता थी। डेरे में जाकर उदास होकर रानी सो गई। पंडिता दौड़ कर दधिवाहन राजा के पास गई और कहने लगी कि न मालूम रानी जी को क्या हो गया है। आप इसी वक्त शीघ्र चल कर रानी की

हालत देखिये और उचित उपाय करिये। देखने से ही आप को ज्ञात होगा कि रानी की हालत कितनी खतर नाक हो गई है।

पण्डिता ने अपनी बातों की चतुराई और त्रिया चरित्र से राजा को रानी के डेरे पर आने के लिए विवश कर दिया। कहावत है—

'को गहनो वनो ? त्रिया चारित्रम्'

किसी ने पूछा कि गहन जंगल कौन सा है ? तो सामने वाले ने उत्तर दिया कि त्रिया चरित्र ही गहन वन है। इस जंगल में कितना भी सावधान व्यक्ति हो मार्ग भूल जाता है। दधिवाहन राजा भी पंडिता की बात में आगया और तुरंत घवड़ाता हुआ रानी के खेमे पर आया। उसे इस बात का भय हो गया था कि आज रानी पहन ओढ़ कर बाहर निकली है कहीं कोई भूत न लग गया हो। संभव है इसी बात की गड़बड़ हो।

राजा के आने की आहट सुनकर रानी और अधिक ढोंग करके कपड़ा तानकर लम्बी होकर सो गई और ऊंहूं ऊंहूं करने लगी। राजा ने उसके पास जाकर पूछा कि प्रिये सुलोचना सुदेवी तुमको क्या हो गया है ? राजा उसके मुख पर का कपड़ा हटाकर बार बार पूछता था और रानी बार बार मुख पर कपड़ा ढक लेती थी और अधिक हूं हूं करती जाती

थी। वह यह भाव दर्शाती थी कि उसके शरीर में कोई देव प्रवेश कर गया है। राजा यह दृश्य देखकर घबड़ाने लगा तब पंडिता कहने लगी। महाराज! मुझे अब याद आया कि ऐसा क्यों हो रहा है। यदि आप इजाजत दें तो मैं निवेदन करूं। राजा ने कहा-कहो, क्या बात है।

पण्डिता कहने लगी—जब आप युद्ध में गये हुए थे तब पीछे से पतिव्रता रानी ने आपकी क्षेम कुशल के लिए तपस्या शुरू की थी। पतिव्रता नारी के लिए पति ही परमेश्वर है। पति की अनुपस्थिति में वह विकल रहती है। उसे पति के बिना कोई काम अच्छा नहीं लगता। रानी जी ने भी यह मनौती ले ली कि 'हे इष्ट देवी! मेरे पतिदेव जीते जागते कुशल पूर्वक घर आ जायंगे तो पहले मैं तेरी पूजा करूंगी तब घर से बाहर निकलूंगी'। उस देवी की कृपा से आप युद्ध से कुशल पूर्वक लौट आये। आपने आकर कौमुदी उत्सव में शामिल होने की घोषणा करवा दी। रानी अपनी मनौती पूरा न कर सकी। आपकी आज्ञा का पालन करना प्रथम धर्म समझ कर रानी जी बाहर निकल आई हैं। आपके हुक्म व प्रेम के सामने रानी जी देव को भूल गई। मगर देव कब रानी को भूलने वाला है। देव ने सोचा कि रानी की इच्छानुसार मैं राजाको सकुशल युद्ध से लौटा लाया हूं। किन्तु काम पूरा हो जाने बाद रानी मेरी मनौती पूरी करना भूल गई और इस प्रकार मेरी अवहेलना कर रही है। यह सोचकर देव ने ही यह उत्पात किया है ऐसा मुझे मालूम पड़ता है। अतः आप इस बात का कुछ उपाय करिये नहीं तो गजब हो जायगा।

पण्डिता का कथन सुनकर राजा और अधिक घबड़ाया। उसके मन में जो शंका थी वह सच्ची साबित हुई। राजा ने कहा—यह बात मुझको पहले क्यों नहीं कही? पंडिता ने कहा—महाराज यही तो बात है 'काम सर्या दुःख विसर्या' काम निकल जाने पर लोग दुःख भूल जाया करते हैं। यही बात अपने यहां भी हुई है। आपके आने पर आपके दर्शन कर के रानी जी सब बात भूल गई। राजा ने पूछा—पंडिता! अब क्या करना चाहिए सो बताओ। पंडिता ने कहा—महाराज! अब आप शीघ्र रानी को राजमहल में पहुंचाने का इन्तजाम करा दीजिये और देव का उत्सव मनाने की आज्ञा भी दीजिये। उत्सव छूट पूर्वक मनाया जा सके वैसी राज्य की तरफ से पूरी व्यवस्था करवा दें। ऐसा न हो कि बीच में आप हमें इधर आने का हुक्म दे दें और हमारा उत्सव अधूरा ही रह जाय।

एक बात और है। देव की पूजा और उत्सव के लिए हमें बार बार बाहर आना जाना पड़ेगा तथा जो देव को मानने वाले हैं उनको भी बुलाना पड़ेगा अतः पहरे दारों को हिदायत कर दें कि वे दखल न करें। पण्डिता की इच्छानुसार राजा ने सारा इन्तजाम करा दिया। पंडिता रानी को रथ में डाल कर महल में ले आई है। अब आगे क्या होता है इसका विचार आगे है।

१५-८-३६

राजकोट

१३

परमात्मा का प्रकाश प्राप्त करो

श्री अभिनंदन दुःख निकन्दन वन्दन पूजन योगजी
आशा पूरो चिन्ता चूरो, आपो सुख आरोग जी ॥ श्री० ॥

प्रार्थना—

यह भगवान् अभिनन्दनजी की प्रार्थना है। भक्त किस आशा से भगवान् की प्रार्थना करता है वह देखना है। ज्ञानियों ने भगवान् की यह पहिचान कराई है कि वह दुःखों का निकन्दन—नाश करने वाला है। जो दुःखों का नाशक होगा वही वंदन और पूजन करने के योग्य हो सकता है। भगवान् अभिनन्दन दुःख नाश करने वाले हैं अतः उनकी प्रार्थना की गई है। किस प्रकार भगवान् दुःखों का नाश करने वाले हैं, यह बात समझने की है।

यदि भगवान् दुःखों को मिटाने वाले हैं तो फिर संसार में इतना दुःख क्यों है। कोई धन के बिना दुःखी है। कोई संतानहीनता से चिन्तित है। कोई शारीरिक पीड़ाओं से त्रस्त है। कोई गृह क्लेश से परेशान है। इस प्रकार जिधर देखो

उधर दुःख ही दुःख नजर आता है। यदि परमात्मा दुःख नाशक है तो फिर इतना दुःख क्यों है। क्या सूर्य के रहते भी अंधकार रहेगा। अंधकार और सूर्य का परस्पर विरोध है। इसी प्रकार परमात्मा का और दुःख का भी आपस में विरोध है। संसार दुःखों से भरा पड़ा है इससे मालूम पड़ता है कि परमात्मा दुःख नाशक नहीं है।

परमात्मा दुःख नाशक तो है किन्तु जो उसका सहारा लेता है उसका दुःख दूर करता है। यह बात कल के व्याख्यान में विस्तार पूर्वक बताई गई थी जैसे सूर्य प्रकाश फैलाता है। किन्तु आपका उपादान ठीक होगा तभी सूर्य का प्रकाश आपके काम आ सकता है। उपादान ठीक हुए बिना सूर्य का प्रकाश क्या काम आ सकता है। उदाहरणार्थ जो आंख से अंधा है उसके लिए करोड़ सूर्यों का प्रकाश भी क्या काम का है। इसलिए आंखें उपादान रहीं और सूर्य निमित्त रहा। उपादान ठीक होने पर निमित्त काम दे सकता है। चश्मा क्या करे यदि लगाने वाला ही अंधा हो। यदि कुछ दृष्टि हो तो चश्मा बड़े अक्षर या दूर की वस्तुएं देखने में निमित्त भूत बन सकता है थोड़ी भी दृष्टि न हो तो अच्छे से अच्छा चश्मा बेकार है।

इसी प्रकार जिस आत्मा का उपादान ठीक होगा परमात्मा उसका दुःख दूर कर सकता है। परमात्मा अनन्त सूर्यों से भी बढ़कर ज्ञान रूपी प्रकाश प्रदान करनेवाला है किन्तु जिस आत्मा का उपादान ठीक होता है वही उस प्रकाश को

ग्रहण कर सकता है। इसी प्रकार जिन जीवों का उपादान ठीक होता है परमात्मा उनका दुःख अवश्य दूर करता है।

श्रद्धालु लोग मेरी इस बात को विना शंका लाये मान लेंगे। उनको इसमें कुछ भी संदेह न होगा। मगर इस जमाने के अधिकांश पढ़े लिखे लोग किसी बात को तब तक नहीं मानते जब तक कि तर्क वितर्क करके अपनी बुद्धि से बात को पूरी तरह तोल न लें। मैं भी यही चाहता हूं कि लोग किसी बात को अपनी बुद्धि से तौल कर पूरा निर्णय कर फिर विश्वास करें। बुद्धि से बात को समझकर यदि ठीक जँचे तो विश्वास लाना चाहिये। बुद्धिपूर्वक किया गया विश्वास मजबूत और ठीक होता है। राजा प्रदेशी ने धर्म की बातों पर तभी विश्वास किया था जब उसकी बुद्धि ने उनको मान लिया था। और इसीलिए बाद में धर्म पर उसकी श्रद्धा अडिग रही थी। शास्त्र में श्रावक के लिए कहा गया है कि बारंबार प्रश्नोत्तर करना चाहिए और धर्म की बातों का निर्णय करके फिर अस्थिमज्जा आदि में रचाना चाहिये।

मैं अपने लिए भी यही बात कहता हूं कि आप लोग मेरी बातें इसीलिए न मानलें कि वे मेरे द्वारा कही जाती हैं। मेरे कहने से एकदम विश्वास न करो। किन्तु अपनी बुद्धि और अनुभव की कसौटी पर कसकर यदि खरी उतरे तो मानो। यदि सुनते ही किसी बात को स्वीकार कर लेने की आप लोगों की आदत होगी और उसमें अपनी बुद्धि का तनिक भी उपयोग नहीं करेंगे तो ऐसी श्रद्धा कच्ची श्रद्धा कही जायगी। कारण

कि जिसमें अपनी निर्णायक शक्ति न होगी वह मेरी तरह किसी और की बातें सुनकर भी तुरंत विश्वास कर लेगा और इस प्रकार कभी मेरे कथन से विपरीत कथन पर भी श्रद्धा कर लेगा। पूर्व की श्रद्धा को छोडकर नवीन श्रद्धा ग्रहण कर लेगा। फिर कोई तीसरा व्यक्ति अन्य प्रकार की बात कहेगा तो उस पर भी श्रद्धा कर लेगा। इस प्रकार बुद्धिहीन व अबुद्धिपूर्वक की गई श्रद्धा का कोई मुल्य नहीं है। श्रद्धा के साथ बुद्धि का मेल होता है तभी दोनों—श्रद्धा और बुद्धि की शोभा है। श्रद्धा शून्य बुद्धि की भी कुछ कीमत नहीं है।

आप लोगों को जो बात अच्छी तरह समझ में न आये वह मुझसे पूछो। मैं अपनी शक्ति के अनुसार उत्तर देने व समझाने के लिए तय्यार हूं।

अब प्रश्न यह है कि क्या परमात्मा दुःख निवारक है। यदि है तो किस प्रकार है: सूर्य को प्रकाश देते हुए हम प्रत्यक्ष देखते हैं किन्तु परमात्मा किस तरह दुःख निवारक करता हैं हमारे ध्यान में नहीं आता। एक भक्त ने भगवान् की प्रार्थना करते हुए कहा है—

चन्द्र सूर्य दीप मणि की ज्योति तेन उल्लंघितम्।
ते ज्योति थी अपरम ज्योति नमो सिद्ध निरंजनम्॥

संसार के जीव प्रकाश के विना नहीं रह सकते। यदि प्रकाश न हो तो संसार के अधिकांश काम रुक जाते हैं।

किसी से पूछा जाय कि तुम किसके प्रकाश में कार्य करोगे तो वह यह उत्तर देगा कि मैं सूर्य के प्रकाश में कार्य करना पसन्द करता हूं। फिर उससे कहा जाय कि सूर्य दिन में ही रहता है, रात्रि में वह गैर हाजिर रहता है। यदि रात में काम करना पड़ेगा तो क्या करोगे। तब वह कहेगा कि रात में चंद्रप्रकाश से काम लूंगा। चन्द्रमा भी कृष्णपक्ष में नहीं रहता तब क्या करोगे? तब वह कहेगा ग्रह नक्षत्र और तारों के प्रकाश से काम लूंगा। जब बादल आसमान में छाये रहते हैं, तब ग्रह नक्षत्र और तारों का प्रकाश भी काम नहीं देता वैसी हालत में क्या करोगे? तब वह कहेगा दीपक के प्रकाश में अपना कार्य करूंगा। दीपक के लिए तैल बत्ती आदि की जरूरत रहेगी और वह अग्नि के बिना जलाया नहीं जा सकता। यदि दीपक का योग भी न मिला तब किसके प्रकाश से काम चलाओगे?

यहां आकर उत्तर देने की गति रुक जाती है। क्योंकि साधारण लोग ऊपर बताये हुए प्रकाशों के सिवाय एक विचित्र प्रकाश को नहीं जानते जिसके प्रकाश से उक्त सभी प्रकाश प्रकाशित होते हैं। ज्ञानीजन कहते हैं हम तुम को एक दूसरे ही प्रकार के प्रकाश की सूचना करते हैं। तुमने जिन सूर्यादि के प्रकाश का जिक्र किया है उससे तुम पराधीन बन जाओगे। किन्तु हम तुमको जिस प्रकाश की खबर देते हैं उसमें परतंत्रता नहीं है। वह प्रकाश स्वतंत्र है। तुम्हारे स्वाधीन है। वह कहीं बाहर खोजने नहीं जाना पड़ता। तुम्हारे भीतर में ही विद्यमान है। सिर्फ तुम उसको भूल रहे हो।

जब तुम सोते हो और निद्रा में आंखे बंद रहती हैं, साथ साथ नाक कान जबान हाथ पैर आदि भी सुस्त पड़े रहते हैं तब किस प्रकाश से स्वप्न में वस्तुएं देखा करते हो? उस समय सूर्य चन्द्र दीप आदि का प्रकाश काम नहीं देता क्योंकि आंखें बंद रहती हैं। आंखें खुली हों तभी सूर्यादि का प्रकाश काम दे सकता है। जीव स्वप्न में वस्तुओं को देखता है यह बात अनुभव सिद्ध है। मैं आप लोगों से पूछता हूं स्वप्न में कौनसा प्रकाश है जिसके जरिये आत्मा विविध दृश्य देखता है? स्वप्न में आत्मा केवल विविध दृश्यों को देखता ही नहीं है किन्तु दूसरों की बातें भी सुनता है, विविध व्यञ्जनों का आस्वाद भी लेता है, सुगन्धित और दुर्गन्धित पदार्थों की वास भी ग्रहण करता है और स्पर्श भी करता है। स्वप्न में जीव आंखों की सहायता के बिना देखता है, कान की सहायता के बिना सुनता है, नाक की सहायता के बिना गंध ग्रहण करता है, जीभ की सहायता के बिना बोलता और स्वाद लेता है और हाथ पैर की सहायता के बिना लोगों से लड़ाई झगड़ा करता है।

मित्रों! जरा ध्यान लगाकर मेरी बात पर विचार करो कि आत्मा स्वप्नावस्था में किस प्रकाश की सहायता से सारे कार्य जागृत अवस्था के समान ही करती है। वह कौन सी ज्योति है? ज्ञानी कहते हैं—

चन्द्र सूर्य दीप मणी की ज्योति तेन उल्लंघितम्।
ते ज्योति थी अपरम ज्योति नमो सिद्ध निरंजनम्॥

जिस ज्योति ने चन्द्र सूर्य दीपक और मणि की ज्योति को परास्त कर दिया है। जो इन सब ज्योतियों से विलक्षण ज्योति है उस सिद्धस्वरुप ज्योति को सदा नमन है। इस ज्योति में किसी प्रकार का अञ्जन-कालिख नहीं है। यह प्रकाश विशुद्ध और अनन्त है। इस प्रकाश में सारा जगत हाथ में लिए हुए आमले की तरह स्पष्ट दिखाई देता है। यह प्रकाश ज्ञान रूप प्रकाश है। वह आत्मा का निजी प्रकाश है।

जब इन्द्रियां सो जाती हैं तब मन इन्द्रियों की सहायता के विना भी अपना काम चला लेता है। किन्तु मन, बुद्धि के आधिन है। और बुद्धि आत्मा के आधिन है। आत्मा के चलते बुद्धि चलती है। अगर आत्मा न हो तो न बुद्धि होगी और न मन। किसी मरे हुए आदमी को कभी स्वप्न आया है? जो जीवित है उसीको सपना आता है और वही सूर्यादि के प्रकाश के अभाव में भी सब कुछ देखता है। कहिये, वह ज्योति बड़ी रही या सूर्यादि? वह ज्योति और कोई नहीं किन्तु आत्मा ही है। आत्मा की ज्योति से ही जागृत अवस्था, स्वप्नावस्था, सुषुप्तावस्था और समाधि की अवस्था में सब कुछ देखा सुना जाता है।

इस प्रकार बाह्य सब प्रकाशों की अपेक्षा आत्मा का प्रकाश बड़ा ठहरा अब आत्मा का परमात्मा के साथ सम्बन्ध बैठाते हैं। आत्मा की ज्योति से अमर ज्योति परमात्मा की ही है। उस परमात्मा की अपरम ज्योति में अपनी ज्योति मिलाओ। आत्मा और परमात्मा की एक ही जाति है। परमात्मा को

आत्मा की अपेक्षा एक विशेषण अधिक लगा हुआ है। वह विशेषण है परम शब्द। हैं तो दोनों ही आत्माएं किन्तु एक परम आत्मा अर्थात् उत्कृष्ट आत्मा—पूर्ण विकसित आत्मा है जब कि दूसरी अविकसित और अपूर्णात्मा है। अपूर्ण को पूर्ण में मिलाने के लिए ही कहा जाता है—

श्री अभिनंदन दुःख निकन्दन वंदन पूजन योग जी।

मैं भगवान् अभिनंदन को नमन करता हूं, उनकी भाव पूजा करता हूं। क्योंकि चन्द्र सूर्य दीप आदि की ज्योति से मेरा काम नहीं चलता। मुझे परमात्मा की ज्योति चाहिए। मुझे अपनी ज्योति भगवान् की ज्योति में समर्पित करनी है। सूर्य चन्द्र दीप आदि पर तो आवरण भी आ जाते हैं। और कभी रहते और कभी नहीं भी रहते हैं। किन्तु परमात्मा की ज्योति पर न तो कभी किसी प्रकार का आवरण ही आता है और न कभी मिटती ही है। सदा शाश्वत रहने वाली है। उस ज्योति के प्राप्त हो जाने से मेरी सारी आवश्यकताएं ही नष्ट हो जायगी। फिर बेचारा दुःख क्यों कर रहेगा। दुःख का और उस ज्योति का आपस में विरोध है। जिस प्रकार अंधकार और प्रकाश में विरोध है उसी प्रकार इनमें भी है।

यदि कोई आदमी अंधा है तो अंधा होने से उसे दुःख होगा। और अंधा होने के साथ यदि वह बहरा भी है तो और अधिक दुःख होगा यदि वह गूंगा भी है और पंगु भी है तो उसके दुःख का पार नहीं। एक एक इन्द्रिय के न होने

से आत्मा अधिकाधिक दुःखी होता है। इस पर से समझना चाहिए कि आत्मा की वास्तविक ज्योति परतंत्र हो रही है। उसका देखना जानना और सुखानुभव करना इन्द्रियाधीन है। जैसे आंखों के लिए चश्मा चाहिए तो आंखें चश्मे की आधीन हुईं। इसी प्रकार इन्द्रियां भी मन का चश्मा है। मन इन आंख आदि इन्द्रियों के वश में हो गया है। यदि कोई कहे कि चश्मे के बिना देखा जा सकता है तो क्या आंखों के बिना भी देखा जा सकता है? इसका उत्तर दिया जा चुका है। स्वप्न में बिना आंखों देखते ही हैं। आत्मा में आंखों के बिना देखने की शक्ति विद्यमान है। देहाध्यास के कारण आत्मा आंखों के वश में हो रहा है। चश्मे पर क्या भूलते हो तुम्हारी आत्मा में ही देखने की शक्ति विद्यमान है। उस शक्ति को पहचानो। उसे पहचान कर प्राप्त करने की कोशिश करो। उस शक्ति को जानने व पाने के लिए ही परमात्मा की प्रार्थना की जाती है

क्यूं जाणूं क्युं बनी आवशे अभिनन्दन रस रीत हो मित्त।
पुद्गल अनुभव त्याग थीं करी जशुं परतीत हो मित्त॥
परमातम परमेश्वर वस्तुगते ते अलिप्त हो मित्त।
द्रव्ये द्रव्य भले नहीं भावे ते अन्य अव्याप्त हो मित्त॥क्युं॥

भक्त को भगवान् अभिनन्दन से प्रीत करने की भावना है किन्तु उसे कुछ कठिनाई दिखाई देती है। इस लिए वह अपने मित्र से सलाह लेता है। मित्र कोई बाहर का दूसरा मनुष्य

नहीं है किन्तु निज आत्मा को ही मित्र बनाकर उससे सलाह लेता है।

आप लोग भी अपनी आत्मा को मित्र बनाकर उससे सलाह लो। आत्मा सबसे सच्चा मित्र है। सब मित्र तो थक जाते हैं किन्तु यह ऐसा मित्र है जो आपकी सहायता करते करते कभी थकता ही नहीं हैं। अन्य रोशनी थक सकती है मगर यह रोशनी कभी नहीं थकती। सिद्धान्त में नरक का वर्णन करते हुए कहा है—

ववगय चंद सूर गह नक्खत्त तारा पवाहा

अर्थात् नरक में चंद्र सूर्य ग्रह नक्षत्र और ताराओं का प्रकाश नहीं है किन्तु आत्मा तो वहां पर भी मौजूद है अतः आत्मा को मित्र बनाओ, उससे सलाह लो। वह कभी साथ नहीं छोड़ता। आत्मा और परमात्मा का मेल होने में अन्तराय डालने वाला यह पुद्गल ही है। आत्मा परवस्तु पर ममत्व करता है अतः वह गुलाम बना हुआ है यदि आप किसी दूसरे के धन पर अपना स्वामित्व जमायेंगे तो आपको राज्य दण्ड का भागी होना पड़ेगा। क्योंकि जिस वस्तु पर आपका अधिकार नहीं है उसे अपना मानना अपराध है। आत्मा भी परवस्तु को अपना मानकर परमात्मा का अपराधी बन रहा है। और उससे दूर पड़ रहा है।

शंका की जा सकती है कि पुद्गलादि परवस्तु कैसे है? इसका समाधान यह है कि जिस वस्तु पर आप अपना अधि-

कार मानते हैं वह यदि आपके अधिकार में न रहे, आपके अधिकार से बाहर चली जावे तो वह वस्तु परवस्तु ही है। पुद्गल परवस्तु है। उसका नाम ही पुद्गल है। पुद् यानी मिलना और गल यानी विखरना। मिलना और विखरना पुद्गल का स्वभाव है। इसके विपरीत आत्मा का स्वभाव स्थायी और सच्चिदानन्द स्वरूप है। आत्मा मिलता विखरता नहीं है। वह अखण्ड है। किन्तु पुद्गलों की मालिकी करने में वह अपना स्वत्व खोदेता है। यही परमात्मा बनने में अंतराय है। उदाहरणार्थ आप अपने शरीर के बालों को अपना कहते हो किन्तु आपकी इच्छा के विरुद्ध काले बाल सफेद क्यों हो जाते हैं। यदि उन पर आपका पूरा काबू होता तो आपकी इच्छा के विरुद्ध सफेद कैसे हो जाते हैं। इस शरीर को अपना मानते हो। क्या यह आपके ताबे में है? क्या आपकी इच्छानुसार यह सदा तनदुरुस्त और हृष्ट पुष्ट बना रहता है? कोई बीमारी तो नहीं छूती? इस में बुढ़ापे की झुर्रियां तो नहीं पड़ती? जरा रूपी राक्षसी इस को पोला तो नहीं बना रही है? यदि यह सब कुछ होता है तो शरीर आप का कैसे हुआ। इसे पर ही मानना पड़ेगा।

परवस्तु को अपना मानने के कारण आत्मा को परमात्मा बनने में बड़ी बाधा हो रही है। इस बाधा को मिटाने के लिए त्याग मार्ग को अपनाने की खास आवश्यकता है। लोग त्याग की निन्दा करते हैं किन्तु त्याग के बिना जीवन टिक नहीं सकता। मेरे पास कोट में वहां के ठाकुर सा. के लड़के आये थे वे मेरे सामने बैठे बैठे ही बीड़ी पीने लगे। मैंने कहा मेरी

इतनी बातें सुनने के बाद भी आपने सभ्यता के विरुद्ध कार्य किया। क्या आप पर यही असर हुआ ? इन्होंने उत्तर दिया कि इस में क्या है। यह तो आग है इसके बिना हम लोगों का काम कैसे चल सकता है। मैंने कहा काम तो लुगाई के बिना भी नहीं चलता फिर उसे साथ क्यों नहीं लिए फिरते। अंत में वे समझ गये और उन्होंने मर्यादा का पालन किया। मतलब कि त्याग के बिना काम नहीं चल सकता जो लोग त्याग को व्यर्थ मानते हैं वे यदि निष्काम भाव से त्याग करें तो उनको पता लगे कि त्याग का कितना महत्व है। त्याग मार्ग बड़ा विकट है। एक भक्त कहता है—

अभिनन्दन जग नायक तुम सों मैं विनती केहि भांति करूं।
अघ अनेक अवलोकि आपने अवघ नाम अनुमानि उरौं ॥

हे प्रभो ! मैं आपसे किस भांति विनंती करूं। आप अनघ हैं और मैं अघ सहित हूं। तू पाप रहित है और मैं पाप सहित हूं। फिर आपके पास कैसे पहूंचू। तेरी प्रार्थना के लिए कैसे दौड़ूं।

भक्त को इस प्रकार का भय होता है। ऐसी दशा में क्या करना चाहिए। इसके उत्तर में रामचरित्र में भवभूति का दिया हुआ एक रूपक देखना होगा। पितृ कुल और श्वसुर कुल को उज्जवल बनाने वाली सती सीता को रामचन्द्र ने वन में छुड़वा दिया था उस समय का चित्र भव भूति ने इस प्रकार खींचा है। भव भूति कहते हैं कि रामचन्द्र ने सीता

को वन में भेज तो दिया था किन्तु उनको बाद में पश्चात्ताप होने लगा। मैंने सीता को वन में भेज कर अच्छा नहीं किया। सीता गर्भवती थी फिर भी मैंने उसको वन में छुड़वा दिया यह अच्छा नहीं हुआ, इस प्रकार विचार करके रामचन्द्र रात दिन दुःखी रहते थे। वे वन में गये तो वहां जनक भी आये हुए थे। रामचन्द्र सीता को वन में भेज देने के अपराध के डर से पिता स्वरुप जनक के पास जाने में हिचकने लगे। श्वसुर को पिता भी कहते हैं। पति और पत्नी आपस में प्रेम सम्बन्ध में इस प्रकार बंध जाते हैं कि उनके माता पिता भी एक दूसरे के माता पिता के समान गिने और माने जाते हैं। ऐसा वर्ताव रखने से ही पति पत्नी का सांसारिक जीवन सुखपूर्वक व्यतीत होता है। तभी संसार का गाड़ा ठीक तरह से चलता है।

रामचन्द्र को मन में बड़ा संकोच और लज्जा अनुभव हो रही है कि मैंने इनकी पुत्री को वन में त्याग दिया है, अब इनके सामने कैसे जाकर खड़ा होऊं। इनको अपना मुख कैसे दिखाऊं।

यह बात आप लोग भी जानते हैं कि निरपराधिनी सीता को रामचन्द्र ने महज इसीलिए त्याग दिया था कि लोग उसके विषय में अपवाद बोल रहे थे। रामचन्द्र को सीता के चरित्र के विषय में तनिक भी संदेह न था। वे सीता को पवित्र समझते थे। केवल लोकापवाद के कारण शुद्ध चरित्रा सीता को वन में छुड़वा दिया था।

इस प्रकार के अपराध से संतप्त राम अपने पिता स्वरूप श्वसुर जनक से भेंट करने में संकोच का अनुभव कर रहे हैं। यही बात भक्त भी कहता है कि हे प्रभो! मैं अनेक वासनाओं के जाल में फंसा हुआ अपराधी व्यक्ति आप जैसे पवित्र स्वरूप की भेंट कैसे करुं। मुझे बड़ी लज्जा और संकोच होता है। तू अनघ है और मैं अघसहित हूं। अघ पाप को कहते हैं। मैं पापी तुझ निष्पापी से कैसे भेंट करुं। मेरे में क्या पाप हैं यह बताने के लिए भक्त कहता है:—

पर दुःख दुःखी सुखी पर सुख सौं सन्तशील नहीं हृदय धरौं,
देखि आन की विपति परम सुख, सुनि सम्पति बिन आग जरूं।

पराया दुःख देखकर स्वयं दुःखी होना और पराये को सुखी देख कर स्वयं सुखी होना संत, श्रावक या भगवान् अभिनन्दन के भक्त का स्वभाव है।

यदि कोई भाई यह शंका करे कि पराये के दुःख देख कर यदि दुःखी होने लगें तब तो हमारा जीवन सदा दुःखी रहेगा। कारण कि संसार में दुःखी व्यक्ति बहुत हैं। और यदि हम दूसरों के दुःख से दुःखी हुआ करें तब तो सुख की सांस लेना भी दूस्वार हो जायगा। इसी प्रकार पराये के सुख से सुखी रहेंगे तो अपना सुख व्यर्थ हो जायगा। इसका समाधान ज्ञानी जन इस प्रकार करते हैं। वे कहते हैं इस बात को अपनी आत्मा से तौल कर समझो। अपनी आत्मा से पूछो कि जब तुम दुःखी होओ और किसी भले आदमी के

सामने जाकर अपनी दुःखगाथा कहो और यदि वह तुम्हारी दुःख भरी बातें सुनकर जरा भी सहानुभूति न बताये तब तुम्हें कैसा लगेगा। क्या तुम्हारी यह ख्वाहिश नहीं रहती कि तुम्हारी करुण कहानी सुनकर सामने वाला व्यक्ति दो आंसू बहाये और तुम्हारे दुःख में दुखी होकर तुम्हें आश्वासन प्रदान करे। जब तुम स्वयं यह चाहते हो कि कोई तुम्हारे साथ सहानुभूति दर्शाये तब क्या तुम्हारा यह फर्ज नहीं हो जाता है कि तुम भी दूसरों के साथ सहानुभूति प्रकट करो। यह एक सरल और अनुभूत नियम है। स्वयं प्रमाणित नियम है जिसके लिए किसी अन्य प्रमाण या साक्षी की आवश्यकता नहीं होती। तथा दूसरों को सुखी देखकर सुखी होने से निजी सुख व्यर्थ कैसे हो जायगा बल्कि निजी सुख द्विगुणित हो जायगा।

जो दूसरों को दुःखी देखकर दुःखी नहीं होते उनके लिए यह कहा जाता है कि इनका कलेजा पत्थर का बना हुआ है। वह भी कोई आदमी है जिसका हृदय पर दुःख से द्रवित न होता हो। मनुष्य स्वयं श्रेष्ठ बनना चाहता है किन्तु दूसरे के दुःख में हिस्सेदार नहीं होना चाहता तब वह श्रेष्ठ कैसे कहा जा सकता है। किसी आम्रवृक्ष का अधिष्ठायक देव यह कहे कि आम मेरा है। मैं इसके फल किसी को न खाने दूंगा। तो आप उस देव के विषय में क्या कहेंगे। यही कि यह देव नहीं कोई राक्षस है। इसी प्रकार कोई सरोवर या नदी आपको अपना घड़ा पानी से न भरने दे और घड़ा पकड़ ले तब आप इसके विषय में क्या कहेंगे। पवन यदि जीवन प्रदान

न करे, पानी प्यास न बुझाये और अग्नि भोजन न पकावे तो आप क्या कहेंगे। यही कहेंगे कि इनका क्या उपयोग हुआ यदि ये चीजे दूसरों के काम में न आईं तो इनका होना न होना बराबर है। इसी प्रकार मनुष्य के लिए भी समझो कि जो दूसरे के उपयोग में नहीं आता वह किस काम का। वह पृथ्वी पर भार भूत है।

भगवान् ने शास्त्रों में अनुकम्पा बताई है। अनुकम्पा का अर्थ यह है—

कनुकूलं कम्पनं इति अनुकम्पा

अर्थात् सामने वाले प्राणी को दुःखी देखकर दुःखी होना अनुकम्पा है। दूसरे के कष्ट में सहानुभूति रखना आवश्यक कर्त्तव्य है। किन्तु आप लोग केवल लेने में लगे हुए हैं, देना तो जानते ही नहीं हैं। दूसरों से मांगते फिरते हो कि हमें सुख दो सुख दो। इस प्रकार भिखारी बने हुए हो किन्तु सुख मांगने से नहीं मिला करता। दूसरों को सुख देने से हमको भी सुख मिल सकता है। 'सुख दिया सुख होत है, दुःख दिया दुःख होत' कहावत बहुत गहरा अर्थ रखती है। यदि आप दूसरों को सुख देते रहेंगे तो आप स्वयं सुख सागर बन जायगे। जिन लोगों ने दूसरों को सुख देने का मार्ग स्वीकार किया है उन्होंने सुख देते देते अपना शरीर तक दे डाला मगर ऊफ तक न किया।

मेघरथ राजा ने कबूतर की रक्षा के लिए अपना सारा शरीर तक तराजू पर चढ़ा दिया था। महाभारत में भी शिविराजा की कथा आई हुई है। शिवि ने दूसरों को सुख पहुंचाने के लिए अपना शरीर तक देना स्वीकार कर लिया था। हदीसों में मोहम्मद साहिब के लिए भी कहा हुआ है कि उन्होंने फाख्ता के लिए अपने गालों का गोश्त देना स्वीकार किया था। इस प्रकार महापुरुष दूसरों को अपना सर्वस्व देने में सुख मानते हैं। यदि इसी प्रकार आप लोग भी दूसरों को सुख देने में आनन्द मानने लगें तो आपका जीवन ही बदल जाय! आप महान् आत्माओं की गिनती में आ जायें।

यदि आपके दिलों में यह शंका खड़ी हो कि हम सब को सुख कैसे पहुंचा सकते हैं, क्योंकि सब तक हमारी पहुंच ही नहीं हो सकती तो इसका उत्तर यह है कि—मान लीजिये एक आदमी ने एक सार्वजनिक औषधालय कायम किया है। उसकी भावना है कि हर कोई व्यक्ति औषधालय से लाभ उठावे। उसके मन में किसी के लिए किसी प्रकार का भेद भाव नहीं है। जो अस्पताल में पहुंचेगा वही दवा प्राप्त करेगा और स्वास्थ्य लाभ लेगा। वह दवाखाना सारे राजकोट शहर को दवा नहीं दे सकता और न सारा शहर ही उस दवाखाने में पहुंच सकता है। फिर भी वह औषधालय सार्वजनिक कहलाता है। कारण कि उसका द्वार बिना भेदभाव के सब जनता के लिए खुला है। इसी प्रकार आप सब लोगों तक पहुंच कर सब को सुखी नहीं बना सकते और न सब लोग आप तक पहुंच कर अपना दुःख दर्द ही बता सकते हैं। तब

भी यदि आप सदा सर्वदा यह भावना रखते हैं कि जो मुझ तक पहुंच कर या मैं जिन तक पहुंच सकता हूं उनको सुखी बनाऊं तो आप सबको सुखी बनाने वाले ही गिने जायेंगे। भगवान की गति अबाध है और वह सब जीवों तक पहुंचकर उनके कल्याण की कामना कर सकती है। शरीर स्थूल होने से उतना नहीं पहुंच सकता। भावना यह रखनी चाहिए—

त्रिभुवन की कल्याण कामना दिन दिन बढती जाय
दयामय ऐसी मति हो जाय।

यदि आपने सब प्राणियों के सुख का ध्यान न रखा और अपनी स्त्री बच्चों तक ही सीमित रहे तो आप में और बाघ बिल्ली में क्या अन्तर गिना जायगा। अपने बच्चों का ध्यान तो बाघ बिल्ली भी रखती है। मैं आपको उपालम्भ दूं या बाघ बिल्ली को। बिल्ली अपने बच्चों को कहीं रखना चाहती है तब पहले जाकर वह स्थान देख आती है। फिर उस स्थान पर अपने बच्चों को रखती है। किन्तु खेद है कि आप लोगों में से बहुत से लोग क्या करते हैं। जब आपको अपनी लड़की देनी होती है तब आप क्या देखते हैं? लड़की के सुख को देखते हैं या जो आपको अधिक रुपये दे सके उसको देखते हैं? इसी प्रकार यदि लड़के का सम्बन्ध करना हो तब लड़की की तरफ देखते हैं या तिलक डोरा की तरफ? यही कि जो अधिक रकम देवे उसी की लड़की आप पसन्द करते हो। यदि लड़का मैट्रिक या बी. ए. तक पहुंच गया है

तब तो आपका दिमाग आसमान तक चढ़ जाता है। दस पांच हजार लेने के सिवाय अन्य बात भी न करेंगे।

बिल्ली आदि जानवर तो अपनी संतान के सुख का ध्यान रखकर स्थान देखते हैं और आप लोग इन्सान कहलाने वाले प्राणी होकर लड़के लड़कियों के सुख की तरफ न देखकर रुपयों की तरफ देखते हो, यह बड़ी हैरानी की बात है। जो अपनी संतान तक की दया नहीं कर सकता और उसकी कीमत लेकर बेंच देता है वह दूसरों की क्या दया करेगा। कन्या व पुत्र की शादी के लिए सामने वाले को मजबूर करके कुछ भी रकम की लेन देन करना अन्याय है और अनुकम्पा को दूर हटाना है।

मतलब कहने का यह है कि भक्त कहता है कि मुझे राम को जनक के पास जाने में संकोच हो रहा था उसी प्रकार का संकोच अपने कृत्य देख देख कर हो रहा है। हे प्रभो! मैं किस प्रकार तुझे अपना मुख दिखाऊं और तुझ तक पहुंचूं। पराये दुःख से दुःखी होना और पराये सुख से सुखी होना संत जनों का स्वभाव है। भगवन्! तेरी शरण में आनेवाले के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने को पर दुःखे दुखी और पर सुखे सुखी माने। किन्तु मेरा वर्ताव इसके विपरीत है। मैं दूसरों को सुखी देखकर ईर्षा की अग्नि में जलता रहता हूं और दूसरों को दुःखी देखकर बड़ा प्रसन्न होता हूं।

भगति विराग ज्ञान साधन कहि, बहुविधि डंहकत लोग फिरुं।
सिव सरवस सुखधाम नाम तव बेचि नरकप्रद उदर भरुं॥

हे प्रभो ! एक बात और है। मैं दूसरे लोगों को भक्ति ज्ञान और वैराग्य की बातें बताता फिरता हूं। ज्ञान वैराग्य और भक्ति की बातें बताकर लोगों को अपने पर फिदा बना लेता हूं। मैं इस खूबी से धर्म की बातें व महात्म्य बताता हूं कि श्रोता जन प्रसन्न होकर गद्‌गद्‌ होने लग जाते हैं। किन्तु मेरा खुद का हृदय बिल्कुल कोरा ही रह जाता है। मेरे दिल में ज्ञान वैराग्य और भक्ति छूते तक नहीं हैं। जिस प्रकार हलुए को हिलाने वाला चम्मच हलुए का स्वाद नहीं लेता। उसी प्रकार मैं भी दूसरों का मनोरंजन मात्र करता हूं। स्वयं कोरा ही रह जाता हूं। हां अपने पर अच्छा उपदेशक होने का अभिमान रूपी कचरा और चढ़ा लेता हूं। अहो ! मैं कैसा अच्छा वक्ता हूं कि इतनी विशाल जन मेदिनी मेरे व्याख्यान में उपस्थित होती है। इस प्रकार नम्र बनने के बजाय अधिक अभिमानी बनता हूं। तथा तेरे नाम से आत्म कल्याण करने के स्थान पर अपनी पेट भराई करता हूं। अपनी मुराद पूरी करने के लिए तेरा नाम जपता हूं। यदि मेरी विषैली इच्छाएं पूरी नहीं होती तो नाम जपना भी छोड़ देता हूं।

रज सम पर अवगुण सुमेरु करि गुन गिरिसम रज ते निदरौं।
जानत हौं निज पाप जलधिसम जलसीकर सम सुनत लरौं॥

मुझ में समुद्र जितने अवगुण भरे हुए हैं फिर भी यदि कोई एक बूंद जितना अवगुण प्रकट कर देता हैं तो मेरी आंखें लाल हो जाती हैं। मैं महान् पापी हूं फिर भी यदि कोई जरा

सा पाप प्रकट कर देता है तो उससे लड़ने के लिए उतारु हो जाता हूं। इतना ही नहीं किन्तु दूसरों के रज के समान दोष को पहाड़ जितना करके बताता हूं और अपने पहाड़ समान दोष को राई जितना बताने की भी हिम्मत नहीं है। अपने छोटे से गुण को पहाड़ जितना महान् बनाकर बताने में बड़ा आनन्द आता है और दूसरे के बड़े गुण को देखकर आनन्द नहीं आता उल्टे दुःख होता है। उस की निन्दा करने में मजा आता है। इस प्रकार अनेक रूप बना कर मैं लोगों को ठगा करता हूं। किन्तु वासना रहित होकर तेरा स्मरण करने के लिए एक क्षण जितना समय भी नहीं मिलता ऐसी दशा में हे प्रभो! तेरा स्मरण करूं तो कैसे करूं। कैसे तेरी प्रार्थना करूं कैसे तुझ से भेंट करूं।

नाना वेश बनाय दिवस निशि पर बीति जेहि तेहि जुगति करूं।
एकौ पल न कबहूं अलोल चित्त हित दे पद सरोज सुमरूं॥

हे दयामय! मेरे में इतने अवगुण हैं। साथ साथ सन्त-जनों से द्रोह करने का महान् दुर्गुण भी है। सन्तों से द्रोह करना धर्म की जड़ काटना है। मैं सन्तों से द्रोह करता हुआ भी भक्त मण्डली में अपना नाम आगे रखना चाहता हूं। भगवन्! मैं तेरी प्रार्थना कैसे करूं।

भक्त लोगों को इस प्रकार का पश्चाताप होता है। अब हम इस बात पर विचार करें कि इस पश्चाताप से छूटकारा कैसे हो सकता है। श्री रामचन्द्र को भी पश्चाताप था कि मैंने

निष्कारण जानकी को जंगल भेज दिया था। अब जनक को मुख कैसे दिखाऊं राम जनक के सामने जाने में सकुचाते थे। जनक भी इस बात को ताड़ गये थे कि राम मुझ से मिलने में संकोच कर रहे हैं और उनको अपने कृत्य का पूरा पश्चाताप है। इस लिए स्वयं जनक ने राम से कहा कि राम! तुमने जो कुछ किया है वह समयानुसार उचित ही है। ऐसा करना आवश्यक था। तुमने इस कार्य के द्वारा सीता को परिक्षा की कसौटी पर कसा है। अतः चिन्ता और संकोच छोड़ो।

जनक ने रामचन्द्र को इस प्रकार आश्वासन दिया था। परभक्त क्या कहता है सो सुनिये—

अधम उद्धारन नाम तिहारो चावो इन संसार जी।

हे प्रभो! मैं अधम हूं और आप अधम-पापी के उद्धार कर्त्ता हैं। आज दिन तक आपने मेरा उद्धार इस लिए नहीं किया क्योंकि मैंने अपने पाप छिपा रखे थे। मुझे अपने कुकृत्यों का पछतावा नहीं था। कुकृत्य करके और अधिक प्रसन्न होता था। दुष्कृत्यों को भले कृत्य मानता था। अब मैं आपकी शरण में आकर अपने पापों को प्रकट करता हूं और हृदय से पश्चात्ताप करता हूं। अब मेरा शीघ्र ही उद्धार कीजिये। संसार समुद्र से मेरी नैया को पार उतारिये।

लोग धर्मी बनना चाहते हैं। लेकिन अपने पापों को छिपाकर बनना चाहते हैं, यही उल्टी बात है। पापों को छिपाकर धर्मी बनने की बात एक कथानक द्वारा बताता हूं।

एक वार श्रेणिक राजा ने अपने बुद्धिशाली पुत्र अभय कुमार से पूछा कि पापी लोग अधिक हैं या धर्मी जन। अभय कुमार ने उत्तर दिया कि हैं तो पापी लोग ही अधिक किन्तु अपने को धर्मी कहलाने और वनने वाले लोग अधिक मालूम देते हैं। पुनः राजा ने पूछा कि यदि लोग धर्मी वनना चाहते हैं तो वन क्यों नहीं जाते। अभय ने उत्तर दिया कि अपने पाप छिपाकर लोग धर्मी वनना चाहते हैं। यही कारण है कि वे वास्तविक धर्मी नहीं वन पाते। राजाने कहा—यह वात मुझे प्रत्यक्ष वतलाओ तव मेरे ध्यान में आयेगी।

अभयकुमार ने नगर के वाहर दो खेमे (डेरे) तनवा दिए। एक खेमा काला था और दूसरा सफेद। खेमे तनवा कर यह घोषणा नगर में करवा दी गई कि जो लोग पापी हों वे काले खेमे में जावे और जो धर्मी हों वे सफेद खेमे में। राज्य की घोषणा सुनकर धड़ाधड़ लोग सफेद खेमे में घुसने लगे। जव सफेद खेमे मे घुसने की जगह न रही तो लोग उसके वाहर वैठ गये मगर काले खेमे की तरफ जाने की किसी ने इच्छा तक नहीं की। केवल एक श्रावक काले खेमे में जाकर वैठ गया।

जव सवेरा हुआ और अभयकुमार के साथ आकर राजा ने दोनों खेमों की हालत देखी तो उसके आश्चर्य का पार न रहा। सफेद खेमा लोगों से ठसाठस भरा है। वल्कि अनेक लोग जगह की कमी के कारण वाहर वैठे हुए हैं। काले खेमे में केवल एक श्रावक वैठा हुआ है अभयकुमार ने आज्ञा दी कि

सफेद खेमे में से एक एक व्यक्ति निकल कर अपने धर्मीपन का सबूत पेश करें। हुक्म सुनते ही सब से पहले वेश्या निकल कर आई और कहने लगी कि महाराज ! मैं सबसे अधिक धर्मात्मा हूं। मैं जो खाती पीती हूं, पहनती ओढ़ती हूं, बनाव सिंगार करती हूं वह सब परोपकार के लिए ही करती हूं। पराये युवकों का मनोरञ्जन और वासनातृप्ति करना मेरा ध्येय है। मेरे समान परोपकारी जीव और कौन होगा।

इसी प्रकार चोर जूआरी रण्डीबाज आदि लोग आकर अपने २ कार्य की उपयोगिता और औचित्य सिद्ध करने लगे। शराबी कहने लगे हमारे समान समाधि चढ़ाने वाला और कौन होगा। साधुओं को समाधि चढ़ाने में देरी लगती है। किन्तु हम तो एक बोतल पी कर तुरंत समाधिस्थ हो जाते है। इसी प्रकार पर दारा से गमन करने वाले कहने लगे कि हमारे समान मुक्त जीवन बीताने वाला कौन होगा। हम किसी एक स्त्री के बन्धन में नहीं फँसते। हम सदा पक्षी की तरह स्वतंत्र रहते हैं जब मन चाहा किसी वृक्ष पर जा बैठते हैं। हमारे समान निःस्पृह कौन होगा।

फिर महाजन लोग आये और अपने धर्मात्मपन की सबूतें पेश करने लगे। हम लोग न खेती करते हैं न व्यापारादि। हम केवल ब्याज पर रुपये देते हैं और सीधा सामान लाकर अपना गुजारा करते हैं। हम किसी प्रकार का पाप नहीं करते।

मित्रों ! आज इस नाजुक जमाने में आलस्य ने कैस पाप करा रखा है, कहते हुए लज्जा आती है। लोग समझते हैं कि हम व्याज खाते हैं, दूसरा कोई काम नहीं करते अतः हमको किसी प्रकार का पाप नहीं लगता। मगर मैं कहता हूं, व्याज खाना ही एक वड़ा पाप है और व्याज के कारण दूसरे भी अनेक पाप लगते हैं। पचभदरा में प्रतापचन्दजी श्रावक रहते थे। पहले उनकी श्रद्धा जीव रक्षा करने में पाप होने की थी मगर वाद में वे शुद्ध श्रद्धा धारी वने थे। एक वार वे गंगापुर में मुझ से मिले। मैंने पूछा कैसे आये हो ? उन्होंने उत्तर दिया कि आपके दर्शन की भावना तो थी ही किन्तु अभी एक दूसरे प्रयोजन से आया हूं। एक शंका लेकर उपस्थित हुआ हूं।

पूज्यवर ! मैंने एक वणजारे को कुछ रुपये व्याज से दिये हुए हैं। देते वक्त मैंने पूछ लिया था कि किस काम के लिए रुपये लेते हो तो उसने वताया था कि नमक खरीदने वास्ते रुपये लेता हूं। वह वहुत दिनों से मुझे नहीं मिला था अतः मेवाड़ में उसके होने की खवर पाकर यहां आया हूं। उससे रुपये मांगे तव कहने लगा कि नमक खरीदना न पोसाता था अतः आपके रुपयों से वकरे खरीद लिए हैं। अभी वकरों का भाव मंदा है। यदि आप कुछ समय तक ठहर जाते हैं तव तो ठीक है अन्यथा अभी वकरे कसाइयों को वेचकर आप के रुपये चुका दूं। वणजारे से यह हकीकत सुनकर मैं चुपचाप आप की सेवा में उपस्थित हुआ हूं।

यह व्याज खाने का पाप रहा या नहीं ? लेकिन लोग बिना परिश्रम की सीधी कमाई देखते हैं अतः व्याज में पाप होने की कल्पना तक नहीं करते। वे यही कहते और सोचते भी हैं कि हम क्या पाप कर रहे हैं। तिजोरी में से रुपये निकाले और जरूरतमंद को दे दिए। जब वह वापस दे जाता है तब व्याज सहित रुपये ले लेते हैं। इसमें क्या पाप हुआ। किन्तु इस मान्यता में वड़ी भूल है।

इस प्रकार सब लोग सफेद तम्बू में से निकल कर एक एक अपने २ धर्मी होने की दलीलें पेश करते गये। सब कोई अपने पापों को छिपाना चाहते थे या पापों को धर्म का रूप देकर धर्मी बनना चाहते थे। राजा ने उन सबको अपने २ घर जाने की इजाजत दे दी। अब वह काले खेमे की तरफ आया। वहां पर केवल एक श्रावक बैठा हुआ पाया। वह श्रावक धर्मात्मा माना जाता था और बहुत प्रख्यात भी था। राजा ने उससे पूछा कि आप इस काले तम्बू में कैसे बैठे हैं। आप को सारा शहर धर्मात्मा मान रहा है। फिर आप क्यों इस काले तम्बू में आकर बैठे हैं। आपके लिए सफेद तम्बू उपयुक्त है।

श्रावक ने उत्तर दिया कि महाराज! मैं पापी हूं या धर्मात्मा यह बात सारे शहर के लोगों की अपेक्षा मैं अच्छी तरह जानता हूं। मेरे दिल को मैं पहचानता हूं। आपने मुझे अपने पाप प्रकट करने का अच्छा अवसर प्रदान किया। मैंने कई लोगों को कई तरह से धोखा दिया है; कईयों के साथ विश्वास घात किया है। मैं उचित अवसर की खोज में था कि

आपने यह सुअवसर प्रदान कर मेरे पापों को प्रकट करवा दिया। मैं श्रीमान् का जितना उपकार मानूं उतना थोड़ा है। अब आप जैसा उचित समझें, करें। दण्ड दें या क्षमा प्रदान करें, यह आपकी इच्छा पर निर्भर है।

राजा श्रावक की बात सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसे अभयकुमार की इस बात पर विश्वास हो गया कि दुनिया में पापी अधिक हैं मगर अपने को धर्मात्मा कहलाने की अधिकांश इच्छा रखते हैं। धर्मी लोग कम हैं। किन्तु पापी लोग धर्मी होने का ढोंग रचकर धर्मियों की श्रेणी में अपना नाम लिखाना चाहते हैं। पापी लोग अपना पाप छिपाकर दुनिया के सामने अपने को स्वच्छ और शुद्ध रूप में पेश करते हैं।

भाइयों! उस श्रावक ने अपना पाप प्रकट कर जिस प्रकार अपने को हल्का बनाया था वही तरीका पाप नाश करने का है। लेकिन लोग अपने पापों को दबाकर जबान की सफाई से अपने को धर्मात्मा मनवाना चाहते हैं। कहा है कि—

जीभ सफाई करके भाई श्रावक नाम धरावे।
पोली मुट्ठी जहा असारे ज्ञानी यों फरमावे॥

भीतर कुछ और भावना है और जबान से कुछ और बात बता कर अपने को शुद्धाचारी बताने की कोशिश करना व्यर्थ है। शास्त्र में बताया गया है कि पोली मुट्ठी असार है। उसी तरह जिसका दिल कोरा है, सहानुभूति शून्य है वह

धर्मात्मा नहीं हो सकता। भले ही कुछ लोग उसे धर्मात्मा मानने की भूल कर लें। किन्तु सदा के लिए सच्चाई छिप नहीं सकती। अनाथी मुनि के चरित्र में यह बात आगे आने वाली है कि पोली मुट्ठी की तरह भ्रम या पोल चलाना धर्म नहीं हो सकता।

मेरे कहने का नतीजा यह निकलता है कि अपने भीतर में छिपे हुए गुप्त पापों को प्रभु के सामने प्रकट करने से पाप छूप सकते हैं। प्रभु अशरण का शरण है। वह अधम से अधम व्यक्ति का भी उद्धारक है। किन्तु शर्त इतनी है कि उसके समक्ष कूट कपट नहीं चल सकता बच्चे के समान भोले बनकर निखालस हृदय से हृदय शुद्धि करनी चाहिए।

जो मन में सोई बैन में, जो बैनानि सोई कर्म।
कहिये ताको सन्तवर, जाको ऐसो धर्म॥

जो बात मन में हो वही बात शब्दों द्वारा व्यक्त करना। और जो बात व्यक्त की जाय आचरण भी उसी के अनुकूल हो तभी मनुष्य संत कहा जा सकता है। मन में कुछ और रखना, शब्दों से कुछ और बताना, तथा आचरण कुछ और ही प्रकार का करना दुर्जन का लक्षण है। ऐसा व्यक्ति भक्त नहीं बन सकता।

आप लोग भी अपना पाप दबाओ मत। किन्तु परमात्मा के सामने प्रकट कर दो। वह अधम उद्धारन और पतित

पावन है अतः उसके सामने दिल खोलकर रखने से आपका पापों से छुटकारा हो जायगा। आप अधर्म को अधर्म मानोगे तभी सम्यग्दृष्टि होकर आत्म कल्याण कर सकोगे।

१६-८-३६
राजकोट

१४

वैर से वैर शान्त नहीं हो सकता

सुमति जिनेश्वर साहिबा जी, मेघरथ नृप नो नन्द;
सुमंगला माता तणो, तनय सदा सुख कन्द।
प्रभु त्रिभुवन तिलो जी ॥१॥

प्रार्थना--

यह भगवान् सुमतिनाथ की प्रार्थना है। इस प्रार्थना में भक्त ने भगवान् सुमतिनाथ से बड़ी आशा की है। उसकी आशा वाजिब है या गैर वाजिब इस बात का ख्याल किये बिना उसने आशा की है। वह किसी प्रकार के तर्क वितर्क में न पड़कर अनन्य भाव से हृदय में परमात्मा की भक्ति को स्थान दे रहा है। किसी के साथ वाद विवाद में पड़कर वह प्रभु भक्ति का अवलम्बन नहीं ले रहा है किन्तु स्वतः प्रस्फुटित हार्दिक भावों से प्रेरित होकर मालती पुष्प से भ्रमर की तरह

प्रभुभक्ति का रसपान कर रहा है। वह किसी के द्वारा निन्दा किये जाने की पर्वाह नहीं करता और न किसी की स्तुति का ही खयाल करता है। वह अपनी धून में मस्त है। यदि भंवरे से कोई कहे कि मालती के फूल में अमुक दोष हैं तो वह बुरा नहीं मानता किन्तु रस पीने में मस्त रहता है। इसी प्रकार भक्त भी परमात्मा के स्वरूप के विषय में वाद विवाद और तर्क वितर्क में न पड़कर केवल भक्ति में ही लवलीन रहता है। कहा है—

वादो नावलम्बनीयः बाहुल्यावकाशत्वात् नियतत्वाच्च ।

भक्त लोगों को चर्चा में न पड़कर परमात्मा की भक्ति अपनानी चाहिए। कारण कि चर्चा या वाद विवाद से बात बढ़ती ही जाती है। कोई खास नतीजा नहीं निकलता। महाभारत में कहा है कि—

तर्को ऽ प्रतिष्ठः

अर्थात् तर्क की कोई खास प्रतिष्ठा नहीं है। तर्क का अंत भी नहीं है। जिसकी जितनी बड़ी बुद्धि उतना ही बड़ा उसका तर्क होता है। प्याज के छिलके उतारे जाओ आखिर में कुछ न मिलेगा। अतः भक्त का कर्त्तव्य है कि वह भ्रमर की तरह निन्दा स्तुति या वाद विवाद में न पड़कर प्रभु भक्ति करता जाय।

सूर्य विकासी कमल से यदि कोई कहे कि सूर्य की किरणें गरम होती हैं अतः तू सूर्य किरणें मत ग्रहण कर तो क्या वह उसकी वात पर ध्यान देगा ? कदापि नहीं । पपीहा से कोई कहे कि सुन्दर सरोवर भरा हुआ है पानी क्यों नहीं पी लेता, क्यों स्वाति नक्षत्र की बुन्दों के लिए प्यासा मर रहा है ? तो क्या पपीहा उसकी सलाह को मानेगा ? नहीं मानेगा। भक्त लोग भी ऐसे होते हैं। वे बुद्धिवाद मे न उलझ कर अनन्य भाव से प्रभु भक्ति करने में ही व्यस्त रहते हैं । उनको किसी के द्वारा की हुई निन्दा से दुःख नहीं होता। किन्तु प्रभु भक्ति में विघ्न आने पर दुःख होता है । यदि प्रभु भक्ति वरावर होती रहे तो उन्हें बड़ा आनन्द आता है । इस वात के सिवा दुनिया की किसी वात में उनको सुख दुःख नहीं होता ।

आपको भी प्रभु भक्ति करने का यह सुन्दर अवसर मिला है । पर्यूषण पर्व के आधे दिन व्यतीत हो चुके हैं । अब चार दिन और बाकी हैं । इन चार दिनों में अनन्य भाव से ऐसी ही भक्ति करो । ऐसा अवसर फिर नहीं मिल सकता । जो वक्त हाथ से निकल गया वह पुनः नहीं आने का है ।

गजसुकुमार-चरित्र

अन्तगड़ सूत्र का जो प्रसंग चल रहा है उसमें से तीन चार भाव मेरे हृदय को अत्यन्त प्रसन्न करने वाले हैं । उस में से गज सुकुमार के चरित्र से भगवान् सुमतिनाथ की भक्ति बताता हूं ।

आप लोग यह बात जानते हैं कि गज सुकुमार का जन्म किस अवसर पर हुआ था। फिर भी उस प्रसंग को दुहरा कर कुछ सरल बना देता हूं। देवकी को अभी तक यही ज्ञात था कि उसके सात पुत्र हुए थे। जिन में से एक ग्वाले के घर पर रह कर बड़ा हुआ है और छ पुत्र कंस के द्वारा मारे गये थे। किन्तु जब उसने भगवान् अरिष्टनेमि से यह सुना कि उसके छ पुत्र संयम का पालन कर रहे हैं, तब उनकी खुशी का पार न रहा। उसे कितनी खुशी हुई होगी, हम अन्दाजा नहीं लगा सकते।

उसको सत्य धर्म पर बड़ी आस्था जम गई। वह कहती है—लोग कहते हैं कि धर्म में कोई शक्ति नहीं है मगर आज इन छ पुत्रों को जिन्दा देखकर मुझे सत्य और धर्म की अनन्त शक्ति का भान हुआ है। मैं समझती थी कि दुष्ट कंस ने पांव पछाड़ कर मेरे पुत्रों को मार डाला है। केवल कृष्ण ही एक उसके हाथ से बचा है। मैंने पुत्रों के मारे जाने के सम्बन्ध में छान बीन भी नहीं की। मैं केवल पति आज्ञा का पालन करना जानती थी। मेरे पुत्र उनके भी पुत्र थे। वे जितने मुझे प्यारे थे उतने उनको भी थे। किन्तु कंस के साथ वचन बद्ध होने से सत्य की रक्षा के लिए उन्होंने उसको सौंप दिए थे। मुझे तर्क वितर्क करने की आवश्यकता न थी। जो कुछ उन्होंने किया है सत्य का पालन करने के लिए किया है। वे चाहते तो वचन का पालन करने के लिए कोई दूसरा मार्ग भी अपना सकते थे। किन्तु उन्होंने जिस रूप में वचन दिया था उसी रूप में पाला है।

मगर जब भगवान् अरिष्ट नेमी से यह सुना कि उसके पुत्र मारे नहीं गये बल्कि सुलसा ग्रहपत्नी के घर बड़े हुए और बड़े होकर भगवती दीक्षा अंगीकार की है तब देवकी को सत्य पर दृढ़ विश्वास हो गया। सत्य कि अखण्ड महिमा का वह गुणगान करने लगी। देवकी को प्रसन्नता तो हुई। मगर साथ में मातृ प्रेम भी उमड़ आया। उसके मन में विचार आया कि मैंने सात पुत्रों को जन्म दिया मगर एक का भी लालन पालन व प्यार नहीं किया छ पुत्र सुलसा के घर बड़े हुए और कृष्ण यशोदा के यहां! मैं व्यर्थ ही माता कहलाई। जिसका बचपन में मैंने लाड़ प्यार व पालन पोषण नहीं किया उसकी मैं माता कैसी हुई। मैंने केवल पेट में बोझा सहन किया है। पुत्रों के प्रति अपना कर्त्तव्य अदा नहीं किया है।

इस प्रकार की चिन्ता देवकी को हुई। महा पुरुषों को चिन्ता होती ही नहीं है। और यदि होती है तो उस में विधि का कोई संकेत छिपा रहता है। देवकी की चिन्ता में भी कोई रहस्य है। देवकी चिन्ता मग्न अवस्था में बैठी है कि इतने में योगायोग से श्री कृष्ण उसको प्रणाम करने के लिए आ गये। देवकी को वंदन करने की बारी श्री कृष्ण को हर छ मास में आया करती थी, क्यों कि श्री कृष्ण की माताएँ बहत्तर हजार थी सभी को वे माता की तरह मानकर प्रणाम करते थे। दैव योग से वह बारी भी उसी दिन आपड़ी और श्री कृष्ण आ गये माता, को उदासीन देखकर कृष्ण विचार सागर में डूब गये। वे मन में सोचने लगे कि मेरे रहते मेरी माता को किसी प्रकार की

चिन्ता हो यह मेरे लिए तथा मेरे राज्य वैभव के लिए लज्जा की बात है।

श्री कृष्ण ने माता को पुकार कर कहा–माताजी ! आज आप उदासीन क्यों बैठी हैं जब मैं प्रणाम करने आया करता हूं तब आप सदा प्रसन्न वदन होकर मुझ से बोला करती थी और लाड़ प्यार करती थी। किन्तु आज क्या कारण है जो आप इस प्रकार चिन्ता मग्न हो रही हैं ? मुझ से भाषण भी नहीं करती, मेरे सिर पर हाथ नहीं फेरती ।

कृष्ण की बोली सुनकर देवकी का ध्यान भंग हुआ। उसने कहा—पुत्र कृष्ण ! मैंने तुम्हारा आगमन जाना ही न था। तुम मेरे योग्य और सच्चे पुत्र हो। अतः दुःख का कारण पूछते हो किन्तु अपना दुःख तेरे सामने क्या कहूं ?

हूं तुझ आगल शी कहूं कन्हैया,
बीतक दुःखड़ा री बात रे गिरधारीलाल ।
दुःखनी तो जग में घणी कन्हैया,
पिण दुःखनी थारी मांय रे गिरधारीलाल ।

इस विषय का महात्माओं ने सरल काव्यों द्वारा बड़ा सरस वर्णन किया है। उसका थोड़ा नमूना आपके सामने रखता हूं।

देवकी कहती है—पुत्र ! तू मुझ से मेरे दुःख की बात पूछता है। किन्तु मैं क्या कहूं। इस जगत् में अनेक स्त्रियां दुःखी हैं लेकिन मेरे समान दुःखियारी और कौन स्त्री होगी।

महापुरुषों को जब चिन्ता होती है तो वे उसको सच्चा रूप देते हैं। कई लोग झूठी चिन्ता करने लगते हैं और थूंक लगाकर आंसू दिखाने लगते हैं। पहले तो महापुरुषों को चिन्ता होती ही नहीं है। और यदि कोई चिन्ता होती है तो उसके समान कोई दुःख नहीं समझते। इसीलिए देवकी कहती है कि मेरे समान दुःखीयारी स्त्री इस जगत् में कौन होगी।

देवकी की बात सुनकर श्रीकृष्ण कहने लगे कि माता ! जब तेरे समान कोई दुःखी नहीं है तो मेरे समान दुःखी कौन होगा ! जब मेरी माता दुःखी है तो मैं सुखी कैसे हो सकता हूं। मुझ को धिक्कार है जो मेरे रहते मेरी माता दुःखी है

देवानु प्रिय मित्रो ! श्रीकृष्ण अपनी माता के दुःख से इतने दुःखी हो रहे हैं मगर आप लोग अपनी अपनी माताओं के साथ कैसा व्यवहार करते हो इस बात पर विचार करो। इस जमाने में कई लोग कृष्ण के समान भी होंगे। मगर कई तो अपनी माता को डांटते हैं। स्त्री के चाले लगकर माता को फटकार देते हैं। माता बेचारी डरती है कि पुत्र जवान है यदि कुछ कहूंगी तो घर से निकाल देगा। इस बूढ़ापे में अन्य कौन ठिकाना है जहां जाऊं। अविनीत पुत्र ऐसा करते हैं मगर

यह नहीं सोचते कि मैं किसके साथ ऐसा बर्ताव कर रहा हूं। मैंने गुजराती पुस्तक में यह कविता पढ़ी है—

टगमग पग टकतो नहीं खाय सके नहीं खाद।
उठी न सकतो आपथी लेश हती नहीं लाज।
ते अवसर आणी दया बालक ने मां बाप।
सुख देखे दुख टेवने ए उपकार अमाप।
कोई करे एवे समय वे घड़ियेक बरदास।
सारी उमर तक रहे ते नर नो नर दास।

आज मातृ शिक्षा पर ध्यान नहीं दिया जाता है। लेकिन जब तक माता और पुत्र के सम्बन्ध का पूरा खयाल न दिलाया जाय तब तक शिक्षा अधूरी है। आज इस बात पर ध्यान दिया जाता है या नहीं, यह बात दूसरी है। किन्तु जब तक माता और पुत्र का सम्बन्ध रहेगा इस कविता का भाव भी कायम रहेगा। लोग बड़े होकर मूंछों पर ताव देने लगते हैं। किन्तु उस समय को याद नहीं करते जब उनके पैर जमीन पर न टिकते थे, घिस घिस कर चलते थे, स्वयं हाथों से खाना नहीं खा सकते थे और अपनी रक्षा भी आप नहीं कर सकते थे। तब की बात याद करो कि माता का कितना उपकार है और उसका कितना महत्त्व है। जैन शास्त्र में माता

"देवयगुरुजण संकासा" श्री उपासक दशांगसूत्र अध्ययन तीसरा

अर्थात् माता देव और गुरुजनों के समान है। इससे अधिक माता का और क्या महत्त्व हो सकता है कि उसे देव और गुरु तुल्य बताया गया है। जैन शास्त्र ऐसी बात बताता है। मगर आज लोग अपने बर्ताव के द्वारा शास्त्र वाक्य पर हड़ताल फेर रहे हैं। यह आधुनिक शिक्षा का दोष है। आज की शिक्षा मातृ प्रेम, धर्म प्रेम और गुरु प्रेम को बढ़ाने के बजाय घटा रही है। ऐसी शिक्षा कुशिक्षा कही जायगी। सुशिक्षा वही कही जाती है जो मातृ प्रेम, धर्म प्रेम और गुरु-प्रेम की वृद्धि करे।

कृष्ण को महापुरुष मानने के सम्बन्ध में किसी का मतभेद नहीं है। वे भी जब अपनी माता के दुःख से दुखी हो गये तब आप किस गिनती में हैं। आपको तो उनसे अधिक मातृ सेवा करनी चाहिए।

माता की बात सुन कृष्ण कहने लगे कि माता जी! आपने अपने को दुःखी तो बताया मगर दुःख का कारण नहीं बताया। कृपा करके कारण बताइये। आपको क्या दुःख है यह जाने बिना मैं क्या कर सकता हूं। कारण ज्ञात होने पर उसे मिटाने का प्रयत्न किया जाय।

क्या देवकी को खाने पीने या पहनने ओढ़ने का दुःख हो सकता है? या वह कहना नहीं मानती उसका दुःख है? अथवा उसकी आज्ञा नहीं चलती थी इस बात का दुःख है? नहीं, ऐसी बातों से उसको दुःख नहीं हो सकता था। कृष्ण

स्वयं इस बात को समझते थे कि इन छोटी मोटी बातों का दुःख मेरी माता नहीं माना करती। कोई बड़ा दुःख है तभी इतनी चिन्ता में मग्न थी। धन, कुटुम्ब या मेरी चिन्ता से भी बढ़कर कोई चिन्ता है। जो चिन्ता साधारण व्यक्ति से नहीं मिटाई जा सकती वैसी चिन्ता होनी चाहिए। कृष्ण ने आग्रह पूर्वक पूछा कि शीघ्र चिन्ता का कारण बताने की कृपा करो।

कृष्ण का आग्रह देखकर देवकी कहने लगी-प्रिय पुत्र! तेरे सामने मैं अपनी चिन्ता का कारण व्यक्त न करूंगी तो किसके सामने करूंगी। तू ही मेरा दुःख पूछने और सुनने वाला है। तथा दुःख दूर करने वाला भी तू ही है। क्या कहूं, कहा नहीं जाता। कृष्ण! मैंने सात पुत्रों को जन्म दिया मगर एक भी पुत्र को शिशु अवस्था में खेला नहीं सकी। व्यर्थ पेट में भार ढोया और व्यर्थ ही माता की पदवी पाई। छ पुत्र तो सुलसा के घर बड़े हुए और दीक्षित हुए जिसक दर्शन व परिचय अर्हन्त अरिष्टनेमि से मुझे हुआ। और सातवां तू यशोदा के घर गोकुल में बड़ा हुआ। मैं लाड़ प्यार करने से कोरी ही रह गई। जिसमें हीरे का गुण नहीं है उसे व्यर्थ हीरा कहा जाता है। चित्र के सूर्य को सूर्य कहने से क्या लाभ? जो ताप आदि नहीं दे सकता।

कृष्ण! माता वह है जो अपने पुत्र को नहलाती धुलाती हो, उसका मलमूत्र साफ करती हो, उसको दूध पिलाती हो और उससे लाड़ प्यार करती हो। मैं ये सब कर्त्तव्य पूरा न कर सकी। यों ही माता का नाम धराया है।

समेट कर पुनः मूल रूप धारण कर लिया। जिस रूप में आये थे वही रूप बना लिया देवकी कहने लगी--कृष्ण ! तू इस बात को समझता है कि दूध में मिली शक्कर नहीं निकाली जा सकती। फिर इतनी जिद्द क्यों पकड़ी थी ? कृष्ण बोले--माता मैं इस बात को जानता हूं कि दूध में मिली शक्कर नहीं निकाली जा सकती। किन्तु बालक इस बात को क्या जाने। मैं उस समय बालक था। मैंने बालोचित हठ पकड़ी थी।

देवकी बोली—कृष्ण ! यह ठीक है। किन्तु इतने मात्र से मेरे मन को संतोष नहीं होता। इस बनावटी रचना से मेरे मन को तृप्ति नहीं होती।

कृष्ण ने कहा—माता ! अच्छी बात है। मैं ऐसा उपाय सोचता हूं कि जिससे मेरे छोटा भाई पैदा हो। आप चिन्ता और दुःख छोड़कर प्रसन्नवदन रहियेगा।

आप लोग श्रावक हैं अतः कृष्ण के कार्य पर ध्यान लगा कर विचार करिये। भाई की प्राप्ति के लिए कृष्ण ने कौनसा उपाय काम में लिया था इसको सोचो। आप लोग बार बार कहा करते हो कि महाराज ! हम श्रावक हैं, हमें घर बार संभालना पड़ता है, बाल बच्चों का रक्षण करना पड़ता है। अतः ऐसे कई कार्य करने पड़ते हैं जिनका धर्म से कोई संबन्ध नहीं होता। आप साधु हैं अतः आपके लिए सब कुछ निभ सकता है किन्तु मित्रों ! मैं पूछता हूं कि क्या कृष्ण साधु थे ? नहीं, कृष्ण आदर्श गृहस्थ थे। फिर भी भाई की प्राप्ति के लिए

किसी भैरू भवानी या पीर आदि के पास नहीं गये थे। जिस कार्य से धर्म लज्जित हो वैसा कार्य नहीं किया था।

कृष्ण जानते थे कि भाई होने का काम देव सहाय से पूरा हो सकता है। और देव का आह्वाहन तप किये बिना नहीं हो सकता। अतः कृष्ण सीधे पौषधशाला में चले गये।

आप लोग ऐसे देवों के पास जाकर सिर तो नहीं रगड़ते, जिन के सामने बकरे भैंसे कटते हैं और रक्त की नदी बहती रहती है! यदि कहो कि यह देव हमको धन और पुत्रादि देते हैं अतः इनके पास जाते हैं। तो मैं कहता हूं कि यह कार्य आपके धर्म को लजाने वाला है। क्या मैं आशा रक्खूं कि ऐसे कार्य करके आप जैन धर्म को कलंकित न करेंगे धर्म को कलंकित करके आप सुखी नहीं हो सकते। सुखी होने का रास्ता धर्म की रक्षा करना और उस पर कलंक न लगने देना है।

कृष्ण पौषधशाला में जाकर ब्रह्मचर्य पूर्वक तीन दिन का उपवास (तेला) करके बैठ गये। किसी गादी तकिये के सहारे नहीं बैठे किन्तु घास के आसन पर बैठे थे। शास्त्र में कहा—'दब्भ संथारा' अर्थात् घासका बिस्तर। घास के बिस्तर का बड़ा महत्व है। किन्तु आज मैं किसी श्रावक के पास घास का संस्तारक नहीं देखता हूं।

कृष्ण के तीन दिनों के तप के प्रभाव से देवता का आसन हिल गया। देवता ने उपयोग लगाया और कृष्ण के

पास आकर उपस्थित हो गया। देव हाथ जोड़ कर बोला— क्या आज्ञा है ? मुझे क्यों याद किया गया है ?

आज कृष्ण मौजूद नहीं है। मगर वह तप तो मौजूद है जिसके सहारे देव का आसन भी हिल जाता है। जिस तप से देवासन भी हिल सकते हैं उस तप का आलम्बन न लेकर इधर उधर भटकते फिरते हो यह लज्जा की बात है।

कृष्ण ने देव से कहा कि मेरी माता को एक पुत्र की आवश्यकता है तुम ऐसा उपाय करो जिससे मेरे भाई हो। इसी प्रयोजन के लिए तुमको कष्ट दिया है।

कृष्ण की बात सुनकर देव ने कहा—कृष्ण ! आपने मुझको ऐसे समय याद किया है जब कि तुम्हारे भाई होने का योग है। तुम्हारे भाई होने वाला है। जब वर्षा होने वाली थी कि लोगों ने वर्षा के लिए मनौती मानी। वैसी ही बात तुम्हारी भी हुई है। किन्तु एक बात है कृष्ण, तुम्हारे भाई अवश्य होगा। लेकिन वह छोटी अवस्था में ही भगवान् अरिष्ट नेमी के पास ज्ञान सुनकर दीक्षित हो जायगा।

आप लोग इस बात का विचार करिये कि अपने भाई के दीक्षित होने की बात सुनकर कृष्ण को प्रसन्नता हुई होगी या रंज हुआ था। आज लोग दीक्षा का नाम लेते ही डरने लगते हैं। उनको अच्छे विद्वान् और संस्कार शील साधु तो चाहिए। लेकिन दीक्षा नहीं चाहिए। विना योग्य व्यक्तियों के दीक्षित हुए, योग्य साधु कहां से मिल सकते हैं। पुत्र की

कामना तो करना मगर शादी न करना। यह बात कैसे हो सकती है कि बिना शादी किये पुत्र प्राप्ति हो। जब दीक्षा न होगी तो साधु क्या आसमान से टपकेंगे? अच्छे साधु आप लोगों की भावनाओं से पैदा हो सकते हैं। यदि आपकी यह भावना रहे कि हमारा पुत्र बड़ा होकर दीक्षा धारण कर संयम धर्म का पालन करे तो अच्छा है, तब योग्य साधु मिल सकते हैं। ऐसी भावना के अभाव में ऐसे ही साधु मिलेंगे जो दूसरों के सिर झुकवाने के अभिलाषी है। अथवा कीर्ति आदि के कामी हों। उनसे आत्म कल्याण नहीं हो सकता।

मेरा भावी भाई दीक्षा ग्रहण करेगा यह जानकर कृष्ण अतीव प्रसन्न हुए। कृष्ण विचारने लगे कि इससे बढ़कर सौभाग्य की बात क्या हो सकती है कि मेरा भाई भागवती दीक्षा अंगीकार करके अपना और जगत् का कल्याण करेगा। मैं राज्य कार्य करके जग का भला करता हूं और मेरा भाई संयम ग्रहण करके स्वपर का भला करेगा यह अच्छा ही है।

पौषधशाला से उठकर कृष्ण अपनी माता के पास आये और आकर कहने लगे माताजी चिन्ता छोड़िये। आपको नौ मास और साढे सात रात्रि बाद पुत्र की प्राप्ति होगी। यह बात सुनकर देवकी बहुत प्रसन्न हुई। देवता की भविष्य वाणी के अनुसार नौ मास साढे सात रात्रि बाद देवकी ने पुत्र को जन्म दिया। पुत्र जन्म का उत्सव कितने ठाठ से मनाया गया होगा इसकी कल्पना करिये। पहले सात पुत्रों का उत्सव नहीं मनाया जा सका था उसकी कसर इस उत्सव में निकाली गई।

स्वयं कृष्ण जिस उत्सव के प्रवन्धक हों उनकी क्या बात कहना। उस समय यादव लोग पूर्ण समुन्नत और सुखी थे। देश पर बाह्य आक्रमण या भीतरी खटपट का जरा भी भय नहीं था। अतः कृष्ण ने अपने भाई के जन्म का उत्सव बड़े उत्साह के साथ मनाया। आजकल के उत्सवों की तरह ऊपरी आडम्बर की बहुलता न थी किन्तु जनता के कल्याण और मनो विनोद की अधिकता थी।

बालक का नाम गज सुकुमार रखा गया। पांच धाय माताओं से उनका पालन पोषण हुआ। जब गज सुकुमार युवावस्था में प्रवेश कर रहे थे तब उनकी शिवरमणी से शादी कराने के लिए ही मानों भगवान् नेमीनाथ द्वारिका के बाहर पधारे। कृष्ण को अत्यन्त प्रसन्न वदन देखकर गज सुकुमार ने पूछा–भैया! आजआप इतने खुश क्यों हैं? क्या बात है? आप कहीं जाने की तैयारी कर रहे हैं? कृष्ण ने उत्तर दिया–जगत् के कल्याण कर्ता भगवान् नेमीनाथ पधारे हैं, उनके दर्शनार्थ उद्यान में जा रहा हूं गज सुकुमार ने कहा–भैया! ऐसे पवित्रात्मा भगवान् के दर्शन के लिए मैं भी आपके साथ चलूंगा।

मित्रो! कृष्ण को देव का कहा हुआ गज सुकुमार का भविष्य याद था। वह जानते थे कि गज सुकुमार भगवान् अरिष्टनेमी के पास आत्म ज्ञान प्राप्त कर दीक्षा अंगीकार कर लेंगे। अब आप लोग बताइये कि कृष्ण अपने प्यारे भाई को भगवान् के पास ले जावे या नहीं? यदि आपको किसी देव से

यह मालूम हो जाय कि आपका पुत्र अमुक मुनि के पास दिक्षा अंगीकार करेगा तो क्या आप अपने पुत्र को उन मुनि के पास ले जाना पसन्द करेंगे ? अथवा उस पुत्र को मकान में छिपा रखेंगे ? श्री कृष्ण दीक्षालेना अच्छा समझते थे अतः कह दिया कि चलो गज सुकुमार हमारे साथ चल सकते हो ।

गज सुकुमार को लेकर कृष्ण नगर के बाहर जा रहे हैं। मार्ग में उन को सोमिल ब्राह्मण की कन्या दिखाई दी। उसको उन्होंने गज सुकुमार के लिए पसन्द किया। इस बात में आज कल के सुधार की गई बातें आजाती है। कृष्ण क्षत्रिय थे और सोमिल ब्राह्मण था किन्तु ब्राह्मण की कन्या को कृष्ण ने अपने भाई के लिए पसन्द कर लिया आज कल वर कन्या के हक छीने जाते हैं। किन्तु वर कन्या के हक छीनना या वर कन्या का अति स्वछन्द हो जाना दोनों बातें ठीक नहीं हैं।

कृष्ण ने अपने कौटुम्बिक पुरुष के द्वारा सोमिल ब्राह्मण के पास संदेश पहुंचाया कि यदि तुम उचित समझो तो अपनी कन्या हमारे भाई गज सुकुमार के लिए प्रदान कर दो सोमिल ने बहुत प्रसन्न होकर यह बात स्वीकार करली और अपनी कन्या को कुंआरे अन्तः पुर में पहुंचा दिया। उस जमाने में सगाई और विवाह साथ ही होते थे। अतः सोमिल विवाह योग्य सामग्री खरीदने के लिए चला गया और कृष्ण गज सुकुमार को लिए हुए भगवान् नेमीनाथ की सेवा में आये। भगवान् का उपदेश सुनकर गज सुकुमार ने कुछ दूसरी ही सगाई जोड़ ली। वह घर आये और माता से कहने लगे कि

आज मैंने भगवान् नेमीनाथ के दर्शन किये हैं। माता ने कहा पुत्र! तेरे नेत्र पवित्र हो गये। मैंने अंजनादि से तेरे नेत्र साफ सुथरे रखे थे वे आज भगदर्शन से सफल हो गये हैं।

फिर गज सुकुमार ने कहा-- माता मैंने भगवान् की वाणी सुनी है। माता ने कहा--पुत्र तेरे कान पवित्र हो गये। आभूषणों से कानों की शोभा नहीं है। कानों की शोभा सत्पुरुषों के वचन श्रवण से है। फिर गज सुकुमार ने कहा-- माता मैंने भगवान् के वचन श्रद्धे प्रतीते और रुचाये हैं। माता ने कहा--पुत्र तेरा जीवन और शरीर सफल हो गया।

गज सुकुमार ने विचार किया कि अभी तक माता मेरे मनोगत भावों को नहीं समझ पाई है। अतः स्पष्ट शब्दों में कहा कि माता जिस आदमी को भगवान् के वचनों पर श्रद्धा प्रतीति औररुचि हो जाती है उसे संसार का माया जाल अच्छा नहीं लगता। भगवान् का उपदेश जिसकी हड्डी और मज्जा में प्रवेश कर जाता है उसको संसार जहर के समान अप्रिय लगता है। मुझे भी संसार असार और जहर के समान लगता है अतः भगवान् की सेवा में दीक्षा अंगीकार करना चाहता हूं।

गजसुकुमार की बात सुनकर देवकी माता को स्वाभाविक पुत्र स्नेह सहित हुआ। इससे उसको मूर्छा आगई। मूर्छा से उठकर कहने लगी कि पुत्र तेरी उम्र छोटी है अतः मैं दीक्षा की आज्ञा कैसे दूं। गज सुकुमार ने कहा—माता यदि देश पर

कोई शत्रु चढ़ाई करके आजावे उस वक्त तू मुझे घर में छिपा कर रखेगी या शत्रुओं का सामना करने की बात कहेगी। माता ने कहा—भला ऐसे वक्त घर में कैसे छिपाकर रक्खूंगी। तुझे रण संग्राम में जाने के लिए प्रोत्साहन दूंगी। मैं वीर क्षत्रियाणी और वीर माता हूं अतः ऐसे प्रसंग पर मेरी यही इच्छा होगी कि यदि गर्भ में भी पुत्र हो तो वह बाहर निकल कर युद्ध में प्रयाण करे। ऐसे अवसर पर कायरता की बात कैसे कर सकती हूं।

गजसुकुमार बोले-माता जब साधारण शत्रु का सामना करने के लिए भी तू मुझे नहीं रोकना चाहती तो कर्म शत्रु से युद्ध करने के वक्त ऐसी बात क्यों कहती है। तू वीर माता है अतः अंतरंग युद्ध के प्रस्थान के वक्त तुझे प्रसन्न होना चाहिये।

गजसुकुमार का कथन सुनकर देवकी को जोश आ गया। मेरा पुत्र दीक्षा लेकर सिद्ध बुद्ध और मुक्त होवे इससे बढ़कर उसके हित की और क्या बात हो सकती है। यह प्रसन्नता की बात है और पुत्र के योग्य ही बात है।

कृष्ण को भी यह समाचार विदित होगया कि गज सुकुमार संसार से उदासीन हो गये हैं और मुनि बनना चाहते हैं। उनके पास आकर कहने लगे—भैया! तुम दीक्षा मत लो। मेरी इच्छा है कि मैं राजपाट छोड़ कर तुमको सौंप दूं और तुम्हारी सेवा करूं। इससे अधिक भाई के लिए कृष्ण

क्या त्याग कर सकते थे। किन्तु गज सुकुमार ने कहा-राज्य पाट स्वीकार कर लेने पर मुझे जरा मरण और जन्म आदि का दुःख तो न होगा? कृष्ण ने कहा-ये दुःख मिटाने की ताकत हमारी नहीं है। ये दुःख तो आत्मा स्वयं ही मिटा सकता है। दूसरा व्यक्ति नहीं मिटा सकता। गजसुकुमार बोले—"जब आप मेरे जन्म-मरण नहीं मिटा सकते तो मुझे दीक्षित होने से क्यों रोकते हैं।" कृष्ण निरुत्तर हो गये, और कहने लगे, अच्छा, एक दिन के लिए राज्य करना स्वीकार कर लो।

गजसुकुमार ने एक दिन राज्य करने की बात यह सोचकर स्वीकार कर ली कि इससे मेरे हाथ में सत्ता आ जायगी जिससे दीक्षा की तैयारी में सुगमता हो जायगी तथा मेरे वैराग्य की परीक्षा भी हो जायगी। राज्य अंगीकार करके वापस छोड़ देने से कच्चे-पक्के वैराग्य की जांच हो जायगी।

कृष्ण ने अपना राज्य गजसुकुमार को सौंप दिया। राज्य सौंप कहने लगे यद्यपि हम आपको सब कुछ सौंप चुके हैं फिर भी आपकी कोई इच्छा या आज्ञा हो तो कहिये, हम उसे पुरा करें। तुरंत गजसुकुमार ने हुक्म दिया कि मेरे लिए दो लाख सौनैया देकर कुत्त्यावन से दीक्षा के उपकरण मंगवाओ। तथा एक लाख सौनैया देकर नाई से मेरा सिर मुण्डन करवाओ।

दीक्षा के उपकरण ओघे पात्र आदि रत्नों के बने हुए न थे जिसके लिए दो लाख सौनैया देने की आवश्यकता हुई।

किन्तु वे क्षत्रिय थे, दातार थे। बनिया न थे जो मोल तोल करते। अतः स्वतः इनाम के रूप में इतनी रकम देते थे।

गजसुकुमार की आज्ञा सुनकर कृष्ण समझ गये कि इनका वैराग्य सच्चा है। स्मशानिया वैराग्य नहीं है। यह रंग किरमीची रंग है,जो चढ़ने के बाद उतरता नहीं। उनकी आज्ञानुसार सब सामग्री मंगवाई गई और दीक्षोत्सव किया गया। फिर भगवान् नेमीनाथ की सेवा में उनको ले गये। भगवान् के पास पहुंच कर गजसुकुमार ने मुनिव्रत धारण कर लिया। मुनिव्रत लेकर विचारने लगे कि यह असिधारा के समान मैंने जो व्रत लिया है वह मुनियों के संरक्षण में रह कर जीवन बिताने वास्ते नहीं लिया है। किन्तु जल्दी से जल्दी जन्म मरण के दुःखों से छुटकारा पाने के वास्ते लिया है।

अरज करत तन देखत ऐसे सुनिये श्री जिनराज,
किला फतह तुरत हुवे मुझ-ऐसी राह बताय।
द्वादशमी प्रतिमा वहने का हुक्म दिया फरमाय॥

गजसुकुमार भगवान् के पास जाकर कहने लगे-भगवन्! मैं शीघ्रातिशीघ्र इस शरीर रूपी पिंजड़े को छोड़कर जन्म मरण का अंत करना चाहता हूं। मुझे इस जाल में रहना पसन्द नहीं है मैं अशरीरी होना चाहता हूं। कृपा करके कोई ऐसा उपाय बताईये कि जिससे जल्दी मुक्ति प्राप्त कर सकूं।

आप लोग गजसुकुमार के समान आचरण नहीं कर सकते। मगर उनको आदर्श के रूप में सामने रखो। सुना

जाता है कि रेडियम धातु की कीमत साढे चार करोड़ रुपया तोला है। ऐसी बहुमूल्य धातु यदि चार छ तोला मिल जाय तो क्या कहना है। किन्तु यदि उसका एक रजकण भी मिल जाय तो उससे भी बहुत काम हो सकता है। इसी प्रकार गजसुकुमार का जीवन रेडियम के पहाड़ के समान है। उस जीवन के एक अंश का भी यदि आप अनुसरण कर सकें तो बड़ा आनन्द आ जाय।

आज ही दीक्षित हुए और आज ही गजसुकुमार को मोक्ष प्राप्त करने की भावना कैसे उत्पन्न हो गई? यह प्रश्न पैदा होना स्वाभाविक है। बात यह है कि जब किसी बात की सच्चाई मालूम हो जाती है तब उसके बाद ज्ञानी व्यक्ति को उसके विपरीत आचरण करना कठिन हो जाता है। गजसुकुमार का वैराग्य इतनी उत्कृष्ट दशा को पहुंच चुका था कि उन के लिए यह शरीर रूपी कारागार असह्य हो गया था। यदि किसी सच्चे या प्रामाणिक व्यक्ति को जेल की सजा हो जाय तो क्या वह जेल में पड़े रहकर सड़ते रहना पसन्द करेगा या बाहर निकलने का तत्काल उपाय करेगा? किसी अमीर के लड़के को जो सदा इत्र फूलेल के अन्दर रहने वाला हो कोई कारणसर टट्टी में बंद कर दिया जाय तो क्या वह उसमें बंद रहना चाहेगा? वह यही चाहेगा कि मुझ से जो कुछ लेना चाहो ले लो मगर इस नारकीय दुर्गन्ध से शीघ्र निकालो।

यही बात भगवान् गजसुकुमार के लिए लागू होती है। उनकी आत्मा शरीर रूपी पिंजड़े में से उड़ने के लिए छटपटा

रही है। एक क्षण के लिए भी वह देरी करना पसन्द नहीं कर रहे हैं। पातञ्जल योगशास्त्र में कहा है कि अन्य कारणों से समाधि देर से भी जागृत हो सकती है किन्तु तीव्र वैराग्य भावना से शीघ्र ही समाधिभाव पैदा होता है। उत्कृष्ट वैराग्य के कारण गजसुकुमार ने अपने को साथी मुनियों के बीच में रखना भी उचित न समझा। और भगवान् से अनुनय विनय किया कि मुक्त होने का अचूक नुस्खा बताइये। भगवान् सब कुछ जानने वाले थे। वे सर्वज्ञ सर्वदर्शी थे। अतः नवपूर्व ज्ञानधारी और बीस वर्ष की दीक्षा पर्याय वाले के लिए जो बारहवीं प्रतिमा ग्रहण करने योग्य होती है वही बारहवीं प्रतिमा आज के दीक्षित गजसुकुमार के लिए बता दी। संसार से मुक्त होने का यह एक उत्कृष्ट साधन है।

भगवान् अरिष्ट नेमी की आज्ञा पाकर गजसुकुमार महाकाल स्मशान में चले गये। वहां पहुंच कर एक रात्री के लिए नासिका पर दृष्टि रखकर ध्यान में मग्न हो गये। खड़े २ ध्यान में तल्लीन हो गये।

उधर से सोमिल आ निकला। उसने देखा यह कौन मनुष्य स्मशान में खड़ा है। निकट से देखने पर उसे मालुम हुआ कि यह तो गजसुकुमार है जिसके साथ मेरी कन्या का विवाह करने के लिए श्री कृष्ण ने मांगणी की है और जो कुंआरी अंतः पुर में बन्द है। बस देखते ही उसके मन में क्रोध उमड़ आया।

अनेक लोग साधु को देखकर बड़े प्रसन्न होते हैं। साधु दर्शन से उनका हृदय प्रफुल्लित हो उठता है और उत्तेजित विकार भाव भी शांत हो जाता है। किंतु सोमिल का क्रोध उमड़ आया, इस में पूर्व जन्म के उसके संस्कार कारण भूत हैं।

सोमिल कहने लगा कि हे अपथ्य प्रार्थिक! काली पीली अमावस्या में जन्म ग्रहण करने वाले! लज्जा लक्ष्मी हीन! अवांछित की वाञ्छा करने वाले! तुमने साधुपन ग्रहण करके मेरी कन्या का अपमान किया है। मैं तुझे ऐसा दण्ड दूंगा कि भविष्य में कोई ऐसी भूल न करे।

वह स्थान एकान्त था। कोई अन्य मनुष्य वहां न था। अतः अच्छा अवसर जानकर पासके तालाव से गीली मिट्टी ले आया। मिट्टी लाकर ध्यानस्थ खड़े गजसुकुमार के मस्तक पर चारों ओर पाल वांध दी। पाल इस प्रकार वांधी कि मस्तक पर रखी हुई चीज वाहर न गिर सके। यह पाल गजसुकुमार के मस्तक को ठंडाई पहुँचाने के लिए नहीं वांधी गई थी किन्तु उनको कष्ट पहुंचाने के लिए वांधी गई थी। मिट्टी में उतना कष्ट देने की ताकत न थी और न वह गर्म ही थी। अतः स्मशान में जलाये हुए मुर्दों की अवशिष्ट अग्नि उठा लाया और उनके मस्तक पर धर दी। चारों ओर मिट्टी की पाल पहले ही वनी हुई है ताकि अग्नि के धधगते अंगारे उनके मस्तक से नीचे न गिर सके।

कई लोग दुनिया में ऐसे भी होते हैं जो पहले गीली मिट्टी की पाल के समान मीठी मीठी वातें करते हैं। मगर

उनकी वे मीठी बातें शांति पहुंचाने के लिए नहीं होतीं। उनके भीतर में कपट भाव छिपा रहता है। मीठी बातों के बाद वे ऐसा क्लेश खड़ा कर देते हैं कि जन्म भर तक वह बेचारा दुःखी रहता है और मन में घुलता रहता है। यही बात सोमिल ने भी की थी अधिक कष्ट पहुंचाने के लिए उसने गजसुकुमार के मस्तक पर गीली मिट्टी की पाल बांधी थी। जो लोग ऊपर से मीठी बातें बनावें और भीतर से आग लगावें वे सोमिल के समान हैं। उनकी लेश्या कौनसी गिनी जाय?

आजकल संसार में यही हिसाब चलरहा है कि भीतर कुछ और है और बाहर कुछ और है। राजा अथवा धनिक लोग ऊपर से यह दिखाते हैं कि हम जो कुछ कार्य करते हैं वह दूसरों की भलाई के लिए करते हैं। राज्य की समृद्धि और सुखाकारिता के लिए हम राज्य कर रहे हैं और मजदूरों की भलाई के लिए हम कारखाने चला रहे हैं, ऐसा भाव राजा और सेठ साहुकार लोग प्रकट करते हैं। किन्तु उनके मन की भावना क्या है यह उनके वर्तावों से प्रकट है। क्या उनके दिलों में प्रजा और मजदूरों के हितकी भावना रही हुई है? हृदय में विषैली और स्वार्थ पूर्ण भावना होते हुए भी शब्दों की सफाई से अपने को परोपकारी प्रकट करने वाले राजा और सेठ सोमिल के समान हैं। सोमिल के द्वारा पाल बांधने जैसा उनका कार्य है।

साधुपन ग्रहण करके भी कई ऐसा वर्ताव करते हैं। कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं। लोगों का विश्वास प्राप्त

करने के लिए कई साधु नामधारी हृदय में कुछ और भावना रखते हैं और ऊपर से वर्ताव दूसरा करते हैं। उनका ऐसा कार्य सोमिल द्वारा गजसुकुमार के मस्तक पर पाल बांधने के समान है।

पांजरापोल के सेक्रेटरी ने आप लोगों के सामने सहायता के लिए अपील रखी है। आप लोग मन में समझते होंगे कि हम जो कुछ देते हैं वह दान करते हैं। लेकिन इस बात का विचार करो कि आप दान दे रहे हो या अपना कर्त्तव्य पूरा कर रहे हो। ऐसा कौन मनुष्य होगा जिसने अपने जीवन में गाय की सहायता न ली हो। घी दूध दही छाछ आदि का सब कोई उपयोग करते हैं। वैलों द्वारा उत्पन्न नाज सब लोग खाते हैं। यदि पंचगव्य न हो तो आप क्या खावें और मूंछों पर ताव कैसे लगावें? जिस गाय का दूध घी खा जावें उसका वदला न चुकाना कृतघ्नता नहीं तो क्या है। दूध पिलाने के कारण गाय माता कहलाती है। जो माता का पालन न कर सके वह भी कोई पुत्र है। आपका यह शरीर गाय की कृपा से बना हुआ हैं। गाय की कृपा से ही आपका चेहरा लाल लाल बना हुआ है।

जिस गाय का दूध पीकर आप पहलवान बने हुए हैं। उस गाय पर आज क्या आफत आई हुई है। आपकी पहलवानी क्या काम की। गाय माता दुःख पावे और उसके बेटे मौज करे यह कितना अनुचित है। पहले जमाने में गौरक्षा का प्रश्न ही नहीं खड़ा होता था। गाय को माता की उपाधि

दी गई थी अतः उसकी रक्षा के लिए उपदेश की जरूरत ही न थी। दूसरी बात पहले गौहत्या न होती थी। आज गायें कसाई खाने में जाती हैं। इस वर्ष तो पानी न बरसने से उनका कष्ट और अधिक बढ़ गया है। माता दुःख पाये और बेटा निष्क्रिय बैठा रहे यह शोभा की बात नहीं है। अधिक क्या कहूं—

सत्य का शब्द तो एक ही बहुत है बार ही बार क्या बक्कना रे।
पाषाण के बीच में तीर भेदे नहीं मूर्ख से बहुत क्या झक्कना रे।
रैन दिन होत घन घोर बरसा घनी चीकने घड़े नहीं छांट लागे।
कहत कबीर ये जीव जड़ हो रहे मोह के मेल ते नाय भागे॥

गज सुकुमार के सिर पर माटी की पाल बांधकर सोमल ने अग्नि से धगधगते अंगारे रख दिये हैं। यदि गज सुकुमार उस पर क्रोध करना चाहते तो क्या नहीं कर सकते थे? वे देवकी के पुत्र और कृष्ण के भाई थे तथा स्वयं भी वीर थे। उनकी एक हाक से उसके प्राण निकल सकते थे। सोमिल उनके सामने क्या चीज था वे संसार को थर्रा सकने वाले व्यक्ति थे। किन्तु उन्होंने कुछ और सोचा है। वे विचारने लगे कि मैं जल्दी से जल्दी शरीर रूपी कारागार से मुक्त होना चाहता हूं और इसी लिए भिक्षु की बारहवीं प्रतिमा धारण की है। सोमिल ने मेरा क्या बुरा किया। अच्छा ही किया है। मैं जो चाहता हूं उसमें उसने मदद ही की है।

यदि गजसुकुमार इस प्रकार विचार करना चाहते कि मैंने इस आदमी का क्या बिगाड़ा है, मेरी इच्छा है मैं किसी की लड़की के साथ शादी करूँ या न करूँ, मैं स्वतन्त्र हूं, तो भी लोक व्यवहार में बुरा न माना जाता। लेकिन इस प्रकार के तर्क-वितर्क में वे न पड़े। उन्होंने भक्ति मार्ग का आश्रय लिया था जिसमें तर्क को उतना स्थान नहीं है। अंगारों से उनको घोर वेदना शुरू हुई। शास्त्र में इस प्रकार पाठ है:—

तयणं से गज सुकुमाले अणगारे,
वेयणा पाउब्भूया उज्जला जाव दुरहियासा

मुनि का मस्तक खीचड़ी की तरह खदबद खदबद सीझने लगा। सोमल ने मिट्टी की पाल बांधी भी इसीलिए थी कि अग्नि नीचे न गिरने पावे। उस समय उनको कैसी वेदना होती रही होगी जरा कल्पना करिये। परन्तु मुनि यह विचार कर रहे थे कि मेरा हीरा पैदा हो रहा है। जैसे किसी थके हुए व्यक्ति को सवारी करने के लिए मोटर मिल जाय, प्यासे को पानी मिल जाय, भूखे को रोटी मिल जाय और अंधे को नेत्र मिल जाय तो उसको कितनी खुशी होगी। उक्त वस्तुएं देने वाले पर वह कितना प्रसन्न होगा। वैसे ही गज-सुकुमार को मस्तक पर अग्नि रखने से बड़ी प्रसन्नता हुई है। मैं मुक्त होना चाहता हूं और यह शरीर मेरी मुक्ति में बाधक हो रहा है। सोमल ने इस बाधा को हटा दिया है अतः यह मेरा परम मित्र है। यह मेरा उपकारी है। मोक्ष प्राप्ति में साज देने वाला है।

इस प्रकार की निर्वैर भावना रखकर शुक्ल ध्यान के उच्च पाये पर आरुढ़ होकर गजसुकुमार सिद्ध बुद्ध और मुक्त हो गये। यदि आप लोग भी गजसुकुमार की निर्वैर भावना अपना लें। तो बड़ा भला हो जाय। गजसुकुमार का आदर्श जीवन भारत की परंपरागत संस्कृति के अनुकूल है। वैर से वैर शान्त नहीं होता किन्तु शांति रखने से, क्रोध न करने से वैर शान्त होता है। ऋद्धिशाली और सत्ताधारी इस राजकुमार की क्षमा आदर्श क्षमा है। उनका जीवन हमारे लिए आईना है जिसमें अपना मुख देखकर हम भी अपनी कालिख मिटा सकते हैं। जो उनका अनुसरण करेगा उसका सदा कल्याण है।

१७-८-३६
राजकोट

१५

आत्मिक शान्ति का अचूक प्रभाव

पदम प्रभु पावन नाम तिहारो, पतित उद्धार न हारो ।
जदपि धीवर भील कसाई, अति पापीष्ट जमारो,
तदपि जीव हिंसा तज प्रभु भज; पावे भवोदधिपारो ॥ पदम.

प्रार्थना—

इस प्रार्थना में भक्त ने बहुत सरल और सीधी सादी भाषा में एक सुगम बात जगत् के सामने रखी है। वह कहता है कि भाइयो ! तुम काल का सहारा लेकर, कलियुग का नाम बताकर, शारीरिक कमजोरी अथवा कलहमय जमाना बताकर धर्म की गहन बातों का पालन न कर सको तो एक सरल काम करो।

महात्मा लोगों ने कलियुग की कठिनाई महसूस करके आम लोगों के लिए धर्म साधन करने का सरलातिसरल मार्ग बताया है। वह मार्ग सरल है मगर उसमें सब अच्छे कार्य गतार्थ हो जाते हैं। वैसे तो इस कलियुग में भी कई लोग कठिन करणी करते हैं लेकिन सब लोग कठिन करणी नहीं कर सकते। कहा जाता है महादेव-शंकरजी ने अपने गले में सांपों की माला डाल रखी है। महादेव ने तो सांपों की माला पहन रखी है किन्तु साधारण लोग ऐसी माला नहीं पहन सकते। साधारण लोग फूलों की माला पहन सकते हैं। किसी के गले में फूल माला डाली जाय तो वह कैसे इन्कार कर सकता है। सांप को देखकर तो डर लगता है और लोग उससे दूर रहते हैं किन्तु फूल माला से किसी को भय नहीं होता। फूल माला गले में धारण करना सरल काम है। अतः गले में सांपों की माला पहनने के समान कठिन कार्य करने का अनुरोध जन साधारण से नहीं किया जाता। यदि कोई स्वतः कठिन धर्म करणी अपना लेता है तो उसकी बलिहारी है। यदि कठिन और कष्ट साध्य मार्ग नहीं अपना सकते तो सीधा और सरल मार्ग तो अपनाओ। यदि सीधा मार्ग भी न अपना सको तो ऐसी बात होगी जैसी किसी को लक्ष्मी स्वयं तिलक निकालने के लिए आये और वह मुंह फेर ले।

आप यह जानने के लिए अत्यन्त उत्सुक हो रहे होओगे कि वह सरल और सीधा मार्ग कौनसा है जिसको अपना लेने से सब भले कार्यों का उसमें समावेश हो जाता है। वह मार्ग बताने के लिए भक्त कहता है—

तो सुमरन विन या कलियुग में और नहीं आधारो
मैं वारी जाऊं तो सुमरन पर दिन दिन प्रेम वधारो ॥पद्म०॥

भगवान् ! इस कलियुग में तेरे स्मरण के विना संसार समुद्र से पार पाने के लिए दूसरा कोई मार्ग नहीं है।

यदि आप लोग परमात्मा का पावन पवित्र और पाक नाम सदा जीभ से जपा करो, उसके नाम का घोष चलने दो, उसको हृदय में धारण किये रहो तो क्या आपको कुछ वोझा लगता है या कठिनाई मालूम देती है ? जव समय मिले तव प्रभु नाम का स्मरण करते रहने में क्या कुछ खर्च लगता है ? यह सब से सरल काम है। फिर भी अधिकांश लोग कामक्रोध और लड़ाई झगड़ों की वातों में समय वीता देते हैं, अथवा गन्दा साहित्य या गन्दे उपन्यासादि पढ़ने में कालयापन करते हैं। मगर प्रभु नाम का रटन नहीं करते। यह काम वैसा ही हुआ जैसा लक्ष्मी तिलक निकालने आये और अपना मुंह फेर ले। तिलक न निकलवाये। यदि आप और कुछ न कर सको तो परमात्मा के नाम का घोष चलने दो। इससे आपको वही फल होगा जो तपस्या आदि करने से होता है।

परमात्मा का नाम लेना सवसे सीधा काम है। मगर आलस्य और प्रमाद के कारण दूसरी वातों में मन लगा रहता है और भगवान् को भूला दिया जाता है। मैं पूछता हूं आप घर से चलकर अथवा वाहर गांव से रेल में वैठकर यहां आये हैं तो रास्ते में और रेल में आपको समय मिला हुआ था।

उस समय आप क्या करते थे ? क्या भगवान् का नाम स्मरण करते थे या कोई दूसरा घाट घड़ते थे ? क्या उस समय यह डर था कि कहीं रेल नहीं उलट जाय। या किसी अन्य प्रकार के विघ्न की आशंका थी जिससे कि आप नाम स्मरण न कर सके। मेरा तो खयाल है यदि रेल उलटती हो अथवा कोई दूसरा विघ्न उपस्थित होता हो तो भी भगवान् का नाम लेने से रेल का उलटना और विघ्नों का उपस्थित होना रुक सकता है। यदि ऐसा पक्का विश्वास होता तो नाम जपना छोड़कर व्यर्थ कामों में समय बरबाद न किया जाता। भक्त लोग लोगों को सावधान करने के लिए कहते हैं—

नाम जप नाम जप नाम जप बाउरे
घोर भव नीर निधि नाम निज नाउरे।

आपको उपालम्भ न दिया जाय तो क्या किया जाय। भक्तजन कहते हैं कि ऐ पागल मनुष्य ! तू परमात्मा का नाम जपन क्यों नहीं करता है ! इस भयंकर भव समुद्र में परमात्मा का नाम जपन ही नौका के समान है। जिस नौका के सहारे अनन्त भव भ्रमण कट जाता है। इसीलिए तुझे पागल की उपाधि दी गई है। तू परमात्मा के नाम की प्रशंसा बहुत करता है मगर नाम स्मरण के वक्त आलस्य प्रमाद क्यों करता है ? तुझे बावरा न कहें तो क्या कहें। जिसको तू रत्न मानता है वह यदि मिल जाय तो उसे स्वीकार न करके फेंक दे अथवा स्वीकार करके अपनावे नहीं तो बावरापन ही कहा जायगा।

परमात्मा के नाम का इतना महत्व है फिर भी दूसरे तुच्छ कामों में फँसे रहना मिष्टान्न छोड़कर विष्टा खाना है। अथवा जैसे कुत्ता किसी जीमनवार में झूठन चाटता है किन्तु यदि उसको बुलाकर भोजन कराया जाय तो वह नहीं आता। उस कुत्ते को बावरा ही कहेंगे। कुत्ते में भले बुरे और हिता-हित का ज्ञान नहीं है। यदि उसमें ज्ञान होता तो शायद वह भूल न करता। किन्तु आश्चर्य है कि मनुष्य में अपना भला बुरा सोचने की शक्ति होने पर भी वह अपना हित नहीं करता। कुत्ता इतनी टेक रखता है कि यदि उसे भरपेट खुराक मिल चुकी हो तो वह उधर उधर नहीं भटकता। मगर ज्ञानी कहते हैं कि ए बावरे प्राणी! तेरी आत्मा कुत्ते से भी गई गुजरी है जो कभी संतोष नहीं धारण करती।

परमात्मा का नाम स्मरण करने में द्रव्य क्षेत्र काल भावादि का कोई बन्धन नहीं है। जब मन में आवे तब नाम स्मरण किया जा सकता है। कैसी भी विषम परिस्थिति हो-चाहे आंधी आये या तूफान परमात्मा का स्मरण करने में कोई बाधा नहीं आ सकती। ये पर्यूषण के दिन हैं। इन दिनों में जिस तरह रत्नों को सोने के तार में पिरोकर सुरक्षा के लिए गले में डाल लिया जाता है उसी तरह परमात्मा के नाम को प्रेम के तार मे पिरोकर हृदय में धारण कर लो। अखण्ड घोष चलने दो। ऐसा करने से आपके चेहरे का रंग बदल जायगा। आप में तेजोस्विता आ जायगी। आपके हृदय के भाव कुछ दूसरे ही हो जायंगे। आपको देखकर सब को शांति

मिलेगी। कैसा भी संतप्त व्यक्ति आपके पास आवे आपके संसर्ग से शांति प्राप्त करने लगेगा।

परमात्मा के नाम का स्मरण करने का आग्रह इसलिए किया जाता है कि परमात्मा ने पहले बहुत तप किया था। तीर्थङ्कर का चरित्र कुछ असाधारणता लिए हुए होता है। उनके सारे काम और कल्याण मानव समाज के लिए होते हैं। उनको देवाधिदेव कहा जाता है किन्तु विचार करने पर मनुष्याधिप कहना अधिक उपयुक्त मालूम होता है। मनुष्याधिप होने पर भी देवाधिपति इसलिए कहा गया है कि मनुष्याधिपति तो राजा भी होते हैं। तीर्थंकर मनुष्यों के ही अधीन नहीं किन्तु देवों के भी अधिपति हैं। भगवान् का जन्म कल्याणक मनाने के लिए इन्द्र और देव इसलिए आते हैं कि उनके द्वारा जगत् और मानव समाज का कल्याण होने वाला होता है। जगत् कल्याण को अपना कल्याण मानकर ही इन्द्रादि देव तीर्थंकरों का जन्मोत्सव मनाते हैं। इससे स्पष्ट है कि जगत् कल्याण के कारण ही भगवान् तीर्थंकर देवाधिदेव कहे जाते हैं।

एक बात और है। भगवान् का जन्म रात्रि में होता है। उस समय इन्द्रादि देव आकर भगवान् को मेरु पर्वत पर ले जाकर उत्सव मनाते हैं और सूर्योदय के पूर्व वापस उनको उनकी माता के पास रख जाते हैं। वे तीर्थंकर के शरीर को धरोहर के रूप में ले जाते हैं और जन्मोत्सवादि की खुशीयां मनाकर पुनः उनकी माता के पास रख जाते हैं। तीर्थंकर दीक्षा

ग्रहण करने के पूर्व तक अपने घर में रहते हैं। फिर दीक्षित होकर तपस्यादि करके केवल ज्ञान केवल दर्शन प्राप्त करके मनुष्य समाज और संसार का कल्याण करते हैं। इससे भी यही सिद्ध होता है कि भगवान् मनुष्याधिप हैं।

भगवान् महावीर का जन्म भी मनुष्यों के कल्याण के लिए ही हुआ था। यद्यपि भगवान् महावीर का जन्म चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को हुआ था किन्तु यह परम्परा है कि कल्पसूत्र के अनुसार जिस दिन जन्म वर्णन पढ़ा जाता है उस दिन भी भगवान् का जन्म दिवस मनाया जाता है। अतः आज जन्म दिन न होने पर भी जन्म दिन मनाया जाता है। यह जन्म दिन वास्तविक नहीं किन्तु औपचारिक है। मेरी समझ में पर्यूषण के दिनों में लोगों में धार्मिक उत्साह अधिक रहता है। उस उत्साहपूर्ण वातावरण में आपके दिलों में भगवान् के जीवन का महत्व बैठाने के लिए शायद जन्मोत्सव मनाने का पूर्वाचार्यों ने उचित समझा हो और यह परम्परा जारी की हो कारण कुछ भी हो। हमें तो आज भगवान् का गुण ज्ञान करना है और उनके द्वारा मानव समाज और इतर जगत का कल्याण संपादन किस प्रकार हुआ था यह जानना है।

श्री जिनराज को ध्यान लगावे ता घर आनन्द रंग वधावे।
सिद्धारथ राय के नन्द निरुपम रानी त्रिशला देवी कूंखे आवे।
चैत सुदी तेरस की रजनी जनम लियो प्रभु सब सुख पावे।श्री।

मैं आज आपके सामने भगवान् महावीर के जन्म के सम्बन्ध में कुछ विचार उपस्थित करता हूं। आप कहेंगे कि उनके जन्म हुए को बहुत लम्बा समय व्यतीत हो चुका है, उनका जन्म क्षत्रियकुण्ड ग्राम में माता त्रिशला और पिता सिद्धार्थ से हुआ था, अब कैसे और कहां जन्म मनायेंगे। यदि राजकोट में भगवान् का जन्म करायेंगे। यदि इस भोजनशाला में भगवान् को जन्मायेंगे तो यह भी बहुत लम्बी चौड़ी है। कहां कहां जन्मायेंगे। यदि इस सभा में जन्माना चाहेंगे तो यहां कई लोग नींद ले रहे हैं और कई ऊंघ रहे हैं। मगर मित्रों! मैं भगवान् का जन्म उन हृदयों में कराना चाहता हूं जो एकाग्र होकर उनको अपने हृदय में स्थान देना चाहते हैं जो मन और इन्द्रियों को वश में करके भगवान् को प्राप्त करना चाहते हैं उनके हृदय में भगवान् का जन्म अवश्य होता है।

जैन सिद्धांत का यह नियम है कि जिस मनुष्य का जहां उपयोग होता है वह वहीं बसता है ऐसा माना जाता है। अनुयोग द्वार सूत्र में इस विषय को समझाने के लिए एक रोचक प्रश्नोत्तर है। किसी ने किसी को पूछा कि अरे तू कहां निवास करता है? सामने वाले ने उत्तर दिया कि मैं लोक में निवास करता हूं। प्रश्नकर्त्ता ने कहा कि लोक तीन हैं—ऊर्ध्वलोक मध्यलोक और अधोलोक। तुम किस लोक में रहते हो। उत्तर दाता ने कहा मैं मध्य लोक में रहता हूं।

प्रश्नकर्त्ता—मध्यलोक में असंख्य द्वीप और समुद्र हैं, तुम कहां बसते हो सो बताओ?

उत्तर दाता—मैं जम्बूद्वीप में बसता हूं।

प्रश्न कर्ता—जम्बू द्वीप असंख्य हैं। तुम कौन से जम्बू द्वीप में रहते हो?

उत्तर दाता—मैं मध्य जम्बू द्वीप में रहता हूं।

प्रश्न कर्ता—मध्य जम्बूद्वीप में अनेक क्षेत्र हैं। तुम कहां रहते हो?

उत्तर दाता—मैं भरत क्षेत्र में रहता हूं।

प्रश्नकर्ता—भरत क्षेत्र में कई देश हैं। तुम कहां रहते हो?

उत्तर दाता—मैं काठियावाड़ प्रदेश में रहता हूं।

प्रश्नकर्त्ता—काठियावाड़ में अनेक ग्राम नगर हैं। तुम कहां रहते हो?

उत्तर दाता—मैं राजकोट में रहता हूं।

प्रश्नकर्त्ता—राज कोट में अनेक मोहल्ले हैं। तुम कहां रहते हो?

उत्तरदाता—मैं सदर बाजार में रहता हूं।

प्रश्नकर्त्ता—सदर बाजार में अनेक भवन हैं ... रहते हो?

उत्तरदाता—मैं अमुक भवन ...

प्रश्नकर्त्ता—अमुक भवन ... रहते हो?

उत्तरदाता—अमुक भवन के ...

प्रश्नकर्त्ता—उस कमरे में ... खटमल आदि कई प्राणी रहते हैं ...

उत्तरदाता--मैं साढे तीन हाथ के अपने शरीर में रहता हूं।

प्रश्नकर्त्ता- इस शरीर में रक्त मांस हड्डी आदि भी रहते हैं तथा अनेक कृमि भी रहते हैं। तुम कहां रहते हो ?

इस आखीरी प्रश्न के उत्तर में शब्द आदि तीन नय वाले कहते हैं कि तू कहीं नहीं रहता सिर्फ अपने उपयोग में रहता है। जहां जिस वक्त तेरा उपयोग होता है उस वक्त तू वहीं रहता है।

जिस मनुष्य के हृदय में भगवान् का विचार है उस वक्त भगवान् उसके दिल में वसते हैं यह शब्दादि तीन नयों का मत है। अतः भगवान् महावीर स्वामी का अपने हृदय में जन्म कराने के लिए अनन्य भाव से उनकी तरफ उपयोग लगाओ।

भगवान् के जन्म के विषय में शास्त्र में कहा है कि तेणं कालेणं तेणं समयेणं।

अर्थात् उस काल और समय में (भगवान् का जन्म हुआ)। काल और समय दोनों देने का उद्देश्य यह है जो मिति और सम्वत देने का होता है। किसी भी प्रकार का खत लिखकर उसमें सम्वत् और मिति दोनों लिखे जाते हैं यदि संवत् लिखा हो और मिति न लिखी हो और संवत् न लिखा गया हो तो वह खत गलत माना जाता है। इसी तरह काल और समय दोनों दिये गये हैं। शास्त्रीय परिभाषा में दिये गये काल और समय का अर्थ लौकिक भाषा में संवत् और मिति के रूप में समझना चाहिए।

भगवान् महावीर का जब जन्म हुआ था वह काल चौथा आरा था वह समय भगवान् पार्श्वनाथ के शासन की समाप्ति का था। उस समय के सम्बन्ध में कहा है कि वह वसन्त ऋतु थी, चैत्र का मास था और शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी थी। त्रयोदशी की आधी रात को भगवान् ने गर्भ में नौ मास और साढे सात रात्रि पूरी की थी।

नौ मास और साढे सात रात्रि गर्भ का पूरा काल गिना जाता है। जो बालक पूरा काल गर्भावस्था में व्यतीत करता है उसमें क्या विशेषताएं होती हैं, यह बात टीकाकारों ने विस्तार से बताई है।

जिस रात में भगवान् का जन्म हुआ था उसरात में सब ग्रह उच्च स्थान पर आ गये थे। लोग मुहूर्त ढूंढते फिरते हैं मगर मुहूर्त कहता है कि जो जीव अच्छे संस्कार लेकर जन्म ग्रहण करता है उसको मैं ढूंढा करता हूं भगवान् के जन्म के वक्त सब ग्रह उच्च स्थान पर इसी लिए आ गये थे कि भगवान् अनन्त पुण्याई लेकर जन्मे थे। साथ साथ वे जगत् का कल्याण करने वास्ते जन्मे थे।

ग्रहों के उच्च नक्षत्र पर आने का सबूत उस वक्त वातावरण की शान्तता थी। उस समय सब दिशाएं शांत थी और सब शुभ शकुन भी प्रकट हुए थे। उस वक्त पक्षियों का नाद मधुर था। पवन भी मन्द सुगन्ध बहा रहा था। धीरे धीरे पृथ्वी को स्पर्श करता हुआ अनुकूल बह रहा

मेदीनी अन्न से परिपूर्ण थी। पृथ्वी पर सरस और शांति देने वाली फसल लहलहा रही थी। दुनिया में शांति का मुख्य कारण प्रकृति की अनुकूलता है जब प्रकृति अच्छी होती है, और फसल अच्छी होती है तो वह समय अच्छा माना जाता है। महा पुरुषों का जन्म ऐसे अच्छे समय पर ही हुआ करता है। उस समय सारे जगत् में हर्ष की एक लहर फैली हुई थी।

ऐसे अनुकूल और सुखदायक समय में जब उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र ने चन्द्र से योग जोड़ा, तब महारानी त्रिशला देवी ने नीरोगानीरोगी रीति से भगवान् महावीर को जन्म प्रदान किया। सूर्य को पूर्व दिशा जन्म देती है। जिस दिशा से सूर्य निकलता है उसे पूर्वदिशा कही जाती है। इसी प्रकार महारानी त्रिशला भी पूर्वदिशा के समान् महावीर की जन्म दात्री कहलाई है। सूर्य किसके लिए उदय होता है ? यदि वह अपना प्रकाश अपने तक सीमित रख ले तो उसे सूर्य कौन कहेगा ? सूर्य अपने प्रकाश से संसार को जीवन प्रदान करता है अतः उसके भक्त उसकी पूजा करते हैं। इसी प्रकार भगवान् महावीर ने जगत् में ज्ञान रूपी प्रकाश फैलाया था और जगत् का कल्याण किया था अतः उनके भक्त हम लोग उनकी पूजा करते हैं, उनको वंदन नमस्कार करते हैं और उनका गुणगान व स्मरण करते हैं। यदि आपने भगवान् का महत्त्व समझ लिया है तो इस तरह भक्ति करो कि अन्यत्र मन जावे ही नहीं। सदा यही भावना रहनी चाहिए कि स्मरण और सेवा करने योग्य कोई है तो वह महावीर ही हैं। दूसरा कोई नहीं।

साधु सरोषी हुआ चण्डकोशी पन्नग महादुःख दाई रे
डंक दियो तव प्रभुपाति बोध्यो दियो स्वर्ग सुखदाई रे ।।वि.।

भगवान् महावीर जगत् के कल्याण कर्त्ता व बिगड़ी के सुधारने वाले किस प्रकार बने इसके दाखले शास्त्र व उनके जीवन चरित्र में भरे पड़े हैं। उन सब का परिमित समय में वर्णन करना शक्य नहीं है। उनमें से एक दाखला आपके सामने पेश करता हूं।

एक साधु की दशा बहुत बिगड़ी थी। उसने अपने शिष्य पर प्रचन्ड क्रोध किया था। क्रोध निष्कारण न किया था किन्तु सच्चे कारण से क्रोध किया था। मगर भगवान् का फरमान है कि सच्चा कारण होने पर भी क्रोध करना उचित नहीं है।

यदि आप पर कोई झूठा कलङ्क लगा दे तो भी यह मान कर संतोष करना चाहिए कि दूसरा व्यक्ति मुझ पर कलङ्क नहीं लगा सकता। मेरी आत्मा ने कलङ्क का कार्य किया है अतः मुझ पर कलङ्क लगा है। शास्त्र में कहा है—

अप्पा कत्ता विकत्ता य दुहाणय सुहाणय ।

दुःख और सुख का कर्त्ता अपना आत्मा ही है। दूसरा व्यक्ति सुख दुख में निमित्त मात्र होता है। मूल कारण आत्मा ही है। अतः कलङ्क लगाने वाले पर मुझे क्रोध क्यों करना चाहिए। गजसुकुमार ने सोमिल ब्राह्मण का क्या अपराध किया था जिससे उसने उनके मस्तक पर अग्नि के अंगारे रखे

थे ? फिर भी गजसुकुमार ने सोमिल पर तनिक भी क्रोध नहीं किया। बल्कि शीघ्र मुक्ति प्राप्त करने में निमित्त बनने के कारण उसका उपकार स्वीकार किया। हम गजसुकुमार के गुणगान इसी लिए गाते हैं क्योंकि क्रोध करने का कारण होने पर भी उन्होंने क्रोध नहीं किया था।

विकारहेतौ सति विक्रियन्ते, येषां न चेतांसि त एव धीराः।

विकार का कारण मौजूद होने पर भी जिन के चित्त में काम क्रोध मद मोह और लोभ आदि का विकार जागृत न हों वे धीर पुरुष कहे जाते हैं। उन धीरपुरुषों का थोड़ा भी गुण यदि आप लोग अपने जीवन में अपना सकें तो कल्याण है। ज्ञानी जन कहते हैं—क्रोध किसी हालत में न करना चाहिए चाहे कोई झूठी बात कहकर आपको उत्तेजित करने की कोशिश करे। यह तो आपकी परीक्षा की कसौटी है उस वक्त यदि आप फैल हो गये तो आपकी क्षमा का क्या अर्थ होगा। क्रोध करने से साधुव्रतधारी की दशा भी कैसी बिगड़ती है कि उसे चण्डकौशिक सांप की योनि धारण करनी पड़ती है।

चेले ने अपने गुरु पर झूठा कलङ्क लगा दिया। गुरुजी अपने क्रोध को न दबा सके। वे चेले को ओघे से मारने के लिए दौड़ पड़े। आप जानते हैं कि क्रोध अंधा होता है। क्रोध का आवेश जिस व्यक्ति को चढ़ जाता है वह भी बेभान हो जाता है। गुरुजी क्रोध में बेभान होकर दौड़े कि रास्ते में खंभे से सिर टकरा गया और जमीन पर गिर पड़े। सिर में घातक चोट लगने से उसी वक्त काल करके चण्ड कौशिक

विष धर रहता है। वह साधुओं को भी कुछ नहीं गिनता। आप पीछे लौट जाइये। इधर मत जाइये।

भगवान् इस बात को जानते थे कि वह सर्प नहीं है मगर साधु है। क्रोध के कारण साधु ने सांप की योनी में जन्म ग्रहण किया है। यह नियम है कि जीव जिस भाव से मरण प्राप्त करता है उसी भाव में आगे की योनि धारण करता है। जैसी मति वैसी गति। अच्छी या बुरी गति की प्राप्ति भावों से सम्बन्ध रखती है। भगवान् इस बात को जानते थे। अतः पहरेदारों की बात सुन कर मौन पूर्वक हंसते रहे। भगवान् को हंसते देखकर पहरेदार कहने लगे कि हमने आपकी भलाई के लिए उधर जाने से रोका है और आप हमारी हंसी कर रहे हैं। भगवान् फिर भी मुस्कराते रहे। उनका पैर आगे तो पड़ता था मगर पीछे न हटता था। पहरेदारों ने फिर कहा कि इस सर्प की दृष्टि से ही विष चढ़ जाता है अतः आप उधर न जायं।

इतना मना करने पर भी जब भगवान् का कदम बढ़ते देखा तब एक पहरेदार बोला—
दो यह मौत के मुख में जाना चाहता है,
है तो इसको जाने दो। इसको अपनी
तो जाकर देखले कि क्या फल पाता

भगवान् इस पहरेदार की बा
रहे। वे सांप को और पहरे दारों
इन्होंने सोचा इस में जितनी

बात कह रहा है। इससे अधिक बेचारा क्या कह सकता है। इस प्रकार भगवान् का न किसी पर राग भाव था और न किसी पर द्वेष भाव। सब का कल्याण करने की भावना थी।

भगवान् आगे चल दिए। पहरेदार आपस में कहने लगे कि इस महात्मा के चेहरे पर कितना अलौकिक तेज है। हम लोगोंने इतना कहा मगर इसके चहरे पर कोध की रेखा तक नहीं खिची। शांत दांत और गंभीर रहते हुए चल दिया। चलो, हम लोग इसके पीछे पीछे जाकर देखे कि यह कहां जाता है और क्या करता है। सांप इसकी क्या दशा करता है सो चलकर देखें तो सही। दूर दूर भगवान् के पीछे पीछे पहरेदार भी चलने लगे।

ईर्या समिति का पालन करते हुए मेरु पर्वत के समान अडोल भगवान् महावीर सर्प की बांवी के पास पहुचे। वहां पहुच कर बांवी के समीप ही ध्यान लगा कर खड़े हो गये। भगवान् में शरीर की छाया सर्प की बांवी पर पड़ी जिससे सर्प को भान् आया कि कोई मनुष्य यहां आया है। वह विचारने लगा कि ऐसा कौन मनुष्य है जो मेरी बांवी के निकट आने की हिम्मत कर सका है! उसने अपनी दृष्टि से भगवान् की तरफ विष फैंका। किन्तु भगवान् की शान्ति के सामने उसका विष बेकार हो गया। भगवान् को विष का कुछ असर नहीं हुआ।

सर्प विचारने लगा कि मैंने कई मनुष्यों पर दृष्टिविष फैंका था और जिससे वे मौत की घाट उतर गये थे। ऐसा एक भी व्यक्ति न देखा जो मेरी नजर से भागता न बना हो।

भागते हुए व्यक्ति को भी मैंने कभी नहीं छोड़ा। मैं अपने आकर्षण से उसको अपने पास खींच लिया करता था और मार डालता था। लेकिन यह मनुष्य बड़ा विचित्र है। स्थिर और अडोल खड़ा है। इसको इसकी ढिठता का दन्ड देना चाहिए। वर्ना मेरा विष वृथा चला जायगा।

इस प्रकार सोचकर सर्प अत्यन्त क्रोध में भर कर अपनी बांबी से बाहर निकला। इधर उधर घूम कर क्रोध को और अधिक उत्तेजित कर लिया। फिर लाल लाल नेत्र करके निर्निमेष दृष्टि से भगवान् की तरफ देखने लगा। वह अपनी दृष्टि से भगवान् को जहर चढ़ाने का प्रयोग कर रहा था। मगर उसका यह प्रयोग महावीर के सामने व्यर्थ चला गया। भगवान् की आंखों से न मालूम कैसा अमृत भर रहा था कि सांप का जहर शान्त हो गया।

यदि किसी भाई को यह शंका हो कि क्या यह संभव है कि दृष्टि के कारण इतने प्रचण्ड विषधर सर्प का विष भी शान्त हो सकता है ? तो इस बात का समाधान पाने के लिए उसे योग शास्त्र का अध्ययन तथा योगाभ्यास करना चाहिए। तब उसको पता लगे कि योग साधना में कितनी शक्ति है। जिसने योग का थोड़ा भी अभ्यास किया है वह ऐसी शंका नहीं कर सकता और न ऐसी बात को असंभव मान सकता है।

आप लोगों ने मेस्मेरिजम का प्रयोग देखा होगा। जिस पर दृष्टिबांध कर मेस्मेरिजम का प्रयोग किया जाता है वह

आदमी लकड़ी की तरह पड़ा रहता है और लकड़ी के समान कड़ा भी हो जाता है। फिर उस पर दस दस पांच पांच आदमी कूदा भी करें तब भी उसको कुछ नहीं देता। उसके एक हाथ को पचास आदमी मिलकर भी मोड़ नहीं सकते। मेस्मेरिजम में दृष्टि की शक्ति के सिवा और क्या है। आप मेस्मेरिजम में प्रयुक्त दृष्टि शक्ति को तो मानें और भगवान् की अमृतमय दृष्टि की शक्ति को न मानें या उसमें शंका लायें यह कहां तक उचित है।

आंखों से विष चढ़ाने का साँप का प्रयोग जब निष्फल हो गया तब और अधिक गुस्सा लाकर उसने भगवान् के पैर के अंगूठे पर डंक मारा। अंगूठे को काटने पर भी भगवान् सहज प्रसन्न मुद्रा में खड़े थे। मानों कुछ हुआ ही न हो। ज्यों ही भगवान् के रक्त की धारा सर्प के मुख में पहुंची कि उसका सारा विष शान्त हो गया। जब निर्विष हो कर सर्प शान्त हो गया तब भगवान् ने कहा—अरे चण्ड कौशिक! तू बोध प्राप्त कर बोध प्राप्त कर। यदि तू सत्य तत्त्व को जान जायगा तो मेरे समान बन सकता है।

कहाँ जगत् कल्याण कर्ता भगवान् महावीर और कहां तिर्यञ्च योनिधारी दूसरों को सताने वाला सर्प! कितना अंतर है। किन्तु महावीर का मार्ग कुछ निराला ही है। वह सांप को भी अपने समान बनाना चाहते हैं। वह शत्रु को मारना नहीं चाहते मित्र, बनाना चाहते हैं। आप लोग भी चाहें तो संसार के सारे झगड़े शान्तिमय तरीकों से मिटा सकते हैं।

शत्रु को मार डालने से अथवा उसको कष्ट पहुंचाने से शत्रुता कम नहीं हो सकती। वह और अधिक बढ़ती जाती है। मान लीजिये आपके मार डालने से आपका दुश्मन मर गया। मगर उसके दिल में आपके प्रति रही हुई शत्रुता या दुर्भावना तो नहीं मरी। वह तो ज्यों की त्यों कायम है। वह व्यक्ति दूसरा जन्म ग्रहण करके आपसे बदला लेगा। और यदि वह जान से मर नहीं गया है और जिन्दा रह गया है तो फिर कभी मौका पाकर वैर वृत्ति धारण कर बदला लेगा। वैर मिटाने का असली तरीका भगवान् महावीर ने अपने जीवन से बताया है कि शत्रु को मित्र बनाओ। किसी को दुश्मन मान लेने की भावना ही गलत है।

क्रोध से क्रोध नहीं मिटता। क्रोध से क्रोध बढ़ता है। उपशम अथवा क्षमा धारण करने से क्रोध कम हो सकता है। शास्त्र में कहा है:—

उवसमेण हणे कोहं, माणं मद्दवया जिणे।

उपशम-शांतिभाव से क्रोध भाव को जीतो और नम्रता से अभिमान को।

सर्प ने भगवान् को डंक मारा और भगवान् ने उसकी एवज में सद्बोध दिया। दोनों ने अपने अपने स्वभाव के अनुसार कार्य किया।

भगवान् की नजर से निकली अमृतधारा से शान्त होकर सर्प सोचने लगा कि यह कोई विलक्षण व्यक्ति है जो

डंक मारने पर भी मुझे उपदेश देता है। इसके शरीर का रक्त भी मुझे अन्य लोगों के रक्त के समान खारा नहीं मालूम देता। इसके रक्त में मिठास है। इस तरह सोचकर सर्प ने अपनी दृष्टि भगवान् की तरफ फैलाई। भगवान् की दृष्टि से उसकी दृष्टि मिलते ही उसमें और शांति भावना आ गई। रहा सहा क्रोध भी चला गया।

शास्त्र में शुक्ल लेश्या का वर्णन किया हुआ है। उस वर्णन में शुक्ल लेश्या के वर्ण गन्ध रस और स्पर्श का विस्तृत वर्णन है। आप लोग बाहर के वर्ण गन्ध रस और स्पर्श के पीछे पड़े रहते हो। किंतु यदि शुक्ल लेश्या के वर्ण गन्ध रस और स्पर्श को समझो और समझकर शुक्ल लेश्या धारण करो तो बहुत ही आनन्द आ जाय। संसार में जो उत्तम से उत्तम सुगन्धित द्रव्य माने जाते हैं उनसे अनन्त गुणी अधिक श्रेष्ठ गन्ध शुक्ल लेश्या की होती है। तथा इसी प्रकार उत्तम से उत्तम वर्ण रस और स्पर्श युक्त पदार्थों से अनन्त गुणा उत्तम वर्ण रस और स्पर्श शुक्ल लेश्या का होता है। अधिक क्या कहें आप शुक्ल लेश्या प्राप्त करके इस चीज का अनुभव कीजिये। यद्यपि पहुंचना अलेशीपद तक है परन्तु शुक्ल लेश्या उसका सोपान है।

यदि कोई कहे कि शुक्ल लेश्या का वर्ण गंध रस और स्पर्श हमें मालूम नहीं देता, हम कैसे मान लें। शुक्ल लेश्या-धारी मनुष्य को देखने सूंघने चाखने और स्पर्श करने से शास्त्र प्रतिपादित वर्णादि का बोध नहीं होता। इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए आधुनिक विज्ञान हमारी बहुत मदद करता

चण्डकौशिक शान्त हो गया। अब यह शंका अवशिष्ट रह जाती है कि चण्डकौशिक ने भगवान् के पैर के अंगूठे में काटा था फिर भी उनको विष क्यों नहीं चढ़ा। इसका समाधान यह है कि विष दूसरे विष के साथ मिलने से जागता है। जिस तरह बिजली के दो तार मिलने से बिजली जगती है। इसी तरह यदि हममें विष होगा तो सर्पादि का विष चढ़ेगा अन्यथा नहीं चढ़ सकता। यदि हमारी आत्मा में क्रोध नहीं है तो दूसरे व्यक्ति का क्रोध हम पर कुछ भी असर नहीं कर सका। विष के लिए भी यही बात लागू होती है।

भगवान् में विष या क्रोध था ही नहीं। अतः चण्डकौशिक का विष उन पर कैसे असर कर सकता था। आपके हाथ में यह बात नहीं है कि आप दूसरों को निर्विष या क्रोध रहित बना दो। किन्तु यह बात तो आपके हाथ की है कि आप स्वयं निर्वैर और शान्त दान्त बन सकते हैं। यदि आपने अपनी आत्मा को वश में कर लिया तो किसी प्रकार के जहर का आप पर असर नहीं हो सकता।

चण्डकौशिक आत्मालोचन कर रहा है कि मैंने कइयों को विष चढ़ाया है और तो और मैंने स्वयं भगवान् महावीर तक को न छोड़ा। उनको भी काटा है अब आयन्दा में किसी को न काटूंगा। जो हुआ सो हुआ अब से किसी को विष न चढाऊंगा। इस तरह निश्चय करके अपना मुख बांबी में डाल दिया और अन्य सारा शरीर बाहर रख दिया। ताकि जिसको जो कुछ करना हो शरीर से करे। सर्प की ऐसी वृत्ति देखकर भगवान् वहां से चल दिए।

जो पहरेदार भगवान् के पीछे पीछे तमाशा देखने आये थे वे कहने लगे कि यह मोड़ा बड़ा करामाती निकला। देखो सर्प कितना शान्त होकर पड़ा है। कहीं यह मर तो नहीं गया है। यह मुर्दे के समान पड़ा हुआ है। वे लोग सांप जिन्दा है या मर गया है यह जानना चाहते थे। किन्तु सांप के पास आकर देखने की हिम्मत नहीं पड़ती थी। अतः दूर से कंकड़ फेंक कर जांच करने लगे कि यह हिलता है या नहीं। कंकड़ लगाने पर भी जब सर्प न हिला तो वे डरते डरते उसके समीप आये। और लकड़ी से उसको हिलाने लगे। सर्प इधर से हिलाने पर उधर हो जाता था और उधर से हिलाने पर इधर हो जाता था। मगर अपना मुख बाहर न निकालता था। और न उनकी तरफ देखता था।

पहरेदार समझ गये कि यह जिन्दा है मगर शान्त स्वभावी बन गया है। यह उस साधु की करामात है। लोग कौतुक भी देखना चाहते हैं और डरते भी हैं। जब पहरेदारों को विश्वास हो गया कि अब यह सर्प लोगों को विष नहीं चढ़ायेगा तब ग्राम ग्राम में यह खबर पहुंचा दी गई कि सर्प अब शान्त हो गया है। यह खबर सुनकर गांवों से लोग उस सर्प को देखने के लिए दौड़े आये। उसका लोगों पर आतंक तो था ही। लोग आकर उसकी पूजा करने लगे। घी दूध आदि चढ़ाने लगे। लोग शक्ति की पूजा करते हैं। मगर पूजा करने का तरीका नहीं जानते। सर्प के लिए अब पूजा करने वाले और कष्ट देने वाले समान थे। न कोई उसका शत्रु था और न कोई मित्र। सब पर एक ही दृष्टि थी। घी दूध के

कारण असंख्य चींटीयां वहां इकट्ठी हो गईं और उसके शरीर को काट काट कर चलनी बना दिया। मगर सर्प यही विचार करता था कि यह मेरे पापों का प्रायश्चित्त है चींटियां मेरी सहायक हैं जो मेरे पाप नाश करने में मददगार बन रही हैं। गज सुकुमार ने भी यही भावना रक्खी थी।

यद्यपि वह जातिसे सर्प था मगर उसकी भावना इत निर्मल हो गई कि वह शुक्ल लेश्या धारी हो गया। जो लेश्य भगवान् महावीर में थी वही लेश्या सर्प की भी हो गई। वह समाधि भाव में मर कर शुक्ल लेश्या से आठवें देव लोक में उत्पन्न हुआ। शुक्ल लेश्या का प्रारंभ छठे देव लोक से हो जाता है। आठवें में वह और अधिक उज्वल हो जाती है। यह नियम है कि जीव जिस लेश्या में मरता है उसी लेश्या में दूसरी योनि में जन्म ग्रहण करता है। भगवान् महावीर की शुक्ल लेश्या में और आठवें देव लोक में उत्पन्न देव की शुक्ल लेश्या में तरतम भाव अवश्य है। भगवान् की लेश्या विशुद्ध तर थी।

देवावि तं नमंसन्ति जस्स धम्मे सया मणो ।

अतः तन धन की प्रीति लगाओगे तो कल्याण है ।

१८-८-३६
राजकोट

१६

ब्रह्मचर्य का साधक तप

प्रतिष्ठसेन नृप को सुत, पृथ्वी तुम महतारी;
सुगुण सनेही साहिब साचो, सेवक ने सुखकारी।
श्री जिन राज सुपार्श्व, पूरो आश हमारी ॥१॥

प्रार्थना—

यह भगवान् सुपार्श्वनाथ की प्रार्थना है। इस प्रार्थना की कड़ी में वह बात कही गई है जो सब प्राणियों को इष्ट है। ऐसा कौन प्राणी है जो अपनी आशा पूरी न करना चाहता हो! सब लोग यह चाहते हैं कि हमारी मनोवांछा पूरी हो। भक्त भी भगवान् से यही प्रार्थना करता है कि हे प्रभो! मेरी आशा पूरी करो। यदि तू मेरी आशा पूरी न करेगा तो कौन करेगा? मेरी आशा पूरी किये विना तू मेरा स्वामी भी कैसा?

व्याकरण के नियम के अनुसार प्रत्येक वाक्य के दो विभाग होते हैं। एक उद्देश्य और दूसरा विधेय। जो जाने हुए अर्थ को बतावे वह उद्देश्य है और जो न जाने हुए अर्थ को बतावे वह विधेय है। प्रत्येक समझदार व्यक्ति इस बात का विचार करता है कि मेरे कहे हुए वाक्य का क्या उद्देश्य है और क्या विधेय है इस प्रार्थना का विधेय कोई अपूर्व आशा है। उस अपूर्व आशा की पूर्ति के लिए भक्त भगवान् से प्रार्थना करता है कि भगवान् मेरी आशा पूरी करो।

इस जगत् में ऐसा कौन प्राणी है जो आशा पूरी कराने के लिए प्रयत्न न करता हो। सब प्राणियों के सारे प्रयत्न आशा पूर्ति कराने के लिए ही होते हैं। फिर भक्त को यह कहने की क्यों आवश्यकता हुई कि मेरी आशा पूरी करो। दूसरी बात परमात्मा की प्रार्थना कामना रहित होकर करनी चाहिए। किसी कामना की पूर्ति के लिए प्रार्थना न होनी चाहिए निष्काम भाव से की गई प्रार्थना सच्ची प्रार्थना है। मगर इस प्रार्थना में भक्त अपनी कामना प्रकट कर रहा है। यह विरोधा भास क्यों है?

इस विरोधाभास को मिटाने के लिए प्रार्थनावाक्य का विधेय देखिये। वाक्य का अर्थ उसके विधेय से लगाना चाहिए। विधेय को समझकर फिर उसके विषय में प्रश्न उठाना चाहिए। यद्यपि इस प्रार्थना में आशा पूरी करने की भावना की गई है मगर हमें यह देखना चाहिए कि वह आशा कौन सी है। जीव अनादि काल से अपनी आशा पूरी करना

चाहता है मगर अभी तक अनन्त काल व्यतीत हो चुकने पर भी उसकी आशा पूरी नहीं हुई है। अतः गंभीरता से विचार करना चाहिए कि भक्त कौनसी आशा पूरी कराने की प्रार्थना करता है। इस वाक्य में आशा विधेय है। मगर वह विधेय किस आशा के लिए है, यह देखो।

भक्त कहता है कि भगवन्! मैं अनन्त काल से आशाओं की पूर्ति के लिए प्रयत्न शील हूं। आशा का दास बनकर दर-दर भटकता फिरता हूं। मगर ये आशाएं, जैसे घासलेट तेल या पेट्रोल डालने से आग बुझने के बदले और अधिक भड़कती है, वैसे ही ज्यों ज्यों इनको पूरा करने का यत्न करता हूं, दिनों दिन अधिकाधिक बढ़ती जाती है। अतः प्रभो! मैं तेरी शरण में आया हूं। मेरी आशा इस तरह पूरी करो कि फिर कभी आशा ही न हो। प्रभो! मैं आप से 'आशायें ही न हों' इस बात की आशा करता हूं। आशा मिटाने की आशा करता हूं। कामना मात्र से रहित होने की आपसे प्रार्थना करता हूं। आशा तृष्णा वांछा या कामना ही न रहे' यह प्रार्थना करता हूं। बस प्रभो! मेरी यही एक अंतिम आशा है कि 'मैं आशा रहित हो जाऊं'।

यदि किसी भण्डार में चिन्तामणि रत्न अन्य अनेक बहुमूल्य रत्न भरे पड़े हों, और कि वांछित वस्तु लेने की इजाजत मिल गई हो तो वस्तु लेना पसन्द करेगा? यदि वह मनुष्य बु चिन्तामणि रत्न लेना ही सबसे अधिक

कारण कि चिन्तामणि के मिल जाने से अन्य रत्न आदि अपने आप इच्छा करते ही मिल सकते हैं। परमात्मा से भी ऐसी ही प्रार्थना करनी चाहिए जिससे सब कामनाएं पूरी हो जाय। अथवा दूसरे शब्दों में कहें तो तेरी प्रार्थना से मुझ में कोई आशाही अवशिष्ट न रहनी चाहिए।

तू दयालु दीन हौं, तू दानी हौं, भिखारी।

भगवन्! तू दयालु है, मैं दीन हूं। तू दानी है, मैं भिखारी हूं। मैं संसार के लोगों के सामने अपनी दीनता प्रदर्शित करता हूं और वे कदाचित् दया करके मेरी दीनता मिटा भी देते हैं, किन्तु इससे मेरी दीनता और बढ़ती जाती है। यदि कोई मुझ को राज्य भी प्रदान कर दे तो वह भी मेरी दीनता या बन्धन बढ़ाने वाला ही होगा। अतः मेरी दीनता मिटाने वाला एक मात्र तू ही दानी है। तेरे जैसा दानी इन्द्र नरेन्द्र आदि कोई भी नहीं है।

यदि कोई कहे कि मनुष्यों को अनेक दुःखों ने घेर रखा है। उन दुःखोंको मिटाने के लिए रात दिन चिन्ता लगी रहती है। किसी को पुत्र की शादी की चिन्ता है तो किसी को आजीविका की चिन्ता सता रही है। इन सब चिन्ताओं को मिटाने का जो वाजिब उपाय है उसे छोड़कर परमात्मा से प्रार्थना करने लगना दुःखों की वृद्धि करना है। इस तरह हमारा मानव जीवन व्यर्थ चला जायगा।

इसका उत्तर यह है कि मनुष्य जीव नही एक ऐसा जीवन है जिसमें परमात्मा की प्रार्थना की जा सकती है। मनुष्य जन्म ही प्रार्थना का पात्र है। देव और इन्द्र भी प्रभु प्रार्थना करने के उतने पात्र नही है जितना मनुष्य है। अतः ज्ञानी कहते हैं कि ऐ जीव! तू दुखों से घबड़ाता क्यों है? जिन दुखों से घबड़ा कर तू प्रभु प्रार्थना करने से हिचकता है वे दुःख तेरे अपने ही किये हुए हैं। परमात्मा की सहायता लेकर उन दुःखों को तू सरलता से मिटा सकता है। दूसरी बात दुःख दुःख चिल्लाकर रोते रहने से कोई पूरा नहीं हो सकता। तू यही विचार कर कि ये दुःख मेरे किये हुए हैं अतः इन को मिटाने की सामर्थ भी मुझ में ही है। मैं इन दुःखों को सहायता देता हूं इसलिए ये टिके हुए हैं। अब भगवान् की शरण पकड़ता हूं जिससे ये सब दुःख दूर हो जायंगे। दुःख या आशा तृष्णा मिटाने का अचूक उपाय परमात्मा की प्रार्थना ही है।

परमात्मा से दुःख नाश करने की प्रार्थना करने के पूर्व यह जान लेना चाहिये कि दुःख क्या है? जीव! अभी तू दुःख और सुख को भी नहीं समझता यह तेरी नादानी है। कहा है—

दुःख को सुखकरि मानियो भमियो काल अनन्त
लख चौरासी योनि में भाप्यो श्री भगवन्त।
मुक्ति का मारग दोयलो जीवा चतुर सुजान
भजलो नी भगवान तज दो नी अभिमान मुक्ति॥

आत्मा को सुख प्राप्त कराने वाला मार्ग आत्मा ने ही अवरुद्ध कर रखा है। अपनी अज्ञानता ने इस मार्ग को कठिन बना रखा है।

आत्मा ने सुख को दुःख और दुःख को सुख किस तरह मान रखा है यह बात समझाने के लिए कुछ प्रमाण देता हूं। आप लोग समझदार हैं अतः थोड़े से दाखलों पर से बात समझ जायंगे और आगे का विचार भी कर लेंगे।

मान लीजिये एक आदमी को कड़ी भूख लगी है। उस समय वह भोजन करने में ही आनन्द मानता है। इत्तफाक से उसके सामने भोजन का थाल आ गया और उसने बड़ी रुचि से भोजन कर लिया। उसे भोजन कर लेने से तृप्ति हो गई। भोजन कर लेने के बाद उसे और लड्डू परोसे गये। अब उसे खाने की रुचि नहीं है। एक दो लड्डू और खा गया। अब एक भी लड्डू खाना उसकी शक्ति के बाहर है। फिर भी बड़ा आग्रह करके उसको लड्डू खाने की बात कही गई। अब उसे लड्डू की बात ही नहीं सुहाती। मैं पूछता हूं कि क्या अब लड्डू का स्वाद बदल गया है? थोड़ी देर पहले जो लड्डू आनन्द देने वाले थे वे अब अरुचि पैदा करने वाले क्यों हो गये? वस्तुतः बात यह है कि भूख जन्य जो दुःख था वह मिट गया इसलिए अब सुख के कारण माने जाने वाले लड्डू सुख के कारण न रहे। बल्कि अब खाने का अधिक आग्रह करने पर दुःख का कारण बन गये हैं इससे हम इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि लड्डुओं में सुख नहीं है। केवल

भूख के दुःख से घबड़ा कर उनमें सुख मान लिया गया था। कोई यदि यह बात कहे कि लड्डू भूख अवश्य मिटाते हैं तो यह बात भी भूल से भरी हुई है। लड्डू सदा के लिए भूख नहीं मिटाते। आपने कल लड्डू खाये थे, आज और खायेंगे या नहीं? आज यदि और खायेंगे तो कल वाले लड्डुओं ने क्या किया? यदि कहें कि कलके लड्डुओं ने कल भूख मिटाई और आज के लड्डू आज भूख मिटाते हैं तो यह सिलसिला सदा जारी रखना पड़ेगा। इस तरह सदा खाते रहना पड़ेगा। यह तो उस फोड़े वाली बात हुई जो भरा जाता है। पस सूख जाता है, फिर पस तय्यार हो निगर हो जाता है। यह एक बीमारी है जिससे पीछा छुड़ाना कठिन काम है।

जिस प्रकार जीव क्षुधावेदनीय कर्म के उदय से भोजन में सुख मानता है। उसी प्रकार ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीयादि कर्मों के उदय से घबडा कर किसी न किसी वस्तु में सुख की कल्पना करता है और सुख मानने लगता है। परन्तु संसार के भौतिक पदार्थों में सुख है ही नहीं।

आप लोग कहेंगे कि महाराज! आप चाहे संसार के पदार्थों में सुख न मानें मगर हमें तो उनमें बड़ा आनन्द मालूम देता है। इसके उत्तर में मैं कहता हूं कि जो आदमी जो काम करता है उसमें सुख मान कर ही करता है। यदि वह दुःख मानता तो वह काम करता ही क्यों? चोर चोरी करने में ही

सुख मानता है। रंडीबाज जुआरी और शराबी अपने अपने कार्यों में सुख मानकर ही करते हैं किन्तु देखना यह है कि उनको जिन कामों में सुख मालूम देता है उन कामों में दूसरों को क्या मालूम देता है? इज्जतदार और समझदार व्यक्ति चोरी जुआड़ी आदि कार्यों में महान् दुःख का अनुभव करते हैं। अतः ज्ञानी जन कहते हैं कि जीव! तू जिन पदार्थों में सुख मान रहा है उन में सुख नहीं है। तू दुःख को सुख मान रहा है।

सब कुछ कहने का भावार्थ यह है कि सुख और दुःख को ज्ञानियों की दृष्टि से देखने की कोशीश करो। इतना तो मानो कि तुम्हारी दृष्टि में विपर्यास है। ज्ञानियों को धन्यवाद दो जिन्होंने सुख दुःख का वास्तविक ज्ञान कराया है।

अब इस बात पर विचार किया जाता है कि भगवान्

से आशा पूरी करने की प्रार्थना की गई है वह अपूर्व आशा भगवान् के द्वारा किस प्रकार पूरी होती है भगवान् ने आशा पूरी करने का मार्ग धर्म बताया है। और धर्म का उपदेश पात्र को ध्यान में रख कर दिया गया है। जिसकी जैसी सामर्थ्य हो उसके अनुसार धर्माचरण करे। धीरे धीरे आगे बढ़ता जाय मगर पीछे कदम न हटाये। भगवान् ने जिस धर्म का उपदेश दिया है उसके सम्बन्ध में कहा है—

दान सुशिल तपोयुत भाव चहुं विधि धर्म महा सुख दाता।
मोक्ष करे सुख स्वर्ग भरे नर लोक विषै बहु ऋद्धि मिलाता॥

दारिद दुःख करें चकचूर लहे जीव उत्तम सम्पाति साता ।
तीरथनाथ बखानत है श्रुत धर्म कथा सुनते वहु ज्ञाता ॥

भगवान् ने धर्म के चार भेद बताये हैं। दान शील तप और भाव ये चारों धर्म के भेद और मोक्ष के मार्ग हैं। किसी नगर के यदि एक ही द्वार हो तो लोगों को प्रवेश और निर्गम में बाधा होती है। किन्तु चारों दिशाओं में चार द्वार होतो कठिनाई नहीं होती। इसी प्रकार धर्मरूपी नगर के यदि एक ही द्वार होता तो सब लोग सरलता पूर्वक उस में प्रवेश नहीं कर सकते थे। अतः भगवान् ने चार मार्ग बताये हैं। जैसी जिसकी शक्ति हो तदनुसार मार्ग अपना कर धर्म में प्रवेश कर सकता है।

सब से पहला मार्ग दान बताया गया है। दान को पहला नम्बर इस लिए प्रदान किया गया है कि दुःखी जीवों को इससे कुछ तृप्ति मिले। दान के द्वारा दुःखियों का दुःख मिटाया जाय इसलिए पहले इसका निर्देश किया गया है। आज दान धर्म की कमी देखी जाती है। लोगों में निर्धनता दरिद्रता और अनुदारता आगई है। इसलिए दुःख का कारण बढ़ गया है। विज्ञ जन कहते हैं कि यदि दान के द्वारा एक दूसरे की सहायता की जाय तो दुःख नहीं हो सकता। मगर आज कृपणता का साम्राज्य छाया हुआ है। अपने ही खाने पीने और ऐश आराम की तरफ बहुत अधिक ध्यान है। दीन दुखियों के दुःख दर्द मिटाने की तरफ बहुत कम ध्यान है कृप-णता के कारण दुःखों में वृद्धि हो रही है।

कृपणता के सम्बन्ध में बोलते हुए मुझे बड़ी शर्म अनुभव हो रही है। आज साधुमार्गी समाज में जितनी कृपणता आ रही है उतनी शायद किसी दूसरी समाज में देखने को मिले। यहां राजकोट का इतना बड़ा समाज है यदि चाहे तो धर्मोन्नति के बड़े बड़े काम खोल सकता है। किन्तु देखा यह जाता है कि देने का नाम लिया कि दिल धड़कने लगता है। लोगों को देने का अभ्यास ही नहीं है अतः देने की बात भी नहीं सुन सकते। यदि कोई साधु दान करने के सम्बन्ध में अधिक उपदेश देने लगे तो तुरंत लोग कहने लग जाते हैं कि साधुओं को इस प्रपञ्च में पड़ने की क्या आवश्यकता है। यदि साधु दान देने की बात कहे तो केवल साधुओं को देने की बात ही कहनी चाहिए। अन्य को देने की बात में साधुओं को न पड़ना चाहिए। इस प्रकार कई संकुचित दिमाग के लोग जिन्होंने जैन धर्म के मर्म को नहीं समझा है, कहने लगते है। और दुःख की बात है कि जैन समाज में एक फिरका ऐसा भी है जिसकी मान्यता साधुओं के सिवाय किसी दूसरे दीन हीन दुःखी को कुछ भी देने मे एकान्त पाप होने की है। मान्यता ही नहीं उनका आचरण भी उनकी मान्यता के अनुसार है।

परन्तु शास्त्रों में श्रावक के लिए कहा गया है कि उसके द्वार अभंग होते हैं। दान देने के लिए उसके घर के द्वार सदा खुले रहते हैं। उसमें यह भेद नहीं है कि जैन साधुओं को तो देना और दूसरे साधु या अन्य आवश्यकता वाले लोगों को न देना। इस्लामी मजहब में भी मोहम्मद साहब

ने कहा है कि अपने भाइयों की मदद करो। यदि तुम स्वयं गरीब हो तो अपने सामर्थ्यवान् भाइयों से सहायता ग्रहण करो। और यदि तुम सामर्थ्यवान् हो-सम्पत्ति वाले हो तो अपनी आय में से चालीस प्रतिशत जकात दो। वह जकात एकत्रित करके अपने दुःखी भाइयों की सहायता करो। जिससे कि कोई दुःखी न रहने पाये।

मुसलमानी मजहब में दान के सम्बन्ध में ऐसी बात कही हुई है। मगर आपके सम्बन्ध में ऐसा मालूम देता है मानो आप दान करना बुरा समझते हो। दान या देने की बात ही आपको बुरी लगती है। देने का नाम ही आपको नहीं सुहाता है। कोई दान की अपील करने के लिए खड़ा हुआ कि वह आपको खवीस जैसा जान पड़ने लगता है। यह दशा देखकर बाहर से संस्थाओं के लिए मांगने के हेतु आये हुए लोगों को चुप हो जाना पड़ता है।

जैसे आपके यहां पांजरापोल खुली हुई है वैसे ही घाटकोपर में जीवदया खाता खुला हुआ है। बम्बई के लोगों को दूध पीलाने के लिए जो भैंसे गौरी लोग बाहर से खरीद कर लाते हैं, वे जब दूध देना बंद कर देती हैं तब उनको कसाई खाने ले जाते हैं। बहुत दिनों तक बेचारी भैंसे तबेले में बंध रहती हैं। जब दूध से उतर जाती हैं तब उनको तबेले में से खोलते हैं। बहुत दिनों से तबेले में बंद रहने से जब वे खोली जाती हैं तो बड़ी प्रसन्न होती हैं और कूदने लगती हैं कि आज हम को बाहर की हवा खाने को मिली है। लेकिन

उन बेचारी भैंसों को क्या पता है कि वे क्यों खोली गई हैं! उन भैंसों को कत्ल खाने में ले जाया जाता है। वहां उनके चारों पैर बांध दिए जाते हैं। फिर उनको लाठियों से इस प्रकार पीटते हैं कि उनका चमड़ा ढीला पड़ जाय और अधिक चर्बी दे सके। इसके बाद उनका बूंद बूंद दूध निकाल लिया जाता है। और फिर कत्ल कर दिया जाता है। उनके चमड़े खून मांस और चर्बी का उपयोग अलग अलग कार्यों में किया जाता है। चर्बी का अधिकांश भाग मीलों में कपड़ों पर लगाने के उपयोग में लाया जाता है। मुझे जहां तक पता है एक छोटे कपड़े के मील में भी साल भर में सवा छ सौ मन चर्बी लगती है। अहमदाबाद की मीलों के सम्बन्ध में सुना है कि वहां वर्ष में एक लाख इक्यासी हजार मन चर्बी लग जाती है।

यह चर्बी कहां से आती है? कत्ल खानों से यह चर्बी आती है। मैंने बंबई के उपनगर बांद्रा और कुरला के कत्ल-खानों का हाल सुना है। हाल सुनकर आश्चर्य होता है कि उन दूध पीने वाले भाइयों के पीछे मूक पशुओं की कैसी हत्याएं होती हैं। फिर भी लोगों को विचार नहीं आता। मीलों में जो चर्बी लगती है वह इन दो कत्लखानों से पूरी नहीं हो सकती। अतः बाहर से चर्बी मंगाई जाती है। विदेशों में सुना है कि चर्बी के लिए एक एक मील लम्बे खून के हौज बने हुए हैं।

क्या आप लोग इस नृशंस हत्याकांड को नहीं रोक सकते? क्या इन मारे जाते हुए मूक पशुओं की रक्षा नहीं

कर सकते? घाटकोपर के जीवदया खाते ने कत्लखाने के लिए बेंची जाने वाली भैंसों को बचाने का काम अपने हाथ में लिया है। कसाई खाने के लिए जाती हुई भैंसों को खरीद कर उनको पांजरा पोल में रखा जाता है और इस प्रकार उसकी रक्षा की जाती है। क्या आप इस रक्षा के कार्य में किसी प्रकार का भाग नहीं ले सकते? यदि आप अधिक कुछ न कर सकें तो कम से कम वह दूध तो छोड़ सकते हैं जिसके पीछे नृशंसा हत्याकाण्ड होता है। क्या कोई भाई ऐसा नियम ले सकता है कि मैं बंबई कलकत्ता में दूध न पिऊंगा।

मतलब यह है कि साधु मार्गी समाज में उदारता की कमी है। मोटर नाटक सिनेमा और फैशनेबल सामान खरीदने का खर्चा तो बढ़ा हुआ नजर आता है। मगर परोपकार के कार्यों में खर्च करने में कृपणता देखी जाती है इसलिए ज्ञानी कहते हैं कि दान दो। यदि तुम को शांति चाहिए तो दान दो यह सोचो कि शक्ति रहते हुए मैं दूसरों की सहायता जरूर करुंगा। यदि कुछ कष्ट भी सहना पड़े तो सहन करुंगा। मगर दूसरों की मदद अवश्य करुंगा। यदि आप लोग अपनी शक्ति का व्यय ठीक रास्ते से करें तो आपको दान की महत्ता का पता लग सकता है।

जो उपकारी है उसका प्रत्युपकार करने में कोई विशेष महत्व नहीं है। वह तो साधारण कर्त्तव्य है। किन्तु जिनका आप पर कोई खास उपकार नहीं है उनका यदि भला करो तो विशेषता है। हम साधु लोग यों तो नहीं कह सकते कि अमुक

संख्या को या अमुक कार्य में इतने रुपये दो। क्यों कि ऐसा कहने से रुपयों के हिसाब किताब की हम पर जिम्मेवारी आ जाती है अतः इस प्रपञ्च में हम नहीं पड़ सकते। हम समुच्चय उपदेश दे सकते हैं कि गरीबों या दुःखियों की सहायता करना अच्छा काम है। इस लिए यही कहते हैं कि दान देकर दुःखी पशुओं की सहायता करो। ऐसा कौन मनुष्य होगा जिसका गाय भैंस से तालुक न हो। आप पर उनका उपकार है। अतः फैशन का खर्चा बचा कर उनकी सेवा या सहायता या दया करो तो कोइ विशेष बात नहीं है कठिन काम भी नहीं है। अतः दान धर्म की ओर ध्यान लगाओ।

दूसरा शील धर्म है। इस पर बहुत कहा जा सकता है किन्तु आज अन्य बातें कहनी हैं अतः संकोच कर कहता हूं। आज फैशन शील को खा रही है। उसने शील को दूर भगा दिया है केवल ऊपरी नखरा ही नखरा रह गया है। भीतर पोलंपाल है। अतः ब्रह्मचर्य रक्षा की ओर भी ध्यान लगाओ।

तीसरा तपो धर्म है। तप धर्म की जितनी महिमा जैन समाज में है उतनी विरल ही कहीं हो। शास्त्र में बारह प्रकार के तप बताये गये हैं। उनमें से पहला अनशन तप है। अनशन का मतलब है भोजन न करना। महा भारत में भी कहा है—

तस्मादर्थे च कामे च तपो न. अनशन समम्।

अर्थात् अर्थ काम और मोक्ष प्राप्ति के लिए अनशन के समान कोई दूसरा तप नहीं है। जैन शास्त्र में भी अनशन को प्रथम नम्बर दिया गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विविध धर्म शास्त्रों में अनशन तप का बड़ा महत्व बताया गया है। फिर भी आजकल लोग तप करने से हिचकते हैं। बल्कि कई तो तप से घृणा तक करते हैं। वे कहते हैं कि इस तरह के एक एक दो दो मांस तक के लम्बे तप करने से और भूखों मरने से क्या लाभ है? जिसको तप करना है वे तो करते ही हैं। किन्तु जिन को नहीं करना है वे करनेवालों की टीका करते हैं। मगर तप की टीका करना तप द्वारा सुरक्षित शीलादि गुणोंकी जड़ काटना है।

तप से होने वाले लाभ का अनुभव तपस्या करने वाला व्यक्तिही अनुभव कर सकता है। तप के विषय में यह बात खास ध्यान में रखने की है कि तप की समाप्ति होने पर पारणा और खान पान पर पूरा ध्यान दीया जाना चाहिए। पारणा न बिगड़ना चाहिये। पारणा व बाद में खान पान पूरा ध्यान न देने से रोग होने की संभावना रहती है। जब रोग हो जाता है या कोई मर भी जाता तब लोग तप को बदनाम करने लगते हैं। तप से न तो कोई बीमार होता है और न मरता है। बल्कि रोग हो तो भी तप से मिट जाता है। जैन धर्म तो तप का समर्थक है ही। मगर आज कल अमरिका निवासी भी तप का महत्व समझने लगे हैं। वे भी रोग मिटाने का तप को एक खास साधन मानते हैं। वस्तुतः तप सर्व प्रकार से लाभप्रद है किन्तु धारणा और पारणा पर बहुत ध्यान रखने की जरूरत है।

जो तप के महत्व को समझता है वह उसकी कभी निन्दा नहीं कर सकता। गांधीजी को उनके मित्रों व हितैषियों

ने कहा कि आप वृद्ध हो गये हैं अतः अब तप मत करिये। इस पर गांधीजी ने उत्तर में कहा कि मेरे तप छोड़ने की बात कहना गोया जिन्दगी छोड़ने की बात कहना है। मैं तो उपवास से ही जीता हूं। इस प्रकार गांधीजी तप का समर्थन करते थे। मगर जिन्होंने कभी उम्र में तप नहीं किया वे उसका क्या महत्व समझ सकते हैं। गीता में कहा है—

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥

इस श्लोक पर टीका करते हुए लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने कहा है कि विषयों से निवृत्त होने के लिए अनशन तप करना अनुचित है। यह तो एक प्रकार का हत्याकांड है, आत्मघात है। क्यों कि भूखों मरने पर भी विषयों की वासना तो बनी ही रहती है। वासना को मिटाने का उपाय करना चाहिए। भूखों रहकर रक्त मांस सुखाना एक प्रकार का कसाई पन है।

तिलक ने अनशन तप की इतनी हद्दतक निन्दा क्यों की ? इसका कारण मेरी समझ में यह आता है कि उन्होंने कभी तप नहीं किया। कभी एकादशी व्रत भी किया हो या न किया हो। ऐसी दशा में बिना अनुभव के वे तप का महात्म्य क्या समझ सकते हैं। मगर गांधी ने तप करके अनुभव किया है अतः इसी श्लोक का अर्थ करते हुए लिखते हैं कि विषयों से निवृत्त होने और पांचों इन्द्रियों को काबू में करने ने लिए अनशन तप के बराबर कोई दूसरा साधन नहीं है।

उपर उल्लिखित श्लोक का अर्थ यह है 'निराहार रहने से विषय निवृत हो जाते हैं मगर रस बाकी रह जाता है। वह परमात्मा दर्शन से मिट जाता है।

निराहार का मतलब किसी प्रकार का आहार न करना है। छाछ पीना या धोवन पानी पीना आहार में शामिल है। इनके सहारे किया गया अनशन तप नहीं कहा जा सकता। शास्त्र में तेले के पश्चात् तप में धोवन पानी लेने का निषेध है। केवल गर्म पानी ही लिया जा सकता है।

तप करने से विषय किस प्रकार शान्त हो जाते हैं यह बात एक दाखले से साफ करता हूं। एक सम्पन्न कुटुम्ब था। उसमें तीन ही प्राणी थे। पिता पुत्र और पुत्र वधू। दैवयोग से पुत्र युवावस्था में ही मर गया। पुत्र वधू विधवा हो गई। घर में ससुर और वधू दो ही व्यक्ति रह गये। ससुर ने विचार किया कि पुत्र वधू युवावस्था में विधवा हो गई है अतः शील की रक्षा के लिए इसके सामने मुझे सादगी आदि द्वारा आदर्श उपस्थित करना चाहिए। यदि मैं कर्त्तव्य न निभाऊंगा तो यह कैसे निभायेगी। यह सोचकर श्वसुर ने ऐसी सादगी धारण की कि मानो उसी पर वैधव्य आगया हो।

आजकल लोग अपना कर्त्तव्य तो नहीं पालते मगर बेचारी विधवा बहू या पुत्री को उसका धर्म पालने के लिए मजबूर करते हैं। एक वृद्ध सेठ की स्त्री मर गई और उसकी बेटी भी विधवा हो गई। सेठ ने दूसरी शादी करली और इस

प्रकार आचरण किया कि उनको देखकर उनकी बेटी भी दुराचारिणी बन गई।

मगर उस श्वसुर ने वधू को विधवा देखकर अपना आचरण इतना पवित्र निर्मल और सादा बना लिया कि पुत्र वधू भी वैसा ही आचरण करने लगी। वह भी स्वसुर की तरह सादा खान पान और सादा वस्त्र पहनने लगी। उसे काम वासना का खयाल तक न आता था।

एक बार पुत्र वधू के पीयर में किसी की शादी थी। उसको विवाह में शामिल होने के लिए लेने वाले आदमी आया। श्वसुर ने बहुतेरा समझाया कि विवाह की धाम धूम और रागरंग में इसको मत ले जाओ। मगर अत्याग्रह के कारण बहू को भेज दिया बहू अपने पियर गई। विवाह के अवसर पर कैसी धाम धूम होती है और कैसा खानपान होता है यह आप लोगों से छिपी हुई बात नहीं है। उस धामधूम को देखकर और वैसा गरिष्ठ खान पान करके शील धर्म की रक्षा करना साधरण व्यक्ति के लिए कितना मुश्किल काम है।

बहू ने यह सब देखा और खान पान पर भी उसका अंकुश न रहा। अतः उसका मन बदल गया। उसके श्वसुर ने उसको यह बात समझा रखी थी कि बेटी! यदि कभी तेरे से शील न पले तो सत्य को मत छोड़ना। क्योंकि सत्य और शील का जोड़ा है। जो भावना मन में आवे उसे मेरे सामने

प्रकट कर देना। किन्तु छिपाना मत'। श्वसुर की यह शिक्षा उसे याद थी। अतः घर आकर एक पत्र लिखकर अपनी इच्छा श्वसुर को दर्शादी कि मेरा मन अब काबू में नहीं रहता है अतः मेरे योग्य पति ढूंढ दीजिये और उसके साथ मेरा पुनर्विवाह कर दीजिये। मैं गुप्त पाप सेवन नहीं करना चाहती अतः पति की तलाश कर दीजिये।

आज यदि कोई बहू इस प्रकार का पत्र अपने श्वसुर को लिख दे तो श्वसुर जूता मारने के लिये उतारू हो जायगा। स्वयं चाहे कितना ही आचारण भ्रष्ट हो मगर बहू की ऐसी गुस्ताखी सहन नहीं कर सकता। मगर वह श्वसुर ऐसा न था। वह समझदार था तथा दूसरे के कष्टों को महसूस करने वाला था। अतः बहू का स्पष्ट भाव दर्शक पत्र पाकर बहुत प्रसन्न हुआ। कम से कम, बहू का मन शीयल पालने से विचलित हो गया है मगर सत्य पर अभी तक दृढ़ है इस बात पर वह बहुत प्रसन्न था। यदि सत्य बचा हुआ है तो शील भी बच जायगा। उसके मन में दृढ़ विश्वास था कि—

सच्चं खलु भगवओ

सत्य खरेखर भगवान् है। बहू ने सत्य नहीं छोड़ा है और अपने मनोभावों को खुले शब्दों में प्रकट कर दिया है, यह कम बात नहीं है।

श्वसुर ने उत्तर में लिख दिया कि बहू तुम धन्य हो जो सत्य पर कायम हो। यदि अन्य बहू होती तो अपने मनो

भावों को छिपाती और गुप्त पाप सेवन का आश्रय लेती। मैं आज से तुम्हारी इच्छा पूरी करने के काम में लगता हूं। मुझे तभी चैन पड़ेगी जब तुम्हारी इच्छा पूरी हो जायगी।

वहू को पत्र लिखकर श्वसुर विचार करने लगा कि मेरे कुल का धर्म, मेरे कुल की लाज और मर्यादा तथा मेरी और मेरी वधू की लाज व मर्यादा किस प्रकार रहे। वहू का इसमें कोई दोष नहीं है। दोष हमारी सामाजिक व्यवस्था का है। विधवाओं के लिए कैसा वातावरण चाहिये तथा उनका खान पान रहन सहन और जीवन यापन का तरीका कैसा चाहिये इस बात पर समाज गौर नहीं करती है। सब के लिये समान वातावरण रहे और फिर शील की रक्षा की आशा करना कठिन काम है। समाज के दोष के कारण वहू में शैतान प्रवेश कर गया है। वह शैतान जब तक उसके मन में से न निकले तब तक काम नहीं बन सकता। अतः स्वयं कष्ट सहन करके भी वहू का शैतान निकालना चाहिए। शास्त्र में कहा हुआ है कि अनशन तप करने से यह काम रूपी शैतान शान्त हो जाता है अतः मुझे इसी उपाय की अजमायश करनी चाहिये।

' इस प्रकार विचार करके श्वसुर अनशन तप ग्रहण करके दूकान पर बैठ गया। दासी को पत्र दे कर मौखिक कहला दिया कि मैं जिस काम में हाथ डालता हूं उसे पूरा किये-विना चैन नहीं लेता हूं। मैं भोजन भी तब करूंगा जब

कार्य पूरा हो जायगा। बहू भोजन के लिए मेरी प्रतिक्षा न करे। वह स्वयं भोजन करले।

श्वसुर ने यह बात कहला दी। मगर बहू के भी यह नियम था कि वह श्वसुर को भोजन कराये बिना स्वयं भोजन न करती थी। कहावत है—

मांटी पेला बइरो खाय, तिको जमारो एलो जाय।

यद्यपि यह कहावत पति पर लागू होती है। मगर वह बहू अपने श्वसुर को जीमाये बिना न जीमती थी। उनका इतना अदब रखती थी और सेवा करती थी।

दासी के द्वारा श्वसुर का पत्र पाकर बहू बहुत प्रसन्न हुई। मन में मनसूबे बांधने लगी कि अब क्या है, अब तो श्वसुर मेरे लिए नया पति ढूंढ लायेंगे। अच्छा हुआ जो यह बात मैंने मन में छिपाकर नहीं रक्खी। नहीं तो, न मालूम गुप्त पाप सेवन का अवसर आ जाता, जिससे मैं और श्वसुर दोनों बदनाम होते। अब श्वसुर स्वयं दलाल बनकर मेरे लिए वर ढूंढ रहे हैं। मैं स्वयं रूपवती और यौवन सम्पन्न हूं। तथा धन की भी कमी नहीं है। कौन युवक मुझे व मेरे घर को पसन्द न करेगा!

बहू अच्छे वस्त्राभूषण पहिन कर इत्र फूलेल लगाकर नये पति के आगमन की प्रतीक्षा में बैठी है, मेरे श्वसुर मेरे लिए पति लेकर आही रहे होंगे। भोजन के वक्त दासी को कहा

कि श्वसुर जी को भोजन करने के लिये बुला ला। दासी गई मगर श्वसुर ने कह दिया कि मैं काम सिद्ध हुए बिना भोजन न करूंगा। यह बात मैं पहले कह चुका हूं। वहू से कह देना कि मेरा इन्तजार न करे वह भोजन कर ले।

अपने नियम में बंधी होने से वहू ने भी भोजन नहीं किया। शाम को वहू के मन में विचार आया कि मैंने बहुत जल्दी की है। चंचलता के वश होकर दागिने पहन लिए हैं। अभी इनको उतार देना ही अच्छा है। इस तरह विचार कर सब श्रृङ्गार व दागिनें उतार डाले। प्रातःकाल वहू ने पारणे के लिये भोजन बनाया और श्वसुर को बुलावा भेजा। मगर श्वसुर ने यही बात कहला दी कि मैं कार्य सिद्ध हुए बिना भोजन नहीं करूंगा। मेरे कारण वहू ने भी भोजन नहीं किया है यह दुःख की बात है। वह भोजन कर ले।

इस प्रकार दूसरा दिन भी दोनों का निराहार बीत गया। तब वहू के मन में विचार आया कि मैंने यह कैसा नीच विचार किया है कि जिसके कारण पूरे दो दिनों से श्वसुर भूखे हैं। श्वसुर को धन्य है जो मेरी नीच इच्छा पूरी करने के प्रयत्न में लगे हुए हैं।

तीसरे दिन फिर पारणा करने के लिये वहू ने रसोई बनाई और श्वसुर को बुलावा भेजकर कहलाया कि अब मुझ से भूखा नहीं रहा जाता है। कृपा करके आप भोजन कर लीजिये। मगर श्वसुर का उत्तर निश्चित था कि काम हुए बिना भोजन न करूंगा।

तीसरे दिन की रात में वहू की विषयेच्छा एकदम शांत हो चुकी थी। वह विचारने लगी कि मैंने यह क्या मूर्खता की है। श्वसुर क्यों तीन दिनों से भोजन नहीं कर रहे हैं, यह बात अब मेरी समझ में आ रही है! जो मेरी विषय वासना पूरी करे उसी को अपना पति बनाना चाहिये।

चौथे दिन प्रातः काल वहू ने फिर श्वसुर को बुलाने वास्ते दासी को भेजा। उनका वही उत्तर था कि अभी काम पूरा नहीं हुआ है। वहू ने पुनः दासी को भेजा कि उनसे कहना कि एक बार घर आकर मुझसे मिल लें।

श्वसुर घर आये। वहू पैरों पड़कर कहने लगी कि मुझे क्षमा करना। मुझे अपने नीच विचारों पर अफसोस है। आपकी मैं बहुत ऋणि हूं जो आपने मुझे अपने धर्म से बचा लिया है। आपके जैसा ससुर मिलना कठिन है। मेरा कार्य पूरा हो चुका है। अब आप भोजन कर लीजिये।

श्वसुर ने कहा वहू! अभी तुम भूखी हो अतः ऐसा कह रही हो। जब पेट में रोटियां पड़ जायंगी तब वही बात फिर जाग्रत हो जायगी। मैं बूढ़ा आदमी हूं, यदि फिर तुम्हारा मन बिगड़ गया तो मैं क्या करूंगा। अतः अच्छी तरह विचार कर लो। फिर जैसा जँचे वैसा निश्चय करना।

वहू ने कहा—पूज्य श्वसुर जी! मैंने अच्छी तरह सोच विचार कर निश्चय कर लिया है कि अब मैं पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत पालूंगी। कदाचित् मन में बुरा विचार पैदा हो जायगा तो

उसे मिटाने की औषधि मुझे मिल चुकी है। आपने इन तीनों में काम दिनों में काम को जीतने की अचूक औषधि मुझे बता दी है। वक्त जरूरत पर इस दवा से मैं काम लिया करूंगी। जिस अनशन के प्रताप से मेरे मन का शैतान निकलकर भाग गया है उसी अनशन को अब मैं अपना पति बनाती हूं। दो तीन उपवास किये कि मन का विकार अपने आप शांत हो जायगा।

श्वसुर बहू का निश्चय सुनकर कहने लगे कि तुमको धन्य है और तप को भी धन्य है। मेरी और मेरे कुल की लाज तप ने रख ली है।

कहने का सारांश यह है कि तिलक ने कभी उपवास न किये होंगे अतः उसका महत्त्व न समझ सके। किन्तु गांधी जी ने अपने जीवन में कई बार लम्बे उपवास किये हैं अतः वे उनका महत्त्व समझ सके हैं। एक बार गांधी जी ने स्वराज्य के सिलसिले में भी इक्कीस उपवास किये थे। जिनके उपलक्ष्य में देश भर के लोगों ने करोड़ों उपवास किये थे।

तप से शील धर्म की रक्षा होती है। हजारों विधवा स्त्रियों के ब्रह्मचर्य की रक्षा अनशन तप के प्रभाव से ही होती है। तपस्या के धारणा और पारणा के दिन खास ध्यान रखना चाहिये। उपवास में 'चउत्थ भत्त' अर्थात् चार भत्त (खुराक) का त्याग किया जाता है। जिसका मतलब यह होता है कि उपवास के पहले दिन भी एक समय भोजन करना और उपवास के दूसरे दिन भी एक बार भोजन करना। यह न होना

चाहिये कि कल उपवास है। अतः आज खूब डट के खालें अथवा पिछली रात को उठकर दूध पी लें। और फिर उपवास ग्रहण कर ले।

कई लोग उपवास क्या करते हैं, उपवास का परिहास करते हैं। उपवास के दिन सदा की अपेक्षा और अधिक खा लेते हैं। कहा है—

गिरी और छुहारे खात किशमिस और बदाम चाय
सांटे और सिघाड़े से होत दिल राजी है।
गूंद गिरी कलाकंद अरवी और सकरकंद
कुंदे के पेड़े खात, लोटें बड़ी गादी है॥
खरबूजा तरबूजा और आम जामू झकोर
सिंघाड़ें के सीरे से भूख को भगा दी है।
कहत नारायण करत दूनी हानि,
कहने को एकादशी पर द्वादशी की दादी है॥

तप का बहुत महत्त्व है। मगर आज इतना ही कहता हूं कि—

तप बडो संसार में जीव उज्वल थावे रे
कर्म रूपी इन्धन जले शिवपुर नर सिधावे रे ॥तप.॥

जब तक संसार में तप की प्रतिष्ठा है तब तक संसार की लाज है। जब तप न रह जायगा तब संसार की लाज भी

न रह जायगी। तप के प्रभाव से सूर्य और चन्द्रमा अपना प्रकाश फैला रहे हैं। जब तप न होगा सूर्य सारी पृथ्वी को अपने तेज से तपा देगा। चन्द्र अत्यन्त शीतलता प्रदान कर लोगों को ठंडा कर देगा और पृथ्वी आधार देना छोड़ देगी। मनुष्यों के तप के कारण प्रकृति शांत है। वेद पुरान और कुरान आदि सब धर्म शास्त्रों ने तप की महिमा गाई है। यह बात दूसरी है कि किसी सम्प्रदाय की तपो विधि दूसरी सम्प्रदाय को मान्य या पसंद न हो। किन्तु तप की प्रशंसा सब कोई करते हैं। सब ने तप के आगे सिर झुकाया है।

चौथा भाव धर्म है। यह धर्म प्रथम वर्णित तीनों-दान शील और तप को पुष्ट करने वाला है। भाव पूर्वक दान हो, भाव पूर्वक शील हो और भाव पूर्वक ही तप हो तब इनकी सार्थकता है वैसे अकेला भाव भी स्वतंत्र रूप से लाभ दायक है। कृष्ण और श्रेणिक किसी प्रकार का त्याग प्रत्याख्यान न कर सके थे। किन्तु शुभ भावना के कारण वे तीर्थंकर गोत्र बांध सके थे।

आज हम लोगों के भाव कैसे हैं, इस पर ध्यान लगावें कृष्ण को कोई किसी भी रूप में मानते हों मगर उनकी महापुरुषता में किसी को सन्देह नहीं है। कृष्ण की भावना को समझ कर गृहस्थ में रहते हुए भी आत्म कल्याण किया जा सकता है।

गज सुकुमार मुनि को मोक्ष प्राप्त हो चुका है, यह बात कृष्ण को अभी तक मालूम नहीं हुई थी अतः दूसरे दिन सपरि-

वार और ससैन्य उनके दर्शनार्थ निकले। वे हाथी के हौदे पर विराजमान थे। उन पर छत्र चंवर हो रहे थे। वे द्वारिका के आम रास्ते पर होकर जा रहे थे। बड़े बड़े लोग उनसे मुजरा कर रहे थे। ऐसे ठाठ से जाते हुए भी उनकी दृष्टि किस तरफ रहती थी यह समझने की बात है। उनकी दृष्टि एक पुरुष पर पड़ी। वह बहुत वृद्ध था। जरा से उसका शरीर जर्जरित हो रहा था। हाथ पैर धूज रहे थे। हड्डी हड्डी निकल चुकी थी। मांस सूख चुका था।

मुख से टपके लार कान दोऊ बहरा पाड़िया,
नहीं साता को तार हाड़ सब ही खड़ खड़िया।
घर में सके न बोल पुत्र को खारो लागे,
कहे जैनी जिनदास जरा में ये दुःख जागे॥
घटी आंख की जोत छूत सब घर का करता,
देखत आवे सूग डोकरा क्यों नहीं मरता।
जीहा करे फजीत रीत लोकां में खोवे,
कहे जैनी जिनदास जरा में ये दुख जागे॥

बूढ़ापे में यह सब बात होती है। ऐसा ही एक बूढ़ा व्यक्ति हाथी पर बैठे हुए कृष्ण की नजर में आया क्या वहां द्वारिका में नौजवान और सम्पत्तिशाली व्यक्ति न थे जिससे कृष्ण की नजर इस बूढ़े पर पड़ी है? ऐसी बात नहीं है। द्वारिका में सब प्रकार के मनुष्य थे। किन्तु जैसे डाक्टरों की

नजर बीमारों की तरफ रहती है और नाई की नजर दाढ़ी की तरफ रहती है उसी प्रकार कृष्ण की नजर दीन दुःखियों की तरफ रहा करती थी।

वह वृद्ध पुरुष लकड़ी के सहारे चलते हुए घर के बाहर रखी हुई ईटों में से एक एक ईंट उठाकर घर के अंदर रख रहा था। कृष्ण को उसकी यह दशा देख कर दया आगई। उनका दिल बूढे के प्रति करुणार्द्र हो गया। 'मेरे नगर में ऐसे दुखिया लोग भी रहते हैं' जानकर दुःखी होने लगे।

दूसरे के दर्द को देखकर अपने में वैसा दुःख होने लगना अनुकम्पा है। अपने समान दूसरे के दुःख को देखना महान् गुण है।

आत्मवत् सर्व भूतेषु यः पश्यति स पण्डितः।

जो दूसरे को अपनी आत्मा के समान देखता है वह पण्डित है।

कृष्ण ने सोचा कि या तो इस बूढे के घर के लोग इस से घृणा करते हैं या स्वयं आराम में पड़े होंगे और इस बूढे से काम ले रहे हैं। कृष्ण ने महावत से कहा कि हाथी को ईंटों के पास ले चल। महावत हाथी को ईंटों के पास ले आया। हाथी पर बैठे बैठे ही कृष्ण ने एक ईंट उठाली और नीचे उतर कर उसके घर में ईंट पहुं-चादी। जब कृष्ण स्वयं ईंट उठाने लगे तब दूसरे लोग कैसे

रुक सकते थे ? सब का यही विचार था कि बड़ा आदमी जो काम करे, हमें भी करना चाहिये ।

महाजनो येन गतः स पन्थाः ।

बड़ा आदमी जिस मार्ग से गमन करे वही सच्चा मार्ग है । तर्क वितर्क में न पड़ कर श्रेष्ठ जनाचरित मार्ग पर गमन करना अच्छा है ।

कृष्ण की सेना के सब सैनिकों ने भी एक एक ईंट उठाकर बूढे के घर में रख दी । इस प्रकार थोडी सी देर में सारी ईंटे घर में रखदी गईं । बूढा प्रसन्न होकर एक तरफ बैठ गया । कृष्ण भी प्रसन्न होकर हाथी पर सवार हो गये । एक प्रश्न उपस्थित होता है कि कृष्ण ने स्वयं ईंट क्यों उठाई ? हुक्म देकर क्यों नहीं उसकी ईंटे उठवा दी ? अथवा उसके घर के लोगों को बुला कर डांटा क्यों नहीं कि तुम लोग इतने वृद्ध से काम लेते हो ? मगर मित्रों ! सेवा का कार्य हुक्म से नहीं हुआ करता । हुक्म में उतना प्रेम मिश्रित नहीं होता । जहां सच्चा भाव होता है वहां हुक्म काम नहीं आता । जो कार्य अच्छा समझ लिया जाता है उसे स्वयं ही किया जाता है । हुक्म देने जितनी प्रतिष्ठा करने का उसमें धीरज नहीं होता ।

आप लोग अपने ही ऐश आराम में मस्त हैं। गरीबों की ओर ध्यान नहीं लगाते। आप सोचते हैं कि हमारे पास पूंजी है, हमें क्या करना है। आपके पास पूंजी है इसलिए आपकी जवाबदारी बढ़ जाती है। आप अपनी जवाबदारी नहीं समझ रहे हैं। जब जवाब देना पड़ेगा तब मुश्किल हो जायगा। कहा है—

करत प्रपंच इन पंचन के वस पर्यो
परदार रत भयो अंत है बुराई को।
पर धन हरे पर जीवन की करे घात
मद मांस भखे लवलेश न भलाई को।
होयगो हिसाब तब मुख से न आवे ज्वाव
सुन्दर कहत लेखो लेगो राई राई को।
यहां तो किया विलास जमकीन तौहू भास
वहां तो नहीं है कछू राज पोपा बाई को।

कृष्ण की ईंट उठाने की बात का लोगों पर कैसा अच्छा प्रभाव पड़ा था? आज दिन तक उस बात का कितना असर है? यहां के ठाकुर साहिब यदि आपके बूढे बाप की ईंट उठालें तो आप कितने शर्मिन्दे होंगे? इसी प्रकार उस बूढे के घर वालों पर भी असर पड़ा होगा। इसी प्रकार यदि कृष्ण हुक्म

के द्वारा ईंटें उठवा देते तो शास्त्र में इस बात का कौन जिक्र करता ! और आज दिन तक यह अच्छा उदाहरण हम लोगों तक कैसे पहूंच पाता ? इस पुण्य कथा से आज तक न मालूम कितने लोगों का भला हुआ होगा और भविष्य में होगा ?

आज न कृष्ण है और न वह बूढ़ा है जिसकी ईंट उठाई गई थी। किन्तु उनकी याद अवशिष्ट है। अच्छे कार्यों का असर बहुत स्थायी होता है। इसीलिए हम उनके इस प्रकार गुण गाते हैं:—

याद हम करते हैं जी उन सत्पुरुषों की बात
श्रीकृष्ण ने ईंट उठाई द्वारका दरम्यान ।
वृद्ध पुरुष की दया जो कीनी शास्त्र के दरम्यान । याद० ।

वर्तमान जमाने को देखकर यह बात याद करके हृदय प्रसन्न होता है कि हे प्रभो ! तुम्हारे शासन में कैसे कैसे दयालु पुरुष हो गये हैं। अंधेरे को देखकर ही प्रकाश की याद आती है। इसी तरह वर्तमान दूषित वातावरण को देखकर उस जमाने की याद आती है। भारत की दशा फिर भी कुछ अच्छी कही जा सकती है। यहां कम से कम लोग अपने बाप को कुछ मानते हैं। किन्तु विलायत की दशा बहुत बदतर है। वहां यदि बाप आ जाता है तो भी घर में न ठहरा कर होटल में ठहराया जाता है और बिल चुका दिया जाता है।

मुझे कहना पड़ता है कि आज भारत देश के लोगों के दिलों में वह प्रेम भाव और दयाभाव नहीं रह गया है जो

पहले के जमाने में था। दया की भिक्षा मांगने पर भी लोग दया नहीं करते दिखाई देते हैं। जिस प्रकार श्रीकृष्ण ने हाथी पर से उतर कर बूढ़े की दया की थी उसी प्रकार आप लोग भी मान रूपी हाथी से उतर कर गरीब और दुःखियों की सेवा शुद्ध भावना पूर्वक करिये। सेवा या दया आदि करना अच्छा है। मगर भावना की शुद्धि के साथ की हुई सेवा का विशेष महत्व है। निष्काम भावना से सहायता करिये। यह भाव धर्म की वात हुई। दान, शील, तप और भाव ये चारों धर्म के पाये हैं। इन चारों में से किसी एक पाये को गिराना धर्म के पाये को गिराना धर्म को गिराना है। जो धर्म के इन चारों पायों की रक्षा करता है वह सदा अपना कल्याण साधता है।

१६-८-३६
राजकोट

१६

सतोगुण का चमत्कार

जय जय जगत शिरोमणि, हूं सेवक ने तू धनी,
अब तौ सूं गाड बनी, प्रभु आशा पूरो हम तणी।
मुझ म्हेर करो चन्द्र प्रभु, जग जीवन अंतर यामी;
भव दुःख हरो, सुनिये अरज हमारी त्रिभुवन स्वामी ॥

प्रार्थना—

यह भगवान् चन्द्रप्रभु स्वामी की प्रार्थना है। हमें यह विचारना चाहिये कि भक्त किस रूप में भगवान् को देखता है। भक्त भगवान् को जगत् शिरोमणि के रूप में देखता है। वह भगवान् को इस अखिल विश्व का शिरोमणि मानकर उन की जय जय कार पुकारता है। हे जगत् के शिरोमणि! तेरा जय जय कार हो।

यह बात कहने में जितनी सरल है उतनी ही उसके पीछे जवाब दारी रही हुई है। विचार करने पर ज्ञात होता है कि भगवान् को जगत् का नेता मानकर उनकी जयकार बोलने में बड़ा तत्व समाया हुआ है। भगवान् को जगत् सिरोमणि मानकर उनकी प्रार्थना करने वाले कम लोग निकलेंगे। महंगा सौदा कम लोग खरीदते हैं। मैं आपके समक्ष इस विषय पर कुछ विचार उपस्थित करता हूं। आशा है उन पर मनन करके आप अपना आत्म हित साधेंगे।

व्यवहार में देखा जाता कि राजा की जय बोली जाती है। यदि राजा धर्म निष्ट है तो उसकी जय में सारी प्रजा की जय समाविष्ट हो जाती है। किन्तु राजा की जय बोलने वाले का प्रजा के प्रति क्या कर्त्तव्य है यह देखना चाहिये। राजभक्त कर्मचारी मासिक दस रूपये वेतन के पीछे अपना सर तक कटवा डालता है। यदि कोई सैनिक वेतन लेता रहे और समय आने पर घर में घुस जाय तो उसे कायर कहा जायगा या वीर? ऐसा कर्त्तय च्युत व्यक्ति यदि राजा की जय बोलता रहता है तो वह जगत् में निन्दा का पात्र गिना जाता है। सच्ची जय कर्त्तव्य पालन में रही हुई है।

भगवान् को सारे जगत् का मुखिया मानकर उनकी प्रार्थना करने वाले भक्त का संसार में रहे हुए प्राणियों के साथ मैत्री का वर्ताव होना चाहिये। भगवान् राजा से बड़े हैं। एक राजा की जय बोलने में भी उसके प्रति अपनी कठिन सेवाएं समर्पित करनी पड़ती हैं। तब जगत् शिरोमणि परमात्मा की

जय कार बोलने पर तो अधिक कर्त्तव्य निष्ठाकी जरुरत होती है। आप उसकी जय के लिए क्या त्याग करने को तय्यार हैं। किस वस्तु की कुर्बानी करने की आपकी तय्यारी है। यदि आप केवल जबानी जमा खर्च करना चाहते हैं और उसके लिए किसी प्रकार का त्याग करने के लिए तय्यार नहीं हैं तो यह दिखावटी भक्ति है। इस प्रकार की जयकार का आध्यात्मिक अर्थ में कोई मूल्य नहीं है।

परमात्मा की जय बोलने के लिए अपना सर्वस्व तक छोड़ देना पड़ता है।

हरि नो मारग छे शूरा नो, कायर नुं काम जो ने।

प्रभुपथ शूर व्यक्तियों के लिए है। कायरों की वहां गति नहीं है। सारांश इतना ही है कि प्रभुकी जय बोलने के साथ २ संसार में स्थित प्राणियों के साथ आदर्श व्यवहार होना चाहिये। किसी भी प्राणी कोकष्ट पहुंचाये बिना अपना जीवन व्यवहार चलाने की चेष्टा होनी चाहिये। शुद्ध व्यवहार चलाने के लिए बड़े त्याग की आवश्यकता होती है। जो वीर पुरुष अपने प्रति कठोर और जगत् के प्रति नम्र रह सकता है वह सच्चा भक्त है। वही सनाथ भी है।

अनाथी मुनि की अनाथता का जो चरित्र आपको सुनाया जाता है वह आप में कायरता लाने के लिए नहीं सुनाया जाता अपितु वीरता सीखाने के लिए। जिस प्रकार सैनिक राजा की जय कराने के लिए अपना मस्तक तक कटवा

डालता है उसी प्रकार सच्चा भक्त भगवान् की जय के लिए सर्वस्व त्याग कर सकता है। केवल शरीर मोह ही नहीं छोड़ता किन्तु कीर्ति का मोह भी छोड़ सकता है।

भक्त कहता है—अनादि काल से भ्रमण करते करते यह शुभ अवसर प्राप्त हुआ है जब परमात्मा की जय बोलने योग्य सामग्री प्राप्त हुई। मनुष्य जन्म के बिना भगवान् की जय नहीं बोली जा सकती। यह मानव जन्म देव दुर्लभ है। बड़े पुण्य के प्रताप से यह मानव देह प्राप्त हुई है। उसका उपयोग करने में बड़े विवेक की आवश्यकता है। देव और इन्द्र भी मानव देह के लिए लालायित रहते हैं। मानव देह से प्रभु की भेंट हो सकती है। देव और इन्द्र भी देवयोनि में रहकर प्रभु का साक्षात्कार नहीं कर सकते। प्रभुमय बनने के लिए उनको भी मनुष्य देह धारण करनी पड़ती है। मानव देह बड़ा कीमती है। ऐसा होते हुए भी मानव देह पाकर जो परमात्मा का जय जयकार नहीं बोलता उसने मनुष्य जन्म धारण करके भी क्या लाभ कमाया? उसका जन्म व्यर्थ बीतता है। आध्यात्मिक कवि आनन्दघनजी ने कहा है—

चन्द्र प्रभु मुख चन्द्र सखी मोहे देखन दे।
उपशम रस नो कन्द सखी मोहे देखन दे।
गत कलिमल दुःख द्वन्द सखी० ॥
सूक्ष्म निगोद न देखियो सखि ! बादर अति ही विशेष।
पुढवी आउ न लेखियो सखि ! तेऊ वाउ न लेष ॥ सखी०
वनस्पति अतिघणा दीठा सखी दीठो नहीं दीदार।

वीती चौरेन्द्रिय जल लिहा सखी गत सव हिय धार ॥ सखी०
सुर तिर नरय निवास मां सखी ! मनुष्य अनार्य नी साथ ।
अप्रज्जतां प्रतिपालता सखि ! चतुरन चढियो हाथ ॥ सखी०.

इस पद्य का विस्तार करने के लिए समय अपेक्षित है। संक्षेप में इतना कहना चाहता हूं कि चाहे किसी का विश्वास जैन शास्त्रों पर हो चाहे विकासवाद पर, देखना यह है कि यह जीव आत्मा कहां कहां से किस किस प्रकार विकास करता हुआ इस अवस्था तक पहुंचा है। निगोद अवस्था से विकास करता हुआ जीव मनुष्योनि तक पहुंच गया है, इस बात पर गौर करिये। इस प्रकार एकाग्र होकर विचार करने से जीव को यह प्रतीति होने लगती है कि मैं अनादि काल से हूं और साथ साथ अनन्त भी। मैंने अनेक योनियां धारण की मगर चन्द्र प्रभु के दर्शन न हुए। सूक्ष्म एकेन्द्रिय के भव में जहां चन्द्रप्रभु के आत्म प्रदेश रहे हुए हैं वहां भी रह आया हूं किन्तु अज्ञान के कारण उनसे भेंट न कर सका उनसे साक्षात्कार न हो सका। बादर योनियों में भी प्रभो ! तेरे दर्शन न कर सका।

कहने का मतलब यह है कि मनुष्य योनि के सिवा किसी भी योनि में परमात्मा से साक्षात्कार नहीं हो सकता। आप लोगों को मानव देह प्राप्त हुआ है। उसके साथ आर्य-देश, उच्चकुल, सुन्दर संस्कार और पुष्ट स्वास्थ्य मिला हुआ है। यह जो समृद्धि मिली हुई है वह भी मनुष्य जन्म के साथ शोभा पाती है। मनुष्य जन्म के बिना ऋद्धि अच्छी

नहीं लगती। यदि किसी बंदर के गले में हीरे का कण्ठा डाल दिया जाय तो वह उसके महत्व को क्या समझ सकता है। वह हीरे के कण्ठे को चाखेगा और स्वाद न लगने पर उतार कर फेंक देगा। किन्तु क्या आप लोग हीरे के कण्ठे को फेंक देंगे? आप मनुष्य हैं और हीरे का मूल्य जानते हैं अतः फेंकने के बजाय सुरक्षित रखने का यत्न करेंगे।

आपको हीरे से बढ़कर यह मानवदेह रूप महान् हीरा प्राप्त हुआ है। क्या इस मूल्यवान् हीरे को पत्थर के हीरे की पहचान के पीछे गुमा देंगे? अथवा आपके भीतर जो हीरा छिपा पड़ा है उसकी पहचान का प्रयत्न करेंगे? जो मनुष्य अभ्यन्तर हीरे को पहचानता है वही परमात्मा को जगत् शिरोमणि कह कर उसकी प्रार्थना करने का अधिकारी है। ऐसा मनुष्य अपना जीवन सफल बनाता है।

आपके मन में यह जिज्ञासा होना स्वाभाविक है कि अपने भीतर रहे हुए हीरे को कैसे पहचाना जाय। उसके लिए क्या करना चाहिये? क्या आज ही मास खमण व्रत लेकर बैठ जाय अथवा अन्य कुछ करें? इसका उत्तर यह है कि मैं वैसे तो अनशन तप का समर्थक हूं किन्तु वर्तमान काल में उस पर अधिक भार न देकर जिस बात पर भार देना आवश्यक है उस पर भार देना चाहता हूं यदि आप तपस्या करें तो अवश्य कीजिये। भगवान् महावीर ने भी कठोर तप किया था। अतः उनके शासन में सदा तप होता आ रहा है और वर्तमान में भी हो रहा है। किन्तु केवल तप करके ही

महावीर न वनना चाहो। अन्य आवश्यक वातों पर भी ध्यान दो। जिस प्रकार वस्त्र की मील में छोटीसी कील की भी जरुरत रहती है। और वड़े वायलर की भी। उसी प्रकार महावीर के शासन काल में तप भी आवश्यक है और साथ साथ अन्य काम भी। यदि आप केवल तप को लेकर ही वैठ जायेंगे तो अन्य काम कौन करेगा! अन्य काम भी महावीर के शासन में रहने वाले व्यक्तियों को ही करने हैं। वे अन्य काम दान शील और भावना है। इन से तप तेजस्वी और आभ्यन्तर वन जाता है। चाहे तप से, चाहे दान शील और भाव से किन्तु चन्द्र प्रभु की भेंट अवश्य कीजिये। यदि इस मानव देह में भेंट न करेंगे? आपने महान् समुद्र पार कर लिया है। अव तीर पर आकर क्या रुक गये हैं। पार उतरने के लिए शीघ्रता कीजिये।

जोधपुर में वच्छराजजी सिंघी रहते थे। उनका जमाना वड़ा अच्छा था। वे एक वार रघुनाथजी महाराज के दर्शनार्थ गये। रघुनाथजी महाराज ने उनसे पूछा कि कभी कुछ धर्म ध्यान भी करते हो? सिंघीजी ने उत्तर दिया कि परभव में बहुत कुछ करके आये हैं, उसका मीठा फल अभी भोग रहे हैं। अव और कुछ करने की क्या जरुरत है। उच्च सिंघी खानदान में जन्म हुआ है, वड़ी जागीरी मिली हुई है, हुकुमत हाथ में है, पाव में पहनने को सोना मिला हुआ है और रहने को हवेली। विशाल कुटुम्ब और नौकर चाकर प्राप्त हैं। अव धर्म ध्यान करके क्या लेना है। रघुनाथजी महाराजने कहा— सिंघीजी यह तो ठीक है कि आप को परभव की करणी से

यह सुन्दर सामग्री मिली हुई है। किन्तु आगे के भव में यदि श्वानयोनि मिल गई तो क्या ये कुटम्बी जन आपको आपकी हवेली में रहने देंगे? आप भविष्य की खर्ची के लिए कुछ प्रयत्न करते नहीं हैं अतः कुत्ते की योनि अथवा अन्य कोई निकृष्ट योनि मिली तो वैसी दशा में आपके ये कुटुम्बी जन लकड़ी मार कर आपको हवेली से बाहर निकाल देंगे। सिंघीजी ने मुनि महाराज की कटुक सत्यवाणी को सविनय स्वीकार करके सिरपर चढ़ाई और भविष्य के लिए खर्ची जुटाने का संकल्प कर लिया।

इसी प्रकार मित्रो! मैं भी आप लोगों से कहता हूं कि आप को यह सम्पत्ति मिली है, त्रिलोक के राज्य से भी बढ़कर मूल्यवान् यह मानव शरीर प्राप्त हुआ है। इसके द्वारा परमात्मा का जय जय कार करिये। ज्ञानी इस बात को जानते हैं अतः कहते हैं कि हे सखे! मुझे चन्द्र प्रभु के दर्शन कर लेने दे।

आत्मा में सुमति और कुमति ऐसी दो प्रकार की प्रकृति है। कुमति सदा लड़ाई झगड़ा करने के लिए तत्पर रहती है किन्तु सुमति लड़ना नहीं जानती। अतः वह कुमति से कहती है कि सखी! अब तो मुझे चन्द्र प्रभु के दर्शन कर लेने दे। मेरे पति को भटकते भटकते बहुत काल व्यतीत हो गया है। तू उसको और अधिक बेभान बनाकर नाच नचाती है। अतः हे सखि! मैं नम्रता पूर्वक तेरेसे कहती हूं कि अब मुझे उसके दर्शन कर लेने दे।

आप पूछेंगे कि क्या भगवान् चंद्र प्रभु के दर्शन इन चमड़े की आंखों से करें! किन्तु यह बात उचित नहीं है। आंखें तो चतुरिन्द्रिय जीवों को भी होती हैं। मगर वे प्रभु के दर्शन नहीं कर सकते। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च भी आंखों के रहते विवेकरूपी चक्षु के अभाव में ईश्वरदर्शन नहीं कर पाते। ईश्वरदर्शन का वास्तविक साधन विवेक है। और वह मनुष्य में अधिक मात्रा में पाया जाता है। अतः वही विवेकसम्पन्न होकर प्रभुदर्शन कर सकता है।

अर्जुनमाली की कथा कह कर यह बताने की चेष्टा की जाती है कि सुदर्शन सेठ ने किस प्रकार भगवान् के दर्शन किये हैं। यह शंका होना वाजिब है कि महावीर और चन्द्र प्रभु जुदा जुदा हैं। यहां चन्द्र प्रभु के दर्शन की बात चल रही है। अर्जुन माली और सुदर्शन सेठ ने तो महावीर के दर्शन किये थे। दोनों में एकता कैसी? इस का समाधान इतना ही है कि दोनों का भौतिक शरीर भिन्न भिन्न था किन्तु आत्मिक गुण समान हैं। आप गुणों की तरफ नजर दौड़ाइये फिर आपको भेद नजर न आयेगा। गुणों से दोनों समान हैं—एक हैं। कहा है—

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित बुद्धि बोधात् ।
त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रय शंकरत्वात् ॥
धातासि धीर ! शिवमार्गविधेर्विधानात् ।
व्यक्तं त्वमेव भगवन् ! पुरुषोत्तमोऽसि ॥

अर्थ—हे भगवान् ऋषभदेव ! पण्डितों द्वारा पूजित बुद्धि का बोध देने वाले होने से आप ही बुद्ध हैं। तीनों जगत् में आनन्द और कल्याण करने के कारण आप ही शङ्कर (महादेव) हैं। मोक्षमार्ग की विधि का विधान करने से आप ही धाता-विधाता (ब्रह्म) हैं और आप ही प्रकट रूप में पुरुषोत्तम (विष्णु) है। श्लोक का फलितार्थ इतना ही है कि नाम भिन्न भिन्न हैं किन्तु परमात्मा एक ही है। हमें गुणों से प्रयोजन है न कि नाम से। गुण हों तो नाम चाहे कोई भी क्यों न हो। परमात्मा ने अनन्त नाम हैं। अभिनन्दन भगवान् की प्रार्थना के प्रसंग में मैंने भक्त तुलसीदास का भजन गाकर यही बात स्पष्ट करने की कोशिश की थी कि नाम कोई भी क्यों न हो यदि परमात्मा के गुण उसमें विद्यमान हैं तो हमें कोई आपत्ति न होनी चाहिए। तुलसीदासजी का बनाया हुआ भजन होने से कोई यह न समझ बैठे कि मैं खींचातान करके बात को संगत बैठा देता हूं। मेरा उद्देश्य परमात्मा का स्वरूप समझाने का है। विषय को सरल और स्फुट बनाने के लिए जहां कहीं से तत्त्व मिलता है मैं ग्रहण कर लेता हूं। मेरे उद्देश्य की तरफ आप लक्ष्य रखेंगे।

सुदर्शन सेठ ने भगवान् महावीर के दर्शन कब और किस परिस्थिति में किये थे यह बात संक्षेप मे बताता हूं।

राजगृही नगरी में श्रेणिक राजा राज्य करता था। वह साम दाम दण्ड और भेद नीति में प्रवीण था। राजनीति और धर्म नीति में बड़ा अन्तर है। राजनीति अपूर्ण है जब

कि धर्मनीति पूर्ण और विशुद्ध है। लौकिक धर्म परिस्थितियों पर अवलम्बित है किन्तु पार लौकिक धर्म परिस्थितियों को पार कर जाता है। पारलौकिक धर्म किस प्रकार मनुष्य को ऊंचा उठाता है यह सुदर्शन के जीवन में देखिये।

राजगृही में साहूकारों के छः पुत्र रहते थे। वे धनवान् भी थे और युवक भी। राजा का कोई कठिन कार्य पूरा करके उन्होंने राजा को प्रसन्न कर लिया था। राजा ने उनको कहा कि तुम लोग इच्छित वस्तु मांग सकते हो, मैं देने के लिए तय्यार हूं। राजा की कृपा होने से मनुष्य भलाई भी कर सकता है और यदि राज्य कृपा का दुरुपयोग करे तो बुराई भी। विषयेच्छा के वशीभूत बने हुए उन युवकों ने अपनी कमीनी इच्छाओं को पूरा करने और उनमें विघ्न करने वाली बाधाओं को दूर करने की दृष्टि से राजा से यह वरदान मांग लिया कि हमारी किसी भी हरकत की शिकायत न सुनी जाय। हमारे सब अपराध क्षम्य गिने जायं। हमारी शिकायत न सुनी जाय! वचन में बंधा हुआ राजा उनकी मांग को अस्वीकार न कर सका।

मनुष्य प्राण देने के वक्त चाहे विचार करे या न करे किन्तु वचन देने के पूर्व अवश्य विचार करना चाहिए। मैं जो वचन दे रहा हूं उसका नतीजा आगे जाकर क्या होने वाला है यह अवश्य विचारना चाहिये। विना विचारे वचन दे देने से बड़े बड़े अनर्थ होने की संभावना रहती है। राजा दशरथ ने कैकयी को विना विचारे वचन दे दिया था जिसका

कितना भयंकर परिणाम आया था यह सर्व विदित बात है। श्रेणिक राजा के वचन का कितना दुष्परिणाम हुवा है यह ध्यान से सुनिये।

राजा ने उन उद्धत युवकों की बात स्वीकार कर ली। जवानी का नशा चढ़ा हुआ था। धन सम्पत्ति प्राप्त थी ही। राजदण्ड का भय मिट चुका था। अब केवल विवेक ही था जो बुराई से रोक सकता था। किन्तु दुर्भाग्य से उन छहों युवकों में विवेक का भी पूरा अभाव था। वे विवेक विकल थे। धन हो यौवन हो और राज्यसत्ता भी हो किन्तु यदि मनुष्य में विवेक बुद्धि—हिताहित सोचने की शक्ति विद्यमान है तो वह बुराई की ओर आकर्षित नहीं हो सकता। बल्कि इन सब साधनों का भलाई के लिए उपयोग कर सकता है। विवेक प्रधान गुण है जिससे मनुष्य उन्नति के शिखर पर पहुंच सकता है। उन युवकों में विवेक न था अतः वे दुर्व्य-सनों में फंसकर विनष्ट हुए। नीतिशास्त्र में कहा है—

यौवनं धन सम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता ।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ॥

यौवन, धन सम्पत्ति, राजसत्ता और अविवेक इन चारों में से एक एक बात भी अनर्थ का कारण है तो यदि कहीं इन चारों का एक साथ संयोग हो जाय तब अनर्थ का क्या पूछना है। यौवन की शक्ति को १ मान लेते हैं। यौवन के साथ धन सम्पत्ति का योग हो जाय तो ११ जितनी शक्ति

हो जाती है। राज्यसत्ता भी यदि युवा धनवान् को प्राप्त हो जाय तो उसकी शक्ति १११ हो जाती है। युवक धनवान् राज्य-सत्ता पाकर अपनी १११ शक्ति का सदुपयोग कर सकता है यदि उसमें विवेक शक्ति जागृत हो। यदि विवेक न रहा तो १११ जितनी शक्ति ११११ जितनी बनकर महान् अनर्थ का कारण बन जाति है। इन छः दोस्तों की विवेक हीनता के कारण कैसी दुर्दशा होती है यह ध्यान से सुनिये।

राजा से निर्भयता का वचन पाकर वे छओं मित्र स्वैर विहार करने लगे। स्वच्छन्दता पूर्वक मन माना आचरण करने लगे। किसी की पुत्र वधू को किसी की कन्या को और किसी की मां बहिन को पकड़ने लगे और उनका सतीत्व नष्ट करने लगे। दिन रात इसी ताक में रहते कि किसकी बहू बेटी सुन्दर है उससे अपनी दुष्टवासना को बुझावें।

इस प्रकार राजगृही नगरी की जनता इन दुष्ट स्वेच्छाचारी युवकों की हरकतों से तंग आगई। प्रजा की इज्जत जाने लग गई। प्रजा बहुत दुःखी हो गई। ऐसे वक्त प्रजा का कर्त्तव्य स्पष्ट था। किन्तु प्रजा में कायरता आगई थी अतः वह कर्त्तव्य पालन नहीं कर सकी। प्रजा का कर्त्तव्य था कि वह राजा के पास पहुंचती और उन उद्दण्ड युवकों की शिकायत करती। अथवा राजा से ही कहती कि आप को इस प्रकार विना विचारे वचन देने का क्या अधिकार था जिसका फल प्रजा इज्जत में हतक होना था। सत्य हकीकत से राजा को अवगत कराकर विना विचारे दी हुई राजाज्ञा वापस खिंच-

वाती। किन्तु प्रजा में इतनी हिम्मत व जागृति न थी। प्रजा का मन मरा हुआ था अतः इस प्रकार विचारने लगी कि किसके पास जावें और किसको अपनी शिकायत सुनावें। राजा ने प्रसन्न होकर इनको छूट दे रखी है। अतः इनकी शिकायत राजा के पास कैसे करें। हम लोग वनिये हैं। हमारी मूंछ ऊंची नहीं किन्तु नीची ही सही। इस प्रकार के कायरता पूर्ण विचार प्रजा के दिलों में घर किये हुए थे।

आज कल भी ऐसे कायर लोगों की कमी नहीं है जो अन्याय या अत्याचार का विरोध करने में हिचकते हैं। 'हमारी कौन सुनता है यदि कुछ मुंह खोल कर शिकायत करेंगे या आवाज उठायेंगे तो राज विरोधी समझे जायंगे'। ऐसी पस्त-हिम्मत की बातें कई लोग किया करते हैं। मगर मित्रों! धर्म कायरों के लिए नहीं है वीरों का है। वीर पुरुष ही धर्म सिद्धान्तों का पालन कर सकते हैं। जिन को अपने शरीर का मोह है, जो कुटुम्ब के पीछे अपमान और अनादर भी सहन कर लेते हैं, ऐसे भीरु लोग धर्म का पालन नहीं कर सकते।

यदि राजगृही की प्रजा वलवान् और जागृत होती तो वे छः साथी मित्र प्रजा की बहू बेटियों के शील पर हाथ डालने की कभी हिमाकत नहीं कर सकते। अन्याय या अत्याचार सहन करना उसको बढ़ावा देना है। यदि कोई सत्ताधारी या शक्ति शाली व्यक्ति अपनी सत्ता और शक्ति के मद में आकर किसी व्यक्ति विशेष या समूह विशेष पर अत्याचार करता है और वह व्यक्ति या समूह बिना किसी प्रकार का

प्रतिकार किये उस अत्याचार को सहन कर लेता है तो वह अत्याचार की वृद्धि में प्रोत्साहन देने वाला है। जिस आचरण को मनुष्य अन्याय या अत्याचार रूप समझता है, मन में वह असह्य लगता फिर भी यदि कायरता या सामने वाले को सशक्त समझ कर उसका किसी प्रकार का विरोध नहीं करता वह उस अत्याचारी के अत्याचार में एक प्रकार से सहयोग प्रदान करता है। मान लीजिये कि एक स्त्री पर एक गुण्डा बलात्कार करता है। यदि स्त्री गुण्डे की शक्ति के सामने अपने को कमजोर पाकर किसी प्रकार का विरोध या प्रतिकार नहीं करती है और अपना शरीर गुण्डे को सौंप देती है तो वह अत्याचार में सहायता करती है ऐसा कहने में बाधा नहीं मालूम देती। माना कि वह गुण्डे की शारीरिक शक्ति से लोहा नहीं ले सकती। किन्तु शब्दों से इन्कार कर सकती है। अपनी शारीरिक चेष्टा से विरोध प्रदर्शित कर सकती है। ऐसा कुछ भी न करके मन में इच्छा न होते हुए भी अपने को अत्याचारी के सुपुर्द कर देना कायरता है और अत्याचार में सहायक होना है।

राजगृही की प्रजा में इस प्रकार की भीरुमनोवृत्ति घर किये हुई थी। अतः वे छःओ गोठीले मनमाना अत्याचार करने लगे और मदमस्त होकर घूमने लगे। किन्तु यह प्रकृति का अटल नियम है कि चाहे कोई किसी भी पशुबल से मस्त होकर अपने को भूला हुआ हो और धर्म की अवहेलना करता हो, उसे उसका प्रतिफल भोगे बिना छुटकारा नहीं हो सकता। हां, यह हो सकता है कि किसी को किसी बात का बदला

देरी से भुगतना पड़ता है और किसी को तत्काल। मगर किये हुए कर्म का फल भुगते बिना छुटकारा नहीं है। प्रकृति के राज्य में अंधेर नहीं है, देर चाहे हो सकती है।

इसी राजगृही में अर्जुन नाम का एक माली रहता था। उसके बन्धुमती नामकी एक सुन्दर रूपवती भार्या थी। पति पत्नि में बड़ा प्रेम था। जिस प्रकार आज की पत्नी पुरुष के लिए भाररूप है उस प्रकार वह न थी। वह अपने पति के कार्य में हाथ बटाती थी और पूरी सहायिका थी। इसी प्रकार अर्जुन माली भी स्त्री का गुलाम न था। किन्तु वास्तविक मित्र था। और उचित सत्कार करता था।

आज कई पुरुष स्त्री के गुलाम बने हुए हैं। वासना-वृत्ति में आसक्त होकर अपना स्वत्व खो बैठते हैं। स्त्री और पुरुष एक दूसरे के पूरक हैं। कोई किसी का गुलाम नहीं है। दोनों का पारस्परिक मैत्री सम्बन्ध है। विवाह करने के पश्चात् यदि पुरुष यह अनुभव करने लगे कि उसका कुछ भार हल्का हुआ है, उसे जीवन में सच्चा साथी मिल गया है, उसके धार्मिक और लौकिक कार्य में वृद्धि हुई है तथा उसका दिमागी बोझा हल्का हुआ है तब तो समझना चाहिए कि विवाह करके वह चर्तुभुज बना है। नहीं तो चतुष्पद बन जाता है और चतुष्पद में भी गदहा बन जाता है जो जीवन भर गृहस्थी का भार ढोता रहता है। न देश सेवा, न जाति सेवा और न धर्म सेवा ही उससे बन पड़ती है। सारी उम्र स्त्री और कुटुम्ब

की गुलामी में बीत जाती है। इसका कारण स्त्री का उसके कार्यों में सहयोग न देना है।

जिन कार्यों में स्त्री सहयोग दे सकती है उसमें सहयोग देना उसका कर्त्तव्य है। पुरुष के लिए एकान्त बोझारूप बनकर गृहस्थ जीवन को कठिन नहीं बनाना चाहिए। जो स्त्री अपने शृङ्गार और सजावट के कार्य में ही तल्लीन रहती है, फैशन में फंसी रहती है, वह भार रूप नहीं तो और क्या है! फैशन इस वक्त इतनी बढ़ी हुई है कि स्त्रियां अर्द्धनग्न रहने में अपना सौभाग्य समझती हैं। रेशमी और बारीक वस्त्र पहन कर लज्जा को विदाई दे दी गई है। लज्जा शील होना स्त्रियों का भूषण है किन्तु फैशन ने लज्जा को विदा कर दिया है। इतने महीन वस्त्र पहने जाते हैं कि शरीर के अंग प्रत्यंग दिखाई देते हैं। ऐसा भी सुनने में आया है कि शरीर के वर्ण के समान वर्ण वाले वस्त्र निकले हैं। जिनको धारण करने से दर्शक को यह नहीं मालूम हो सकता कि वस्त्र पहने हुए हैं या नहीं। ऐसी दशा में वस्त्र से क्या प्रयोजन सिद्ध हुआ! लज्जा ढांकने रूप प्रयोजन सफल नहीं होता।

मैं यह कह रहा था कि स्त्री पति की सहायिका है। औरों की मैं क्या बात करूं आप महाजन लोगों की स्त्रियां आपके लिए क्या हैं? भार रूप हैं या भार हल्का करने वाली? मेरा अनुभव कहता है कि वे भार रूप बनी हुई हैं। सब स्त्रियों को मैं यह प्रमाणपत्र नहीं दे रहा हूं कि वे भार-

रूप हैं किन्तु देखा जाता है कि अनेक स्त्रियां अपने पति के लिए भाररूप हैं। यदि कहीं मुसाफिरी में चले गये तो जिस प्रकार दागिनों या जोखमी वस्तुओं का ध्यान रखा जाता है उस प्रकार स्त्रियों का भी ध्यान रखना पड़ता है। यह स्थिति स्त्री और पुरुष दोनों के लिए अच्छी नहीं कही जा सकती।

अर्जुन और वन्धुमति दोनों मिल कर गृहस्थी का भार वहन करते थे। दोनों मिल कर उद्यान में पुष्प इकट्ठा करते थे दोनों मिल कर माला बनाते और बाजार में बेंचकर अपना निर्वाह करते थे।

एकदा एक उत्सव का प्रसंग आया। इस प्रसंग पर पुष्पों की और मालाओं की विक्री अधिक होगी ऐसी आशा से दोनों बाग में फूल चुनने के लिए गये। फूल चुनकर मालायें आदि बनाकर उस बाग में स्थित यक्ष मन्दिर में यक्ष के दर्शनार्थ आये। उन दोनों का यह नियम था कि वे यक्ष की पूजा और दर्शन किये विना व्यापार में न लगते थे।

संयोग से वे छओं साहूकार के पुत्र भी घूमते घामते उसी बगीचे में आ पहुंचे और उनकी दृष्टि वन्धुमति पर जा पड़ी। उसे देखकर एक युवक कहने लगा—अहो! यह स्त्री कितनी सुन्दरी है! इसे गौरी कहा जाय या लक्ष्मी? इसका मोहकरूप चित्त को हठात् अपनी ओर आकर्षित करता है। तब दूसरा युवक बोला—यार! खाली रूप की प्रशंसा करके ही रह जाओगे या कुछ अन्य प्रयत्न भी करोगे। यह तो हमारी खुशकिस्मती से ही इधर आई मालूम देती है।

मित्रो ! मैं आपसे पूछता हूं कि यह वन्धुमति स्त्री इन युवकों की है या अर्जुन की ? यदि युवकों की नहीं है तो ये कैसे कह रहे हैं कि हमारे सद्भाग्य से ही यह इधर आ रही है। इष्ट रूप, इष्ट शब्द, इष्ट गन्ध और इष्ट स्पर्शादि की प्राप्ति पुण्यकर्म का फल माना जाता है। क्या वन्धुमति का उद्यान में आना इन छहों दोस्तों के लिए पुण्यकर्म का फल है ? इन लोगों ने यह बात मान ली कि हमारे शुभ कर्म के उदय से यह सुन्दरी नारी इधर आई है और हमको आनन्दित करने में कारण बनेगी। क्या इस प्रकार पाप वासना को मन में स्थान देने वालों के लिए किसी वस्तु का संयोग हो जाना अथवा बलात् उनके द्वारा संयोग कर लिया जाना पुण्योदय गिना जायगा ? कदापि नहीं। यदि इस तरह पुण्य का अर्थ लगाया जायगा तो फिर पाप किसको कहेंगे। परस्त्री का संयोग होना अथवा अपनी शक्ति से संयोग जुड़ा लेना पुण्य-कर्म का फल नहीं माना जा सकता। इस तरह तो चोरी करके धन जुटाना भी पुण्यफल गिना जाना चाहिये। किन्तु पुण्य शब्द का यह अर्थ ठीक नहीं हो सकता। फिर पाप शब्द का क्या अर्थ किया जायगा और किस काम को पाप माना जायगा।

तीसरा युवक बोला—हमारी मनोकामना पूरी होने में इस स्त्री के साथ वाला पुरुष बाधक है। यह बाधा हटने पर ही इस सुन्दरी के साथ आनन्दक्रीड़ा की जा सकती है। चौथा बोला—क्या हम लोग कायर हैं जो एक पुरुष को भी दूर नहीं हटा सकते। पांचवां बोला—कायर कैसे हैं, हम लोग

वीर हैं। इसको दूर हटाकर अपनी इच्छा पूरी करें। छठे युवक ने कहा—भाइयो ! कोई भी काम सोच समझ कर तरकीव से करना चाहिये। बिना विचारे एकदम कर डालना ठीक नहीं है। एक व्यक्ति भी यदि बिगड़ जाय तो हमारा अनिष्ट कर सकता है। अतः शांति रखकर युक्तिपूर्वक काम करना चाहिये।

आपस में सब मिलकर सोचने लगे कि किस तरह इस रूप-सुन्दरी को काबू में किया जाय और मनोवांछा पूरी की जाय। सोचने के बाद सब इस निर्णय पर पहुंचे कि हम सब लोग मंदिर में जाकर किवाड़ों के पीछे छिप जायं और जब यह पुरुष यक्ष को नमस्कार करने के लिए नीचे झुके तब इसे पकड़ कर बांध दिया जाय। तदनुसार सब यथा स्थान छिपकर खड़े हो गये।

अर्जुन माली निर्भय था। उसे इस आकस्मिक खतरे की कतई आशंका न थी। परम्परा और दैनिक नियम के अनुसार वह यक्ष-मंदिर में गया। पुष्प चढ़ाये और नमस्कार करने के लिए नीचे झुका। ज्योंही वह नीचे झुका कि छओं साथी एक दम उस पर टूट पड़े और उसको पकड़ कर बांध दिया। साथ साथ वन्धु मति को भी पकड़ लिया और अर्जुन के सामने ही उसके साथ संभोग करने लगे। यदि वन्धुमति सती स्त्री होती तब तो अपने प्राण दे देती पर उन गुण्डों की पकड़ में न आती। किन्तु वह अर्जुन से सच्चा प्रेम न रखती थी। दिखावटी प्रेम रखती थी। अतः उन युवकों के साथ स्वयं रम गई।

हमारे सामने ऐसे कई दृष्टान्त हैं कि स्त्री की इच्छा के विरुद्ध किसी भी गुण्डे की यह हिम्मत नहीं है कि वह उससे संभोग कर सके। यदि स्त्री नहीं चाहती है तो वह कई तरीकों से अपना बचाव कर सकती है। और कुछ न बने तो अपनी जबान काट कर भी प्राण दे सकती है। जबान काट कर प्राण देने का महारानी धारणी का दाखला प्रसिद्ध है। किन्तु यह कार्य सरल नहीं है। धर्म का पालन करना भी तो बड़ा कठिन है।

गोड़ा लकड़ी एवं उल्टी मुश्की से बंधा हुआ अर्जुन यह लीला अपनी आंखों से देख रहा था। उसके क्रोध की सीमा नहीं थी। कौन पुरुष ऐसा होगा जो अपने सामने अपनी स्त्री को पर पुरुष से संयोग करते देख कर क्रोधित, दुःखित और अपमानित न होगा? ऐसे प्रसंग पर पशु भी आपस में लड़ पड़ते हैं तो पुरुष इस अपमान को कैसे सहन कर सकते हैं।

पड़ा पड़ा अर्जुन विचारने लगा कि अहो! इस यक्ष की मैं जन्म भर से सेवा कर रहा हूं फिर भी यह मेरा सहायक नहीं बन रहा है। मेरी आंखों के सामने यह कांड गुजर रहा है। यक्ष की मूर्ति के समक्ष यह जघन्य कृत्य किया जा रहा है फिर भी यह यक्ष प्रकट होकर अपनी शक्ति प्रदर्शित नहीं करता। यह निरा काष्ठ का पुतला ही है। सच्चा यक्ष नहीं है।

इस प्रकार विचार करते हुए अर्जुन का मन एकाग्र हो गया। उसमें जो एकाग्रता थी वह रजोगुणी थी। सतोगुणी एकाग्रता में दूसरों की भलाई संनिहित होती है। उसमें क्रोध

या बदला लेने की भावना नहीं होती। उस एकाग्रता की शक्ति से यक्ष उसके शरीर में प्रवेश हो गया और उसके बंधन टूट गये। यक्ष मूर्ति के पास पड़ा हुआ मुद्गर लेकर वह उन छःओं साथियों पर टूट पड़ा। उनके सिर फोड़ दिये। फिर सोचा कि मेरी स्त्री भी दुराचारिणी है कारण कि बिना कुछ आनाकानी किये इसने अपने को इन दुष्टों की हरकत में शामिल कर दिया। अतः इसको भी दंड देना चाहिये। छःओं की तरह स्त्री को भी मार डाला। फिर विचार किया कि इस शहर के लोग भी दुष्ट हैं। यदि ये दुष्ट या कायर न होते तो ये छः लड़के इस प्रकार उद्दण्ड और मस्त होकर कभी घूम नहीं पाते। इनकी मस्ती बढ़ाने में शहरी लोग ही कारण हैं। अतः शहर के लोगों को भी मार डालूंगा।

बेदरकारी या पड़ौसी का खयाल न करने का कितना भयंकर परिणाम हो सकता है यह बात हम इस कथा से समझ सकते हैं। कई लोग इस प्रकार सोचते हैं कि हमारे पड़ौसी ग्राम नगर या देश की हानि होती है तो इससे हमारा क्या बिगड़ता है। हमारा घर सुरक्षित रहना चाहिये। किन्तु उनका यह विचार बड़ा संकुचित और दीर्घ दृष्टि रहित है। जब पड़ौसी के घर में आग लगी है तो वह तुम्हारे घर तक भी पहुँच सकती है क्यों न उस आग को वहीं रोक दिया जाय ताकि पड़ौसी का भी भला हो और तुम्हारा भी। परहित में स्वहित समाया हुआ है, यह समझना बुद्धिमत्ता है।

अर्जुन ने अपने मन में यह निश्चय कर लिया कि इस नगरी के राजा और प्रजा दोनों दुष्ट हैं। इनकी दुष्टता का इनको फल चखाये विना मैं न रहूंगा। मगर उसकी हिम्मत नगर में प्रवेश करने की न हुई। नगर के वाहर ही प्रतिदिन छः पुरुष और एक स्त्री को मार डालने का धंधा अख्तियार कर लिया। उसको यही धून वंध गई। इस वात की सारे शहर में शोहरत हो गई कि अर्जुन हत्याकांड पर उतारु है। लोग घवड़ाने लगे। राजा को भी इसका पता लगा। मगर वह यक्षाधिष्ठित अर्जुन को कावू में न कर सका और शहर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि कोई भी व्यक्ति नगर के वाहर न जाय। अर्जुन माली कोपा हुआ है।

राजा का यह काम कायरता पूर्ण ही गिना जायगा। उस का कर्त्तव्य प्रजा की रक्षा करने का था। किन्तु उसने यह कर्त्तव्य पूरा नहीं किया। यह शंका हो सकती है कि अर्जुन में दैवशक्ति प्रविष्ट हो गई थी अतः राजा उसे पकड़ने में असमर्थ रहा। और इसीलिए वह प्रजा रक्षण के कर्त्तव्य से च्युत रहा। किन्तु राजा का फर्ज इतने मात्र से अदा नहीं हो जाता कि वह खाली प्रजा को सूचना मात्र करवा दे कि कोई नगर के वाहर न निकले और निश्चिंत होकर वैठ जाय। नगर के वाहर मारे गये ११४१ स्त्री पुरुषों की मौत की जिम्मेवारी या रक्षण का कर्त्तव्य राजा की तरफ ही आता है। पांच मास और तेरह दिन यह हत्याकांड होता रहा और राजा देखता रहा। इसे कायरता पूर्ण व्यवहार न कहा जायगा तो क्या कहा जायगा!

अर्जुन ने अपने मन में यह निश्चय कर लिया
नगरी के राजा और प्रजा दोनों दुष्ट हैं। इनको
इनको फल चखाये बिना मैं न रहूंगा। मगर उस
नगर में प्रवेश करने की न हुई। नगर के बाहर
छः पुरुष और एक स्त्री को मार डालने का धंधा
कर लिया। उसको यही धून बंध गई। इस
शहर में शोहरत हो गई कि अर्जुन हत्याकांड प
लोग घबड़ाने लगे। राजा को भी इसका पता
वह यक्षाधिष्ठित अर्जुन को काबू में न कर सं
में ढिंढोरा पिटवा दिया कि कोई भी व्यक्ति नगर
जाय। अर्जुन माली कोपा हुआ है।

राजा का यह काम कायरता पूर्ण ही गिना
का कर्त्तव्य प्रजा की रक्षा करने का था। ि
कर्त्तव्य पूरा नहीं किया। यह शंका हो सकती
दैवशक्ति प्रविष्ट हो गई थी अतः राजा उसे पक
रहा। और इसीलिए वह प्रजा रक्षण के कर्त्तव्य
किन्तु राजा का फर्ज इतने मात्र से अदा न
वह खाली प्रजा को सूचना मात्र करवा दे वि
बाहर न निकले और निश्चिंत होकर बैठ जाय
मारे गये ११४१ स्त्री पुरुषों की मौत की जिम्
का कर्त्तव्य राजा की तरफ ही आता है। पांच
दिन यह हत्याकांड होता रहा और राजा दे
कायरता पूर्ण व्यवहार न कहा जायगा तो क्य

पधार गये। और लोगों के दुःख को दूर करने में निमित्त क्यों न बने? जब ११४१ व्यक्तियों की हत्या हो चुकी तब पधारे। इसका क्या कारण है? बात यह है कि भगवान् अपने ज्ञान के द्वारा सब बात समझते थे। जो काम जिस तरह होने का होता है वह उसी तरह होकर ही रहता है। और जिस काम को करने का जो समय होता है वह उसी वक्त किया जा सकता है। उससे पूर्व नहीं हो सकता। काल पके विना कार्य की सिद्धि नहीं हो सकती।

भगवान् महावीर नगर के बाहर बगीचे में ही ठहरे। सारे नगर में भगवान् के पधारने और उद्यान में विराजने की बात बिजली की तरह प्रसिद्ध हो गई। राजगृह में भगवान् महावीर के अनेक भक्त भी थे। वे दर्शनार्थ नगर के बाहर जाना चाहते भी थे मगर अर्जुन के डर के मारे बाहर जाने का किसी का साहस न होता था। सब यह कहते रहे होंगे कि भगवान केवल ज्ञानी हैं, वे घट घट के भाव जानते हैं, यहीं बैठे २ ही भाव वंदन कर लेते हैं, हमारी वंदना मंजूर हो जायगी।

आजकल भी कई लोग यही बात कहते हैं कि हमारे भाव अच्छे होने चाहिये बाहरी क्रिया करने में क्या रखा है। यदि मन में आध्यात्मिकता है तो बाहरी क्रिया कांड किया तो क्या और न किया तो क्या। मगर ऐसा कहने वाले एकान्तवादी हैं। वे निश्चय दृष्टि को आगे रख कर ऐसा कहते हैं। किन्तु निश्चय के साथ व्यवहार हो तभी वह कार्यसाधक

होता है। विचारों में आध्यात्मिकता होना बड़ी अच्छी बात है किन्तु यदि कृत्य में आध्यात्मिकता न हो तो वे कच्चे विचार हवा की तरह उड़ जाते हैं और मनुष्य पथभ्रष्ट हो जाता है। आचार से विचार को पुष्टि मिलती है और विचार से आचार को। दोनों का गहरा सम्बन्ध है।

सुदर्शन सेठ कोरा अध्यात्मवादी ही न था। वह क्रिया के साथ होने वाले अध्यात्मवाद में विश्वास रखने वाला व्यक्ति था। जो सच्चा आध्यात्मिक होगा वह बाहरी विघ्नों के भय से तदनुकूल क्रिया करने में कभी नहीं हिचकेगा। सुदर्शन ने भगवान् के आगमन की खबर सुनी। वह तत्काल दर्शन करने के लिए जाने वास्ते तय्यार हो गया। उसने मन में सोचा कि जो सिपाही प्रतिमास वेतन लेता रहे और जब युद्ध में जाने का अवसर आये तब कहीं जा कर छिप जाय तो वह बहादुर नहीं गिना जा सकता, लोग उसे कायर ही कहेंगे। मैं महावीर का श्रावक हूं। वे मेरी नगरी के बाहर पधारे हैं। मैं डर के मारे यह सोचकर कि भगवान् ज्ञानी है मेरे भावों पर खयाल करके मेरी भाव वंदना स्वीकार कर लेंगे, सशरीर वंदना करने क्यों जाऊं, निरी कायरता है। इस नाशवान् शरीर का एक न एक दिन विनाश होना ही है। फिर क्यों न इस शुभ समारंभ से अपने आपको होम दूं। यह विचार कर वह जाने के लिये तत्पर हो गया। जो सच्चा आध्यात्मिक होता है वह कोरी अध्यात्मवाद की बातें ही करके निष्क्रिय हो कर बैठा नहीं रहता किन्तु क्रिया में तत्पर हो जाता है।

सुदर्शन अपने मन में किये हुए संकल्प की गुरुता को जानता था वह समझता था। वह समझता था कि मैं जो कदम बढ़ा रहा हूं वह खतरे से खाली नहीं है। संभव है इस कदम से भौतिक शरीर का त्याग तक करना पड़े उसने अपने माता पिता की आज्ञा लेकर जाना उचित समझा। मातापिता से पूछने पर वही उत्तर दिया जो साधारण माता पिता दिया करते हैं। पुत्र! यहीं पर बैठे २ वंदन कर लो, सर्वज्ञ सर्व दर्शी भगवान् तुम्हारे भावों को जान कर तुम्हारी हुण्डी सिकार देंगे। किन्तु पुत्र कहां मानने वाला है। उसने अपने वुद्धि चातुर्य्य से माता पिता को मना लिया। यह शरीर आपका दिया हुआ अवश्य है किन्तु इसे मैं प्रभु के समर्पण कर चुका हूं अतः वीरोचित मार्ग पर चलना पसन्द करता हूं इत्यादि दलीलें देकर माता पिता को राजी कर लिया। सुदर्शन दर्शन करने के लिए चल दिया।

कई लोग अच्छे कार्य जैसे देश सेवा धर्म सेवा या इसी प्रकार के अन्य २ कार्य करने के लिए माता पिता की आज्ञा प्राप्त करना आवश्यक नहीं समझते। कई लोग केवल पूछ लेते हैं। आज्ञा न मिलने पर या मना करने पर भी कार्य में जुट जाते हैं। किन्तु यह शिष्ट सम्मत तरीका नहीं है। शिष्ट तरीका तो यही है कि अच्छे कार्यों के लिए भी माता-पिता की आज्ञा प्राप्त की जाय। माता पिता को अपने कार्य की विशेषता, उपयोगिता और गुण दोष बता कर उनके मन का समाधान करके, आज्ञा प्राप्त कर कार्य में जुटना सज्जनोचित मार्ग है। ऐसा नहीं हो सकता कि माता पिता सच्ची

दलील को न समझें और न मानें। तत्काल न मानें तो धीरे २ मनवाने का यत्न करते रहना चाहिये मगर पीछे कदम न हटाना चाहिये और न इस बहाने अपनी उन्नति को रोकना ही चाहिये।

सुदर्शन सच्चा सत्याग्रही था। उसने अपने माता पिता को आज्ञा देने के लिए प्रसन्न कर लिया और चल दिया। उस दिन वह अकेला ही था। कोई साथ न था। पहले जब कभी दर्शनार्थ जाता था, अनेक लोग उसके साथ होते थे किन्तु आज तो परीक्षा का अवसर था। आज शरीर-संकट का प्रसंग था। ऐसे अवसर पर साथ देने वाले व्यक्ति विरले ही होते हैं।

सुदर्शन के दर्शनार्थ जाने की बात नगर में फैल गई। लोग चर्चा करने लगे कि सुदर्शन हमारी नगरी का नाक है। यदि वह अर्जुन माली के हाथ से मारा गया तो हमारे नगर की नाक चली जायगी। कई लोग आकर सुदर्शन को मना करने भी लगे कि क्या शरीर को त्यागना है जो देखती आंखों अपने को जलती भट्ठी में झोंकने जा रहे हो। यहीं से वंदन कर लो।

लोग ऐसी बात कह रहे हैं जो ऊपर से सुदर्शन के लिए भलाई की बात मालूम देती है। आप लोग जरा ध्यान दीजिये कि सुदर्शन लोगों की बात माने या अपने हृदय की। आधुनिक लोग आत्मा की अपेक्षा दूसरे लोगों की बात पर अधिक ध्यान देते हैं। आत्मा जिस सत्य को स्वीकार कर

रही है उसे केवल लोगों के कहने मात्र से छोड़ देना, सत्य से दूर हटना है। लोगों का क्या है, वे उलट भी बोल देते हैं और सुलट भी। साधारण लोगों के मुख पर लगाम नहीं होती अतः किसी बात का निर्णय करते वक्त शुद्ध आत्म साक्षी को प्रमाणभूत मानना चाहिये। यदि आत्मा निर्णय न कर सके तो चरित्रवान् ज्ञानी पुरुष से निर्णय लेकर कार्य में लगना उचित मार्ग है।

सुदर्शन लोगों के साथ तर्कवाद में न उलझ कर आगे बढ़ता ही गया। जो आगे कदम रखता जाता है, उसकी टीका टिप्पणी भी होती है और स्तुति भी। समझदार लोग सुदर्शन के इस प्रयत्न की प्रशंसा करने लगे और धन्यवाद देने लगे। किन्तु जो ईर्षालु थे वे दुर्गुण ढूंढने लगे। कहने लगे कि यह बड़ा हठी है, बड़ा अभिमानी है, जो सब की बात न मान कर मौत के मुख में जा रहा है। जाने दो। इसने अनेकों को लूटा है, उसका प्रतिफल भोगने दो। मरने दो। आदि।

निन्दा और स्तुति की परवाह किये बिना सुदर्शन आगे बढ़ता गया। उन्नति में निन्दा भी बाधक हो सकती है और स्तुति भी। कभी कभी निन्दा की अपेक्षा स्तुति में फूल जाने वाले का पतन शीघ्र होते देखा गया है। जिसे आगे बढ़ना है उसे निन्दा और स्तुति दोनों से मुख मोड़ लेना होगा। जो निन्दा से घबड़ाता है और स्तुति से फूल जाता है वह उन्नति शब्द का अर्थ भी नहीं समझता। उन्नति करना तो उसके लिए बहुत दूर की बात है।

सुदर्शन के पास अपना बचाव करने के लिए छड़ी तक भी न थी। वह उसी तरफ जा रहा था जिधर संकट मंडरा रहा था। जिधर जाने से राजा और उसकी सेना भी भय पाती थी उधर सुदर्शन बढ़ता चला जा रहा था। उसके पास केवल एक बल था। वह था ईश्वरीय बल—आत्मिक बल। जिसके पास यह बल होता है वह बड़ा वीर पुरुष गिना जाता है। लोग बनियों को कायर कहते हैं। किन्तु सभी बनिये कायर होते हैं, यह बात सत्य नहीं है। बनियों को कायर कहने की बात मुझे अच्छी नहीं लगती। क्योंकि मेरा जन्म भी बनिया जाति में ही हुआ है। मेरा आप लोगों से अनुरोध है कि आप कायरता को भगा कर वीर बनिये। महात्मा गांधीजी और सुदर्शन सेठ आपकी जाति के ही हैं। किन्तु उन्होंने ऊँचे दर्जे की वीरता दिखाकर दुनिया के समक्ष सुन्दर उदाहरण रखा है।

किसी भाई के मन में शंका उत्पन्न हो सकती है कि वीर तो वह कहलाता है जो अपने पास तलवार बंदूक रखता हो। किन्तु तलवार बंदूक या अन्य शस्त्र रखनेवाले का आधा बल तो वैसे ही क्षीण हो जाता है क्योंकि वह उन शस्त्र अस्त्रों पर आधार रख कर लड़ता है। सच्चा वीर वह है जो बाह्य साधनों का सहारा न लेकर स्वयं के आत्मबल से ही युद्ध करता है।

सुदर्शन आड़े टेढ़े मार्ग से नहीं जा रहा है। वह उस तरफ होकर जा रहा है जिधर अर्जुन का अड्डा है। वह यह

विचार करता हुआ जा रहा है कि यह शरीर एक न एक दिन अवश्य छूटने वाला है फिर भगवद् भक्ति के लिए यदि इसे छोड़ना पड़े तो इस में आनाकानी क्यों होनी चाहिये।

यह वीरों का मार्ग है। वीर वह होते हैं जो आपत्तियों से नहीं डरते। बल्कि आपत्तियों को निमंत्रण देते हैं और बड़ी बहादुरी से उनका सामना करते हैं। जो लोग सुख सुविधा या निरापद् परिस्थिति की ताक में बैठे रहते हैं उनसे कोई खास काम नहीं बन सकता। वे अपने शरीर को पंपोला करते हैं। और जरासी कठिनाई आने पर विचलित हो जाते हैं। ऐसे लोग कायर कहे जाते हैं।

मानलीजिये कि आपके पास एक बहुमूल्य रत्न है। आपको उसके कारण चोरों से भय भी है। एक विश्वस्त व्यक्ति आपसे उस वक्त यह कहता है कि यह रत्न मुझे दे दो। मैं इसे सुरक्षित रखूंगा और द्विगुणित करके वापस लौटा दूंगा। क्या आप ऐसे सुन्दर अवसर को हाथ से जाने देंगे? कदापि नहीं। इसी बात को जरा अपने शरीर पर लागू कीजिये। यह शरीर रूपी रत्न, आधि व्याधि और उपाधि रूपी चोरों से घिरा हुआ है। यदि इसको परमात्मा की सेवा में समर्पण कर दिया जाय तो कितना भला हो सकता है। हाड मांस के शरीर के बदले दैवी शरीर के बदले दैवी शरीर भी प्राप्त हो सकता है।

सुदर्शन को आते देखकर अर्जुन विचारने लगा कि यह कौन वीर पुरुष है जो बेधड़क इधर चला आरहा है। मैंने

इतने पुरुषों का वध किया मगर इतनी निर्भयता से आते किसी को न देखा। जो आये वे सब हाथ जोड़ते और क्षमा मांगते ही आये। मैंने उन कायरों को मार ही डाला किसी को नहीं छोड़ा। यह निर्भय होकर आरहा है किन्तु मेरे हाथों में से यह कैसे बच सकता है अभी इसका सफाया किये देता हूं।

इस प्रकार विचार करता हुआ अर्जुन हाथ में के मुद्गर को घुमाता हुआ सुदर्शन की तरफ चला। सुदर्शन और अर्जुन की मूठ भेड़ को कई लोग दूर दूर खड़े खोकर देख रहे थे। कई मन में सुदर्शन की रक्षा की कामना कर रहे थे और कई मरने की। किन्तु शास्त्र कहता है कि सुदर्शन अर्जुन को निकट आते देखकर भी निर्भय ही बना रहा। उसका एक रोम भी चलित नहीं हुआ। सुदर्शन के मन में यही भावना काम कर रही थी कि यह मेरा परिक्षक है। आज तक मैंने शरीर और कुटुम्ब को अपनी आत्मा से भिन्न मानने का पाठ याद किया था उसकी आज यह परिक्षा ले रहा है। मैं वस्तुतः भगवान् का भक्त हूं या इस शरीर और कनक कामिनी का। इस बात की परीक्षा है। मुझे धर्म कीही शरण लेनी चाहिये। इस पर तनिक भी क्रोध न आना चाहिये।

इस प्रकार निश्चय करके पृथ्वी को उत्तरासन से साफ करके सुदर्शन पालथी मार कर स्थिरासन से बैठ गया। उसने अर्हन्तों की साक्षी से कहा कि हे भगवन्! अर्जुन के प्रति मेरे रोम में भी क्रोध न आने पाये, मैं इसे अपना हितैषी मित्र मानूं यह भावना बनी रहे। इसके उपरान्त उसने अठारह पापों का

सर्वथा त्याग भी किया। यदि शरीर छूट गया तो सर्व पाप का त्याग है।

सुदर्शन की यह निश्चलता देखकर अर्जुन का क्रोध और अधिक वढ़गया। निकट आकर वड़े जोश से उसने मुद्गर ऊंचा उठाया। किन्तु सुदर्शन की आध्यात्मिक शक्ति के सामने बेचारा काष्ट का बना मुद्गर ऊपर ऊठा ही रह गया, नीचे न गिर सका। आप श्रोताजनों को आश्चर्य होगा कि ऐसा कैसे हो सकता है। आप सच्ची आध्यात्मिकता से दूर पड़ गये हैं और इतर वाचन मनन में लग गये हैं। शास्त्र कथित इस कथा पर विश्वास लाना इसी कारण कठिन मालूम देता है। किन्तु इस घटना को सिद्ध करने के लिए अनेक प्रमाण हैं।

मैंने आप लोगों को मद्रास से चली ट्रेन को आंखों के तेज से रोक लेने वाले योगी की वात सुनाई थी। इसी प्रकार मेस्मेरिजम के प्रभाव से मनुष्य इतना कड़ा शरीर वना सकता है कि दस पांच आदमी उस पर कूदा करें तव भी उसका कुछ नहीं बीगड़ता। जव भौतिक वल से इतनी वातें हो सकती हैं तो आध्यात्मिक वल से मुद्गर ऊपर ही उठा रह जाय इस में क्या आश्चर्य जैसी वात है और क्यों इसे असंमभव माना जाय।

अर्जुन लाल लाल आंखे करके सुदर्शन के समक्ष खड़ा है। जिसमें रजो गुण की अधिकता होती है उसकी आंखें लाल रहती है और जिसमें सतोगुण का आधिक्य होता है

उसकी आंखें शीतल और प्रेम भरी होती है। सेठ की आत्मा में से शांति कि शक्ति निकल रही थी और अर्जुन के शरीर में प्रविष्ट यक्ष की आत्मा में से क्रोध की शक्ति निकल रही थी। किन्तु सेठ की शक्ति ने यक्ष की शक्ति को परास्त कर दिया जो शक्ति प्रबल होती है वह अपने से कमजोर को हरा देती है।

यक्ष शांत होकर विचारने लगा कि यहां मेरी दाल गलने वाली नहीं है। यह सेठ तो भगवान् बन रहा है, भगवान् की शक्ति को अपना रहा है। वहां मेरी आधिदैविक शक्ति क्या काम कर सकती है। वह घबराया और अर्जुन के शरीर से निकल कर भाग गया। यक्ष के निकल भागते ही अर्जुन धड़ाम से नीचे गिर पड़ा। अर्जुन कई दिनों से भूखा है। वह बहुत कृष हो गया है। जो कुछ उत्पात हुआ था वह तो यक्ष के बल से था। यक्ष के चले जाने से अर्जुन नीचे गिर पड़ा।

अर्जुन को इस प्रकार गिरते देखकर सुदर्शन ने ध्यान खोला और उस पर दया लाकर उसे ऊंचा उठाया। यदि कोई साधारण व्यक्ति होता तो गिरने पर एक लात और लगाता। अक्सर देखा जाता है कि गिरे हुए पर लात लगा कर लोग बड़े प्रसन्न होते हैं। किन्तु हीन मनोवृत्ति वाले लोगों का ऐसा काम होता है। कमीने लोगों में और उच्चमानस के व्यक्तियों में यही तो अंतर है कि बड़े आदमी गिरे हुए को सहारा देते हैं और तुच्छ प्रकृति वाले एक लात और मार

देते हैं। सुदर्शन उच्च प्रकृति वाला महापुरुष था उसने अपने स्वभाव के अनुकूल काम किया।

अर्जुन ने सुदर्शन की ओर देखकर पूछा कि आप कौन हो और कहां जा रहे हो? सुदर्शन ने अपना परिचय देकर बताया कि मैं श्रमण भगवान् महावीर के दर्शन करने जा रहा हूं। अर्जुन ने कहा, सेठ! आपका देव कैसा है और मेरा देव कैसा है। मैंने अपने देव के प्रभाव से ११४१ व्यक्तियों का खून किया जिससे सारा नगर मेरा दुश्मन बन गया है। और आपका देव कैसा है कि जिसके प्रभाव से आपने मुझ शत्रु को भी मित्र बना लिया है। मैंने रजोगुण की सेवा की इसलिये रजोगुण प्राप्त हुआ और आपने सतोगुण की सेवा की इसलिए सतोगुण प्राप्त हुआ। मैं भी अब आपके साथ महावीर भगवान् के दर्शन करने चलूंगा। अब रजोगुण का त्याग करके सतोगुण को अपनाऊंगा। सुदर्शन ने कहा—चलो। मुझे इसमें क्या आपत्ति है। दोनों की इस जोड़ी को देख कर दूर वाले दर्शक आश्चर्य में पड़ गये। सच्चा कारण ज्ञात होने में किसी को देरी न लगी।

अर्जुन ने भगवान् के दर्शन करके दीक्षा अंगीकार कर दीक्षा अंगीकार करके अर्जुन माली बेले बेले पारणा करने बेले के पारणे के दिन भिक्षा लेने के लिए वह राजगृह में जाते। वहां लोग पुराना वैर याद करके कोई उनको यां देते और कोई थप्पड़ मार देते। कोई उनके पात्र में डाल देता और कोई उनको दूसरी तरह से सताते।

किन्तु सतोगुण का अभ्यास करने वाले अर्जुन तनिक भी क्रोधित न होते। यह विचार करते कि यहां के लोग कितने भले हैं जो मनुष्य मारने के बदले में मुझे केवल गालियां आदि देकर ही छोड़ देते हैं। मेरा अपराध बहुत बड़ा है, उसके प्रमाण में यह सजा बहुत छोटी है।

इस प्रकार की निर्मल भावना से अर्जुन ने अपना आत्म कल्याण साधा और अन्त में सिद्धि बुद्ध और मुक्त हो गये।

यदि आप लोग भी अर्जुन की तरह अपने स्वभाव पर काबू रखेंगे तो आपका और जगत् का दोनों का कल्याण होगा।

२०-८-३६
राजकोट

१७

संवत्सरी और चार भावनायें

श्री सुविधि जिनेश्वर वंदिये रे ।

प्रार्थना—

इस प्रार्थना में भक्त ने श्रीसुविधि नाथ भगवान् के यथावस्थित रूप का वर्णन किया है। भगवान् सुविधि नाथ नौवें तीर्थंकर हैं। आज पर्वाधिराज पर्यूषण का संवत्सरी दिवस है और आज ही इस पर्व का पूर्णाहुति दिन है। प्रतिदिन के प्रार्थना क्रम में आज नौवें तीर्थंकर की प्रार्थना करने का नम्बर है। यह सुन्दर सुयोग बड़े भाग्य से प्राप्त हुआ है संवत्सरी के परम पवित्र दिन नववें तीर्थंकर के गुणगान का योग विरल ही प्राप्त होता है। नौका अङ्क वहुत महत्त्व पूर्ण माना जाता

है। संख्याशास्त्र के जानकारों का कथन है कि यह अङ्क अभंग है। नौ के अङ्क को किसी भी संख्या से गुणा किया जाय गुणन फल से नौ का अङ्क निकलेगा ही।

जैसे नव दूनी अठारह। अठारह के एक और आठ को जोड़ने से नव संख्या होती है। नव तिया सत्ताईस। सत्ता-ईस के दो और सात को जोड़ने से भी नव संख्या होती है। नव चौक छत्तीस। छत्तीस के तीन और छः को जोड़ने से भी नौ होते हैं। इसी प्रकार आगे भी चाहे जितनी संख्या से गुणा करते जाइये उसके अंकों की जोड़ से नव का अंक निकल आता है। हमें इस नव के अङ्क को भगवान् सुविधि नाथ की प्रार्थना के साथ जोड़ना है। जिस प्रकार नौ का अंक किसी भी संख्या से गुणा किये जाने पर भी अन्त में परिपूर्ण ही रहता है इसी प्रकार किसी भी तरीके से और किसी भी भाषा में भगवान् सुविधि की प्रार्थना की जाय उनके स्व-रूप का रूप अखण्ड ही रहता है।

भगवान् सुविधि नाथ से हम लोगों का निकटतम सम्बन्ध है। जैन शास्त्र कहते हैं कि ए प्राणियो! घबड़ाओ मत। जरा धीरज से शान्त चित्त होकर इस बात पर विचार करो कि तुम्हारा और भगवान् का निकटतम सम्बन्ध कैसे है। तुम और भगवान् एकरूप कैसे हो इस बात पर मनन करो। तुम ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय रूप आठ कर्मों से घिरे हुए हो और सुबुद्धि नाथ ने इस आवरण को चीर कर दूर फेंक

दिया है। एक दिन सुबुद्धि नाथ भी तुम्हारी ही तरह कर्मरूप पिंजड़े में बंद थे किन्तु उन्होंने अपने पुरुषार्थ से उसको तोड़ फेंका है। इससे उनकी आत्मा सर्वतंत्र स्वतंत्र होकर मुक्त विचरण कर रही है। तुम्हारी आत्मा भी यदि पुरुषार्थ करे तो इस बंधन से मुक्त हो सकती है। दोनों के स्वरूप में कोई अन्तर नहीं है। शुद्ध संग्रह नय की दृष्टि से दोनों एक हैं। केवल कर्म-संस्कार का अन्तर है।

शुद्ध संग्रहनय की अपेक्षा से संसार के सब जीवों की आत्मायें परमात्मा के समान हैं। उनमें भी साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविकाओं की आत्मायें भगवान् से अत्यधिक समान हैं। क्योंकि इनकी आत्माओं पर लगा हुआ कर्मरूप आवरण हल्का पड़ चुका है। अतः प्रिय श्रावको! यदि आप लोग कायरता त्याग कर वीरता को अपनाओ और पुरुषार्थ करो तो सुबुद्धि नाथ के और अधिक निकट पहुंच जाओगे। आप अपनी पूर्व स्थिति पर विचार करो कि किस स्थिति में से किस स्थिति तक पहुंच गये हो। आप अनेक घाटियां और मंजिल ते करके अर्थात् छोटी मोटी अनेक योनियों में जन्म धारण करते करते बड़े शुभ योग से मानव देह में आये हो। यदि मानवदेह पाकर के भी भगवान् के समीप न पहुंच सके तो फिर कब पहुंचोगे? उदाहरणार्थ समझिये कि एक मनुष्य बड़ा गहन वन पार करके नगर के द्वार तक पहुंच गया है। जब नगर का द्वार खुला और उसमें प्रवेश करने का अवसर आया तब वह खुजलाता रह गया और द्वार को छोड़कर नगर के गोल कीले की कोट के पास पहुंच गया। अब वह फिर से

नगर की परिक्रमा करता है और न मालूम कब तक द्वार तक पहुंचेगा। पहुंचने पर भी संभव है कोई अन्य विघ्न उपस्थित हो जाय और नगर में प्रवेश न कर पाये।

इसी प्रकार आप लोगों को मानव शरीर प्राप्त है, साथ में श्रावक धर्म भी। पूर्वजन्म के सुकृत के फल से और इस जन्म के पुरुषार्थ के कारण आप मोक्ष के द्वार तक पहुंचे हुए हैं। अब यदि विषयवासना रूपी खुजली के कारण आप अवसर चूक जायं और मोक्ष के बदले अनेक जन्म जन्मान्तर रूपी गहन जंगल में पहुंच जायं तो ऐसा अवसर पुनः कब प्राप्त होगा यह कौन बता सकता है। हाथ में आये अवसर को खो बैठना बुद्धिमत्ता नहीं है। कई लोग सोचते हैं कि हमारा जन्म विषय सुख भोगने के लिए हैं। किन्तु ऐसा सोचना महान् भूल है। इस प्रकार की भूल से विषयों में जीवन हार कर किस गति में चले जाओगे और कितना पतन हो जायगा यह विचार करके ही ज्ञानियों ने मनुष्य जन्म को सफल बनाने का उपाय बताया है और ऐसी व्यवस्था की है कि मनुष्य जन्म व्यर्थ न चला जाय।

ज्ञानियों ने कहा है कि विषय कषायों से दूर रहो। यदि इनसे दूर न रह कर इनमें आसक्त हो गये तो मोक्ष के द्वार से दूर भटक जाओगे। फिर न मालूम कब ऐसा अवसर आयेगा।

आज संवत्सरी है। आज किसके मन में उत्साह और उमंग न होगी! छोटे छोटे बच्चों में भी उपवास करने का

उत्साह और हौंस देखा जाता है। छोटी बालिकायें भी अपने माता पिता के सामने उपवास करने की हठ करती हैं। वे कहती हैं कि माता? आज तो मैं अवश्य उपवास करूगी। किन्तु माता प्रेमवश यह कहती है कि बेटी तू भोजन करले तेरे से उपवास न होगा। मगर बेटी नहीं मानती है और उपवास कर दिखाती है।

मैं जब छोटा बच्चा था तभी मेरे माता पिता काल प्राप्त हो गये थे। मैं अपने मामा के यहां रहता था। संवत्सरी के अवसर पर मैं उपवास करने की जिद्द किया करता था। एक बार का प्रसंग मुझे याद है। संवत्सरी के दिन मैंने अपने मामीजी से कहा कि मैं उपवास करूगा। मामी ने कहा, भैया तुम से उपवास न होगा। भोजन करलो। मैं कब मानने वाला था जब तक कि पेट में चूहे न कूदने लगें। मामी चुप हो गई। जब कुछ दिन चढ़ गया और मुझे भूख लग आई तब फिर मामी ने कहा आओ तुम्हारा उपवास पला देऊं तुम्हारा उपवास हो चुका है। इस प्रकार कह कर मामी ने उपवास पला दिया। जब मैं कुछ बड़ा हो गया और समझ पकड़ ली तब इस प्रकार उपवास पालना छोड़ दिया और सच्चा उपवास करने लग गया।

कहने का मतलब यह है कि इस पवित्र पर्व पर छोटे से लेकर बड़े आदमी तक में बड़ा उत्साह होता है। बिना उत्साह के साहस का काम नहीं हो सकता। उपवास करना बड़े साहस का काम है। कायर लोग इस युद्ध में हार खा

जाते हैं। दान, तप और युद्ध ये तीनों काम वीरता के बिना करना शक्य नहीं हैं। वीर पुरुष ही दान दे सकता है, तपस्या कर सकता है और संग्राम में भाग ले सकता है। जो कायर है वह अपने हाथों से अपने धन का दान देकर सदुपयोग नहीं कर सकता। चोर भले उसकी सम्पत्ति चुरा कर ले जा सकते हैं इसे वह सहन कर लेगा किन्तु अपने हाथों से इच्छा पूर्वक दान नहीं कर सकता। तप भी कायर व्यक्ति नहीं कर सकता। वैसे अन्न न मिलने से या पराधीनता में भूखों मरना पड़े तो जबरन सहन करता है किन्तु सामग्री रहते स्वाधिनता से उपवास करना कायर के काबू के बाहर की बात है। उसकी पोची आत्मा इतनी हिम्मत नहीं दिखा सकती।

विषयों को त्याग कर अपनी आत्मा को वश में रखने वाला वीर ही तप कर सकता है। कई लोग तो इतने बहादुर होते हैं कि पर्यूषण के आठों दिनों में पानी के सिवा कुछ नहीं खाते पीते। कोई कह सकता है कि यह पर्व पर्यूषण पर्व है या पिंडचूसन पर्व है? जो शरीर के रक्त मांस का शोषण कर लेता है। उपवास से शरीर का मांस और लोही सूख जाते हैं और मनुष्य कमजोर हो जाता है। किन्तु यह कथन भूल भरा है। यह बात ठीक है कि उपवासों के आधिक्य से शरीर दुर्बल हो जाता है। मगर पारणे में सावधानी रखने से दुर्बलता चली जाती है और नफे में शरीर का विकार धुल जाता है। शरीर में जो कूड़ा कर्कट भरा पड़ा रहता है वह उपवास करने से साफ हो जाता है और शरीर शुद्ध तथा स्वस्थ बन जाता है। शारीरिक विकार नाश करने का उपवास ही अचूक

साधन है। बाद में वजन, प्रमाण से बढ़ जाता है। फिर भी कई लोग कहते हैं कि हमें लम्बे उपवास करना पसन्द नहीं है। तुमको पसन्द नहीं है तो न सही। मगर जो उपवास करते हैं उन्हें तो पसन्द है। तुम्हें दूसरों की निन्दा या टीका टिप्पणी करने का क्या अधिकार है दूसरों की निन्दा करना बुद्धिमत्ता नहीं है। खुद उपवास न करना और करे उसकी निन्दा करना कितनी मूर्खता है। उपवास करने से हानि तो होती ही नहीं है। किसी को असावधानी से यदि हानि हो तो इसमें उपवास का क्या दोष है? दोष असावधानी का है। जो काम अधिक लाभ का है वह किया जाना चाहिए। शरीर के क्षीण होने पर भी उपवास से अंत में जय प्राप्त होती है। जिसका अंत भला उसका आरंभ भी भला है। आत्मा को विजय दिलानेवाला यह व्रत आदरणीय है, यह निःसंशय है। कौरवों के पास सेना अधिक थी और पाण्डवों के पास कम। कौरवों की अधिक सेना क्या काम आई जो पराजय का कारण बनी। पाण्डवों की अल्प सेना अच्छी रही जिसने विजय प्राप्त करवाई। स्थूल शरीर क्या काम का जो विषय विकारों को बढ़ाता हो। इससे तो वह दुर्बल शरीर ही कहीं अच्छा है जो विषयों को घटाकर आत्मा को मजबूत बनाता है।

शास्त्र की बात पर विश्वास रखना चाहिये। शास्त्र में तप का बड़ा महत्त्व बताया गया है। तपस्या से किसी प्रकार की हानी नहीं होती बल्कि बड़ा लाभ होता है, यह शास्त्र में कहा गया है। किसी सज्जन के मन में यह शंका उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि क्या शास्त्र की बात आंख मींच कर मान

ली जाय या उसको अनुभव की कसौटी पर कस कर खरी उतरने पर मानी जाय। ठीक बात है। मैं भी यह नहीं कहता कि अपने बुद्धि के द्वार को बंद करके अंध श्रद्धा से किसी बात को माना जाय जो कि बुद्धि से तोली जा सकती है। हां, जो बात बुद्धि का विषय न हो सके उस पर बुद्धि न लड़ाना ही ठीक है। किन्तु जो बुद्धिगम्य वस्तु है उसमें अपने तर्क को लगाना उचित ही है। किन्तु किसी बात को स्वीकार करने में बुद्धि भी मंजूरी देती हो और शास्त्र भी समर्थन करते हो तब तो और भी अच्छा है।

मैं साधारण शास्त्र की बात नहीं कह रहा हूं वीतराग पुरुषों के द्वारा प्रणीत शास्त्र की बात कह रहा हूं। राग द्वेष से रहित पुरुषों ने संसार की हित कामना से प्रेरित होकर जिन शास्त्रों में अपने जीवन का अनुभव और वस्तु का वास्तविक स्वरूप वर्णित किया है उनकी प्रामाणिकता स्वीकार करने की बात पर मैं भार देना चाहता हूं। शांकर भाष्य में आई हुई वेद की एक श्रुति में कहा गया है कि केवल शब्द को ही न देखो किन्तु उस शब्द के कहने वाले की तरफ भी देखो। आगम प्रमाण को स्वीकार करते वक्त आगम के निर्माता का भी खयाल करो।

जैनागमों के निर्माता भगवान् महावीर के तरफ देखो वे वीतराग थे। उनके आगमों में भी यदि रागद्वेष हो तब तो उनकी वीतरागता में संदेह पैदा हो सकता है। किन्तु भगवान् रागद्वेष से रहित थे अतः उनका फरमाया हुआ आगम सर्वथा

प्रामाणिक है। यह बात दूसरी है कि कोई बात हमारी समझ में आती है और कोई नहीं भी आती। जो समझ में न आये उसके लिए नम्रता पूर्वक यही कहना चाहिए कि हे भगवन्! आपका कथन सर्वथा सत्य है, मान्य है, किन्तु मेरी समझ अभी उतना विकास नहीं कर पायी है कि हर बात को गले उतार सके। शास्त्र बहुत प्राचीन है। करीब ढाई हजार वर्ष पूर्व के रचे हुए है। कौनसी बात किस उद्देश्य को सामने रखकर कही गई है यह बात हमारे छोटे दिमाग में न बैठे तो भी इस श्रद्धा से मानना चाहिये कि जब मेरे ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय हो जायगा तब समज में आ जायगी। तप का अभ्यास करने से भी तप की उपयोगिता ज्ञात हो सकती है।

संवत्सरी कब से मनाई जाती है इस का कोई इतिहास उपलब्ध नहीं है। हां, समवायांग सूत्र में यह जिक्र आया है कि भगवान् महावीर ने आषाढ़ी पूर्णिमा का प्रतिक्रमण करके एक मास और बीस दिन बाद पर्यूषण मनाया। शास्त्र के इस वक्तव्य को ध्रुव मान कर तब से अब तक इस दिन को बहुत महत्त्व दिया गया है और इसी दिन ढ़ाई हजार वर्षों से प्रतिवर्ष संवत्सरी पर्व मनाया जाता है। दिगम्बर जैन दश लाक्षणी पर्व के प्रथम दिन को महत्त्व पूर्ण मानते हैं और श्वेताम्बर जैन पर्यूषण के अन्तिम दिन को किन्तु वह दिन प्रायः आषाढ़ी पूर्णिमा से पचासवां दिन ही होता है। दुर्भाग्य से जैन संघ में अनेक भेद प्रभेद हो गये हैं किन्तु भगवान् महावीर को सभी जैन एक दृष्टि से देखते हैं और उनकी भक्ति करते हैं। जैसे कि पाठशाला में जगह की कमी

से एक ही कक्षा के अनेक सेक्शन (विभाग) होते हैं किन्तु मूल उद्देश्य और अभ्यासक्रम एक ही प्रकार का होता है। वैसे ही भगवान् महावीर के झंडे के नीचे सारे जैनी एक हैं। यदि सम्प्रदाय भेद मिट जाय तब तो अच्छा है किन्तु यदि ऐसा न हो सके तब भी जैन के नाते-महावीर के अनुयायी होने के नाते सब एक हैं। इस दृष्टि से संवत्सरी पर्व सभी जैनों को मान्य है।

आज के दिन हर साधु साध्वी और श्रावक श्राविका के मन में यह भावना होनी चाहिये कि संसार के प्रत्येक प्राणी के साथ मेरा मैत्री भाव है। सब जीव मेरे मित्र हैं। जैन शब्द का अर्थ है रागद्वेष को जीतने वाले का अनुयायी। जो वीतराग का अनुयायी है उसकी किसी के प्रति बुरी भावना न होनी चाहिये। सब के प्रति मैत्री भावना रख कर सब को इस भावना में लाने का यत्न करना चाहिये। जैन धर्म व्यापक और उदार है। इस धर्म में इस प्रकार की संकीर्णता नहीं है कि यह अमुक के पालन करने योग्य है और अमुक के लिए नहीं। भंगी, भंगी का धन्धा करता हुआ और ब्राह्मण पूजा पाठ करता हुआ जैन धर्म का पालन कर सकता है। हां, इस धर्म का पालन करने के लिए जिन कार्यों का त्याग करना आवश्यक है उन्हें अवश्य छोड़ना पड़ता है। जैसे सप्त कुव्यसन छोड़ना, पन्द्रह कर्मादानों में बताये धन्धे त्यागना आदि। शराब या मांस की दूकान न की जाय तो इस में किसी की हानी नहीं है ये उपकारी धन्धे नहीं हैं बल्कि अपकारी धन्धे हैं। जनता को गुमराह करने वाले धन्धे हैं। जैन धर्म

अपकारी खातों को निकाल कर उपकारी खाते रखता है। और इस कारण राजा से लेकर रंक तक इसका पालन निर्बाध कर सकते हैं। बड़े से बड़ा राजा अपने राज्य का संचालन करता हुआ जैन धर्म का पालन कर सकता है। भगवान् महावीर के जमाने में गणराज्य की प्रथा थी। गणराज्य का यह नियम था कि जो उसमें सम्मिलित होता उसका कर्त्तव्य होता था कि निर्बल की सहायता करना और उसको अन्याय से बचाना।

उस गणराज्य के मुखिया चेटक महाराजा थे। जब उनका दौहित्र वहिल कुमार उनकी शरण में सहायता की अपेक्षा से आया तब चेटक महाराज ने यह उत्तर दिया था कि मैं तुम्हें अपना दौहित्र समझ कर सहायता नहीं करना चाहता। किन्तु अपना धर्म-कर्त्तव्य समझ कर सहायता करना चाहता हूं। किसी सबल द्वारा निर्बल के सताये जाने पर निर्बल की रक्षा करना मैं अपना धर्म समझता हूं। यदि कोणिक दूसरे दस भाइयों की तरह तुमको भी अपने हिस्से का राज्य देता हो अथवा तुम अपनी इच्छा से उसके बदले केवल हार और हाथी से ही राजी हो जब तो ठीक है। किन्तु यदि कोणिक न तो राज्य देता है और न हार हाथी रहने देता है तब तो उसका बड़ा अत्याचार है। अत्याचार सहन करना, जैन धर्म का सिद्धान्त नहीं है। जैन धर्म वीरता सिखाता है कायरता नहीं।

चेटक ने गणराज्य संघ के अठारह सदस्य राजाओं की सभा बुलाकर उनसे सलाह की कि क्या करना चाहिये।

कोणिक अपने भाई वहिल कुमार को उसका उचित राज्य का हिस्सा नहीं देता है और ऊपर से उसके पास रहे हुए हार और हाथी को भी छीनना चाहता है। वहिलकुमार हमारी शरण में आया है। न्याय की भिक्षा लेने के लिए आया है। आप लोगों की क्या सम्मत्ति है ? आप कहें तो इसे कोणिक के हवाले कर दिया जाय और यदि उसके हवाले नहीं करते हैं तो उसके साथ युद्ध करने के लिए तैयार होना पड़ेगा।

सब राजाओं ने मिलकर यह तय किया कि वहिलकुमार का पक्ष न्यायोचित है और कोणिक का पक्ष अन्यायपूर्ण है। न्याय को छोड़कर अन्याय का पक्ष लेना अनुचित है। न्याय खोने के बदले अपना नाम मिटा देना बेहतर है। इसलिए वहिलकुमार की रक्षा करनी चाहिये और उसका उचित हिस्सा दिलाना चाहिये।

मित्रो ! मैं आप से पूछता हूं कि राजाओं का यह विचार आस्तिकता पूर्ण है या नास्तिकता पूर्ण ? आज आध्यात्मिकता का नाम लेने में ही आस्तिकता मानी जाती है। किन्तु जो सच्ची आध्यात्मिकता को समझता है वह विशेष क्रिया का आह्वाहन करता है। क्रिया से दूर नहीं भागता। जो क्रिया से दूर भागता है वह जैन धर्मी नहीं है। स्वार्थत्याग कर निराश्रित की सेवा करना और इस प्रकार धर्माराधन करना जैन धर्म का मुख्य सिद्धांत है।

कोणिक के अत्याचार के विरुद्ध अठारह राजाओं ने मिलकर सामना किया। उस युद्ध में एक करोड़ और अस्सी

लाख मनुष्य काम आये। जैन शास्त्र के अनुसार इस हिंसा-काण्ड का पाप किसकी तरफ जाता है ? इस पाप का जवाबदार कोणिक है या चेटक ? कोणिक का लोभ और क्रोध इस हिंसा का कारण बना। हार और हाथी के लोभ ने कोणिक को युद्ध में प्रेरित किया। इसलिए शास्त्रानुसार इस हिंसा का जवाबदार कोणिक रहा। चेटक और अन्य राजाओं को अत्याचार हटाने के लिये लड़ना पड़ा। उनकी लड़ने की कोई ख्वाहिश न थी। ऊपर आई हुई बात को निपटाना पड़ा। शास्त्र में कहा है कि कोणिक छठी नरक में गया और अपने कर्त्तव्य का पालन और न्याय की रक्षा करने के कारण चेटक बारहवें स्वर्ग में गया।

कहने का सारांश यह है कि जैन धर्म में संकुचितता को स्थान नहीं है। इस लिए जाति पांति का भेदभाव किये बिना हर इन्सान जैन धर्म का पालन कर सकता है। आज सब के साथ मित्रता का नाता जोड़ कर सारे विश्व को इस पवित्र धर्म में लगाने का प्रयत्न करना चाहिये।

अब हम इस बात को देखें कि किस किस महापुरुष ने इस पर्यूषण पर्व की आराधना की है। भगवान् महावीर की तरह उनके पट्टधर श्री सुधर्मा स्वामी और उनके भी पट्टधर श्री जम्बू स्वामी ने इसी दिन इस पर्व की आराधना की है। उनके बाद के आचार्य भी इसी दिन इसी प्रकार आराधना करते आये हैं।

हमारी सम्प्रदाय के नायक, आचार विचार का पूरी तरह पालन करने वाले, साधु जीवन का उद्धार करने वाले धुरंधर आचार्य पूज्य श्री हुक्मी चंद जी महाराज ने भी इस पर्व की इस तरह आराधना की थी। पूज्य श्री ने इक्कीस वर्ष तक वेले वेले पारणा किया। वे सारे वर्ष भर एक ही पछेवड़ी से काम चलाते थे, चाहे वर्षा हो या शीत। वे तली हुई वस्तु न खाते थे। केवल तेरह वस्तुओं के उपरान्त अन्य सब वस्तुओं के खाने का उनको त्याग था। मिष्टान्न खाने का भी उनको त्याग था। ऐसे उत्कृष्ट आचारवान् वे महापुरुष थे। वे पर निन्दा करना न जानते थे। मुझे उन महापुरुष के साक्षात् दर्शन करने का सद् भाग्य प्राप्त नहीं हुआ। मैंने उनके सम्बन्ध में पूज्य श्री चोथमलजी महाराज से सुना है और उन्होंने भी अपने पूर्ववर्ती संतो से सुना था। वे कहते थे कि एक वार पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज जावद में विराजमान थे। वे शौचनिवृत्ति के लिए बाहर जंगल गये हुए थे। पीछे से एक साधु उनका दर्शन करने आया। पूज्य श्री को वहां न पाकर वह वापस लौट गया। पूज्य श्री के आने पर उन के किसी शिष्यने कहा कि महाराज! वह गेल्या (अर्ध विक्षिप्त) साधु आपके दर्शनार्थ आया था।

यह सुनकर पूज्य श्री ने कहा कि ऐसा नहीं कहना चाहिये। कौन जानता है कि पहले उसकी मुक्ति होगी या मेरी। किसी व्यक्ति की वर्तमान में हीन अवस्था देखकर उसका कभी अपमान नहीं करना चाहिये। किसी को हल्का बताना या कहना अनुचित है। माना कि इस वक्त वह गेल्या है,

समझ कुछ कम है। किन्तु कौन कह सकता है कि भविष्य में पुरुषार्थ करके वह हमारे से पहले ही मुक्त हो जाय। किसी के भविष्य का किसी को क्या पता। ज्ञानीजन किसी व्यक्ति का अपमान करना अनुचित मानते हैं, पूज्य श्री ने अपने शिष्य से कहा कि तुमने उसे गेल्या कहा इस का प्रायश्चित लो और अपनी आत्माको शुद्ध करो। कितनी विशालता थी उनमें।

पूज्य श्री पहले कहीं का चातुर्मास नहीं स्वीकार करते थे जहां उनकी इच्छा होती वहां जाकर चातुर्मास के लिए निवास कर देते थे एक वार पूज्य श्री चातुर्मास करने की इच्छा से जोधपुर पधारे। संघकी विनती के विना स्वेच्छा से पूज्य श्री पधारे थे। जोधपुर में विराजमान इतर संप्रदाय के साधु कहने लगे कि जहां ऐसे घोर तपस्वी और शुद्ध चारित्र सम्पन्न साधु महात्मा का चातुर्मास होने वाला हो वहां हमारी क्या पूछ होगी। अतः हमें कहीं अन्यत्र जाकर चातुर्मास करना चाहिये। पूज्य श्री को इस वात का पता लग गया कि मेरे कारण अन्य संतों को कष्ट होता है, तुरन्त वहां से विहार कर दिया और फलोदी जाकर चातुर्मास किया। यह वात रामनाथजी मुथा से मालूम हुई है।

ऐसे महान् आत्मा का हमारा यह संप्रदाय है। वे तो निःस्पृह थे। उनके मन में चेले या सम्प्रदाय वढ़ाने की तनिक भी इच्छा न थी। उसके पास जो चेले आये उनको उन्होंने अपने गुरु आचार्य श्री की नेश्राय में ही दीक्षित किये। अपना कोई चेला नहीं वनाया। फिर भी सच्चे त्यागी महात्मा की

कीर्ति को कौन रोक सकता है। उनके नाम से संप्रदाय चली और चल रही है। मुझे इस संप्रदाय का साधु कहलाने में बड़ा गौरव है।

पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज के बाद पूज्य श्री शिवलालजी महाराज हुए। उन्होंने इस सम्प्रदाय की बड़ी उन्नति की। मारवाड़ी लोग सारे भरतवर्ष में फैले हुए हैं अतः उनके द्वारा सारे भारत में उक्त दोनों आचार्य प्रसिद्ध हो गये।

पूज्य श्री शिवलालजी महाराज के पश्चात् पूज्य श्री उदयसागरजी महाराज हुए। वे जोधपुर के वीसा ओसवाल थे। उन्होंने दीक्षा दूसरी संप्रदाय में अंगीकार की थी किन्तु पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज की कठोर साधना से आकर्षित होकर इधर चले आये थे। उन्होंने भी इस संवत्सरी पर्व को पूर्वाचार्यों की परिपाटी के अनुसार मनाया था। मैं भगवान् महावीर से लेकर आजतक की आचार्य परम्परा की पाटावली नहीं सुना रहा हूं क्योंकि इसके लिए विशेष समय अपेक्षित है। दोपहर को समय मिला तो अन्य संत पाटावली सुनायेंगे।

चतुर्थ पाट पर पूज्य श्री चौथमलजी महाराज हुए। मैंने उदयसागरजी महाराज और चौथमलजी महाराज की सेवा की है। पूज्य श्री चौथमलजी महाराज की मुझ पर विशेष कृपा रही है। वे अनेक शास्त्र के ज्ञाता थे। उन्हें थोकड़े भी बहुत याद थे। आठ पहर में से छ पहर जागृत रहते थे

ज्यादा न सोते थे। केवल दो पहर नींद लेते थे। स्वाध्याय भी खूब करते थे। वे ऊनोदरी (अल्पाहार) करते थे जिसके चिन्ह उनके पेट पर थे।

पञ्चम पाट पर पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज हुए। उनके गुणों का वर्णन मैं क्या करूं। मेरे द्वारा उनके गुणगान करना छोटे मुख बड़ी बात होगी आप लोगों में अनेक व्यक्ति ऐसे होंगे जिन्होंने उनकी प्रत्यक्ष सेवा की है उनकी व्याख्यान धारा इस राजकोट शहर में भी बहुत प्रवाहित हुई है। यहां के संघ के उद्यान को पूज्य श्री श्रीलाल जी महाराज ने बहुत सींचा है। मैं भी उनके साथ यहां चातुर्मास करना चाहता था किन्तु बहुत इच्छा होने पर भी न कर सका। आप लोग बड़े भाग्यशाली हैं जिन्होंने यहां भी उनकी सेवा की और अन्यत्र जाकर भी। आपने उनकी सेवाएं की हैं, यह उत्तम है, मगर वे जो वस्तु प्रदान कर गये उसे सुरक्षित रखना आपका कर्त्तव्य है। मैं भी उनकी देन को सुरक्षित रक्खुं यह मेरा परम कर्त्तव्य है। यह न समझिये कि पूज्य श्री मौजूद नहीं हैं। वे आज भी-अनेकों के हृदय में विद्यमान हैं। उनके उपदेश ने बहुतों के धर्म की रक्षा की है।

पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज के बाद मेरा नम्बर आता है। मेरे अवगुणों का मैं क्या वर्णन करूं। मुझमें बहुत अवगुण व त्रुटियां हैं। न मालूम मुझमें क्या बात देखकर पूज्यश्री ने यह बोझा मेरे सिर पर रख दिया है। मैं पूज्य महाराज की आज्ञा लेकर दक्षिण देश में चला गया था और वहां शिष्यों

का अध्ययन जारी किया गया। उस समय मैं खान के हिवरे में था और पूज्य श्री उदयपुर में। उदयपुर से खान के हिवरे में पत्र आया जिसमें लिखा था कि जवाहरलालजी महाराज को युवाचार्य बनाया जाता है। अर्थात् पूज्य श्रीलालजी महाराज के बाद मुझे आचार्य नियुक्त किया जाता है।

मैं इस भार को अपने पर आता देख बहुत मुर्झाया। उस वक्त मुझे मुनि श्री मोतीलालजी महाराज और राधेलाल जी महाराज ने बहुत समझाया और आश्वासन भी दिया किन्तु मेरा साहस यह भार उठाने के लिए तैयार न हुआ। फिर सतारा के सेठ बालमुकुन्दजी और चन्दनमलजी आये। उन्होंने कहा कि यह बोझ स्वीकार कर लो। मैंने कहा कि मेरी ऐसी शक्ति नहीं है कि यह भार मैं झेल सकूं। बड़े ऊहापोह के बाद मैंने इतना स्वीकार किया कि मैं रूबरू पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित होकर उनके समक्ष अपनी कठिनाई रखूंगा और तब वे जो कहेंगे मंजूर करूंगा। मुझे दक्षिण से लौटने में देरी हो गई तो भीनासर के सेठ बहादुरमलजी बांठिया और रतलाम के सेठ वर्धमानजी पितलिया आये और मुझे कहने लगे कि देर क्यों कर रहे हो। जल्दी पधारो।

मैं रतलाम आया। वहां मैंने पूज्य श्री से अर्ज की कि मुझसे यह गुरुतर भार न उठाया जायगा। इस पर पूज्यश्री ने फरमाया कि इस बात की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। मैंने सब इन्तजाम कर दिया है। तू मेरा कहना मान और मैं कहूं वह कर। इस प्रकार पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज ने संप्रदाय की जिम्मेवरी का काम मुझ पर डाल दिया।

मैंने दक्षिण, मालवा, मेवाड़ और मारवाड़ में बहुत समय बीताया है। दिल्ली की ओर भी मैं विचरा हूं। काठिया-वाड़ बाकी रह गया था सो यहां के लोगों के आकर्षण से इधर भी आना पड़ा। आप लोगों के अति आग्रह के उपरान्त भी बीकानेर की तरफ जाने का विचार अधिक था। किन्तु संत सूरजमलजी और सिरेमलजी ने मुझे इधर आने के लिए बहुत उत्साहित किया। उन्होंने कहा कि जीवन का क्या भरोसा हैं। श्रावकों की आशा पूर्ण करनी चाहिये। इसके उपरान्त दुर्लभजी भाई ने भी वार वार कई पत्र मेरे पास भेजे जिनमें लिखा था कि एक लाख श्रावकों की इज्जत बचानी है तो सब काम और सब देश छोड़ कर इधर पधारो। इन सब कारणों से मैं इधर आया हूं। यहां के संघ के सेक्रेटरी ने विनती के वक्त यह बात कही थी कि विहार में यहां के आदमी आपके साथ रहेंगे जिससे मार्ग में कठिनाई न रहेगी। इस पर मैंने कह दिया था कि ऐसा करने की आवश्यकता नहीं है, दूसरों के सहारे रहना ठीक नहीं है। हम अपने पुरुषार्थ के बल पर ही विचरेंगे। मुझे रोटी नहीं चलती है। रोटी खाने का त्याग नहीं है। किन्तु रोटी हजम नहीं होती है। कभी कभी अन्य साधन के अभाव में थोड़ी रोटी भी खा लेता हूं। इसलिए मेरे शरीर का निभाव होना कठिन कार्य था। फिर भी संतों की परिचर्या और सावधानी से मैं यहां तक आ पहुंचा हूं। मुनि वक्तावरमलजी की सेवा विशेष उल्लेखनीय है। मुनि चांदमलजी भी पालनपुर से साथ हैं। इनसे भी मुझे बहुत सहायता प्राप्त हुई है।

मोतीलालजी संत बहुत त्यागी हैं। इन्होंने छती संपत्ति को त्याग कर दीक्षा ग्रहण की है। ये मलकापुर कॉन्फरंस के स्वागताध्यक्ष रहे हैं। इनके भाई दूकान चला रहे हैं। इनको मोक्ष जाने की बड़ी उत्कंठा है। इनके रोम रोम में वैराग्य भरा है।

फूलचन्दजी संत को आप देख ही रहे हैं। किस शांति के साथ ये तपस्या कर रहे हैं। आज इनको पंद्रह दिनों की तपस्या है।

श्रीमलजी, चुन्नीलालजी और गोकुलचन्दजी साधू गूगलिया परिवार के हैं और कुड़गांव (दक्षिण) के निवासी हैं। इन लोगों ने बड़े वैराग्य से दीक्षा स्वीकार की है सूरजमलजी संत भी इन्हीं के सम्बन्धी हैं जो बहुत तपस्वी और सेवाभावी हैं।

ये सब सन्त मेरी सहायता करने वाले हैं। सन्त सहायता करते हैं किन्तु सतियों का मामला बड़ा कठिन होता है। मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि यहां की सतियों के सम्बन्ध में सिवा ज्ञान ध्यान के और कोई बात सुनने में नहीं आई। मैं इनसे यही कहता हूं कि हर समय इसी प्रकार ज्ञान ध्यान में मस्त रहें और आदर्श व्यवहार करके शांति रखें।

अब श्रावकों की बात है। यहां के श्रावक मुझे हर प्रकार से शांति प्रदान करने में तत्पर रहते हैं। बाल वृद्ध और युवा सब मुझे प्रसन्न रखने की चेष्टा में रहते हैं। किसी ने

मुझे किसी काम के लिए आग्रह नहीं किया। मैं कहता रहा कि यहां का कोई खास रीति रिवाज या तरीका हो तो मुझे बताते रहना। तथा मैं यह भी पूछता रहा हूं कि मेरी कोई बात ठीक न लगे तो मुझे बताते रहना। किन्तु यहां के संघ के लोगों ने अपनी ही कमी बताई है। मेरी तथा मेरे शिष्यों की कोई खामी नहीं निकाली। यह संघ की गुणग्राहकता का परिचायक गुण है।

मणिभाई वनमाली शाह यहां के सुव्यवस्थित संघ के सेक्रेटरी हैं। इनको भारत सरकार की तरफ से राव साहब की उपाधि भी मिली हुई है तथा पेंशन याफ्ता भी हैं। फिर भी ये तहदिल से संघ की सेवा करते हैं। सेवा के वदले कुछ वेतन नहीं लेते हैं। सेवा की भावना होने पर भी छद्मस्थता के कारण इनसे किसी प्रकार की सेवाकार्य में त्रुटि हो सकती है। आप लोग इनकी त्रुटि पर ध्यान न देकर इनकी नियत की तरफ खयाल कीजियेगा।

राजकोट संघ का वंधारण देखकर मुझे कहना पड़ता है कि यदि ऐसा वंधारण मालवा मेवाड़ और मारवाड़ में भी होता तो समाज कितना सुसंगठित और व्यवस्थित होता। सम्प्रदाय भेद होने पर भी संघ के वंधारण में बंधे रहना और उसके नियमों का भंग न करना साधारण वात नहीं है। यहां के व्यक्तियों की सुसंकारिता का यह ज्वलन्त प्रमाण है।

काठियावाड़ सौराष्ट्र) देश की पूज्य श्री श्रीलाल जी महाराज भी प्रशंसा करते थे। वे युवा थे और उनकी मगज

शक्ति भी बड़ी तीव्र थी। मैं तो वृद्ध हो गया हूं और पेंशन के योग्य हूं। फिर भी मुझे बोलना पड़ता है। उपदेश करने का काम बड़ा कठिन है। कितनी भी सावधानी रखी जाय तब भी सब प्रकार के श्रोताओं को प्रसन्न रखना और उनकी रुचि के अनुसार बातें सुनाना बड़ा विकट काम है। किसी भाई को मेरे न चाहते हुए भी अनजान में मेरे शब्दों से दुःख हो सकता है। मेरी इच्छा नहीं रहती कि मेरे कारण किसी का दिल दुःखे। किन्तु फिर भी किसी को दुःख हो सकता है। मैं अन्तःकरण से उन भाइयों को तथा सबको खमाता हूं।

यहां की बहिनें बड़ी विवेक शीला मालूम देती हैं। मालवा, मेवाड़ और मारवाड़ की अपेक्षा यहां की बहिनें अधिक कार्यदक्ष और सावधानी पूर्वक काम करने वाली हैं। अहिंसा धर्म का पालन वहीं होता है जहां सफाई होती है। कूड़ा करकट इकट्ठा कर रखना. शाक दाल आटा आदि सड़ाना जैन धर्म के सिद्धांत से प्रतिकूल है। ऐसा करने से जैन धर्म का पालन नहीं होता। अहिंसा धर्म सफाई और पवित्रता से पलता है। यहां की बहिनें पवित्रता और सफाई पर अधिक ध्यान देती हैं अतः इस विषय में उनको कुछ कहने की आवश्यकता नहीं मालूम देती। किन्तु फैशन के सम्बन्ध में मुझे बहनों से कुछ कहना है।

बहनों को विचार हो सकता है कि महाराज तो हमारी टीका टिप्पणी करते हैं। किन्तु मैं बहनों की टीका कैसे कर

सकता हूं। बहनों का हम पर बड़ा उपकार है। यदि बहनों की सहायता न हो तो हम साधु लोगों का तीन दिन के लिए टिकना भी दुष्कर हो जाय। फिर भी जिन को मैं मा बहिन और पुत्री के समान मानता हूं उनको फैशन में जकड़ी हुई देखकर कुछ कहने से अपने आपको रोक नहीं सकता। मेरी मां वहिनों की फैशन के कारण इज्जत नष्ट होती हो, भला उस वक्त मैं चुप कैसे रह सकता हूं। माताओं और वहिनों? आप इस फैशन रूपी पिशाचिनी के चक्र से सदा दूर रहियेगा। ये बारीक वस्त्र और दूसरा साज आपकी चिरकाल से सुरक्षित कीर्ति में बटा न लगा पाये इस बात की सावधानी रखियेगा। आपको कई बार इस विषय में कुछ कहना पड़ा है। इसके लिए मैं आज इस पत्र पर क्षमा मांगता हूं।

चारों तीर्थों की हकीकत मैंने अपनी जबाबदारी की दृष्टि से रखी है। अब हमारी सम्प्रदाय की परम्परा के संबंध में जो कुछ कहना बाकी रह गया है, वह कहता हूं।

अजमेर साधु सम्मेलन के समय वहां पर एकत्रित सन्तों ने मुझ से व संघ से पूछे विना महात्मा गणेशीलालजी को मेरा युवाचार्य नियुक्त कर दिया था। तदनुसार जावद (मालवा) में उनको जगजाहिर रीति से युवाचार्य पदवी प्रदान करने पर भी सम्प्रदाय का भार मैं अपने पर रखूं या उनको सौंप दूं यह मेरी इच्छा व अधिकार की बात है। फिर भी मैंने गतवर्ष यह जाहिर कर दिया है कि संघ व सम्प्रदाय का ज्यादा काम युवाचार्य गणेशीलालजी ही करेंगे।

मेरी सलाह की जरूरत होगी तो मैं देता रहूंगा। युवाचार्य गणेशीलालजी वहुत ही योग्य, विनीत और सज्जन हैं। मेरे मुख से उनकी तारीफ नहीं की जा सकती। अजमेर में करीब चालीस पचास हजार लोग इकट्ठा हुए थे। सभी ने उनको युवाचार्य बनाये जाने में प्रसन्नता प्रकट की थी। इस समय उनका चातुर्मास उदयपुर (मेवाड़) में है।

अब मैं संक्षेप में यह बताना चाहता हूं कि इस पर्यूषण पर्व में क्या करना चाहिये। आज के पवित्र दिन में किस प्रकार की उज्जवल भावना करनी चाहिये, यह बताता हूं। समस्त धर्म कार्यों का मूल भावना में निहित है। मैं ऐसी भावना बताता हूं जिसका मनन करने से आत्मा का परमहित साधन हो सकता है। स्त्री पुरुष, राजा प्रजा, धनवान् और गरीब सब इस भावना का अभ्यास कर सकते हैं। गाय का दूध आवाल वृद्ध सबके लिए उपयोगी होता है। वह किसी के लिए हानिकर्त्ता नहीं होता। अमरिकन लोगों का कहना है कि ताजा बढ़िया और निर्दोष खुराक यदि कोई है तो गाय का दूध है।

जिस प्रकार गाय के चार पैर होते हैं और पैरों के बीच उबाड़ा होता है, उस उबाड़े में चार स्तन होते हैं, जिन से दूध निकाला जाता है। उसी प्रकार ज्ञानियों ने धर्म की चार भावनायें बताई हैं। जैसे गाय के चारों स्तनों के दूध में किसी प्रकार का अन्तर नहीं होता। चारों स्तनों से निकाला हुआ दूध समान रूप से उपयोगी होता है। वैसे ही चारों

भावनायें समानरूप से उपयोगी और लाभ दायक हैं। ये चारों भावनायें काम धेनु के स्तनों की तरह अमृत दायिनी हैं। वे भावनायें ये हैं:—

सत्वेषु मैत्रीं, गुणिषु प्रमोद
क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा परत्वम्।
माध्यस्थभावं विपरीत वृत्तौ
सदा ममात्मा विदधातु देव! ॥

अर्थ—सब प्राणियों में मित्रता की भावना हो, गुणिजनों पर (प्रमोद) प्रसन्नता की भावना हो, दुःखी जीवों पर दया रखने की भावना हो और हमारे प्रतिकूल चलने वालों पर मध्यस्थता रखने की भावना हो। हे जिनेन्द्र देव! ऊपर लिखे अनुसार सदा मेरी भावना वनी रहे, यह याचना है।

ये चारों भावनायें—मैत्री भावना, प्रमोद भावना, कारुण्य भावना और माध्यस्थ भावना-पर्यूषण पर्व तथा जीवन को सार्थक करने वाली भावनायें हैं लड्डू खाने या चायपार्टी उड़ाने के लिए आप कई मित्र बनाते होंगे किन्तु पर्यूषण पर्व में जगत् के समस्त प्राणियों के साथ मित्रता की भावना साधना है। यह शंका की जा सकती है कि संसार के सब जीवों को मित्र कैसे वनाया जा सकता है। मित्र बनाना कोई सरल काम नहीं है। जिसको मित्र वनाया जाता है उसका सुख दुःख अपना सुख दुःख मानना पड़ता है।

जीवन निर्वाह के लिये कई प्राणियों को कष्ट देना पड़ता है। यदि सबसे मैत्री करके बैठ जायं तो मुख की मक्खियां उड़ाना भी कठिन हो जाय।

शंका ठीक है। शंका होना स्वाभाविक है। शंका किये बिना तत्व समझ में नहीं आ सकता। शंका करने से विरोधी रुख भी समझ में आ सकता है। मैत्रीभाव रखने का अर्थ समझना चाहिये। नदी में अमाप पानी होता है। सब का सब पानी पिया नहीं जा सकता। किन्तु सारे पानी में प्यास मिटाने की क्षमता है। जिसको जितनी प्यास हो वह उतना पानी पिये। इसी प्रकार ज्ञानियों ने सर्वजीवों के साथ मित्रता रखने की बात कही है, वह सामान्य नियम बताया है। जिसकी जितने जीवों के साथ मैत्री निभ सके वह उतनों के साथ मैत्री भाव रखे। लक्ष्य सर्वजीवों के साथ मित्रता का होना चाहिये। शक्ति, सामर्थ्य और परिस्थिति के अनुसार लक्ष्य तक पहुंचने का प्रयत्न करते रहना चाहिये। यदि दृढ़तम भावना और प्रयत्न जारी रहा तो एक दिन पूर्ण लक्ष्य तक भी पहुंचा जा सकता है।

स्वयं भगवान् भी किसी नरकगामी जीव को उसके दुःखों से छुटकारा नहीं दिला सकते और न एकेंद्रीय जीव को वे इन्द्रिय बना सकते, जब तक कि उनके किये कर्म स्वयं भुगत न लिये जायं। किन्तु उनकी भावना तो यही रहती है कि सर्व जीव सुखी हों।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः ।

सर्व जीव कल्याणकारी काम करें और निरोग रहें । यह भावना पवित्रता की ओर ले जाती है । भगवान् की भावना पवित्र होती है इसलिए वे त्रिलोकीनाथ कहलाते हैं । आप लोग भी भावना शुद्ध रखो । किसी का अनिष्ट चिंतवन मत करो । आपके अनिष्ट चिंतन करने से सामने वाले का अनिष्ट हो भी सकता है और नहीं भी । इसमें संदेह को पूरा स्थान है । किन्तु अनिष्ट चिंतन से आपका अनिष्ट अवश्य होता है । यह निःसन्देह बात है । किसी की भलाई का विचार करने से क्या कुछ गांठ का खर्च करना पड़ता है ? यदि नहीं तो फिर इसी क्षण से परहित वांछा करना आरंभ कर दीजिये । आपका जीवन सफल हो जायगा । केवल हृदय की विशालता अपेक्षित है । यदि आपका दिल संकुचित है तो आप बहुत छोटे और गंदे दायरे तक सोचते हैं । और यदि आपका हृदय विशाल है तो उसमें अपनी तरह संसार के सब जीव स्थान पाते हैं और अपने हितचिंतन के समान उनका हितचिंतन भी अनिवार्य हो जाता है ।

सव्व भूयप्प भूएसु सम्मं भूयाइं पास ओ ।

संसार के सब प्राणियों में अपनी आत्मा को देखना और अपनी आत्मा में सर्व प्राणियों को देखना यह उदार सिद्धांत दशवैकालिक सूत्र में प्रतिपादित किया हुआ है । यही मैत्री भावना का रहस्य है ।

योग्यतानुसार मैत्रीभाव का विकास होता है। जिसकी आत्मा जितनी निर्मल है वह उतना ही लोगों का मित्र बनता है। मित्रता का आरंभ अपने घर से करना चाहिये। माता-पिता का किस पर उपकार नहीं है? सब लोग माता-पिता से पैदा हुए हैं। आसमान से कोई नहीं टपका है। प्रकृति के नियमानुसार सब मांबाप से उत्पन्न हुए हैं अतः उनका संतान पर महान् उपकार गिना जाता है। आप कितने ही प्रतिष्ठित और महान् क्यों न बन गये हों, माता-पिता का उपकार मानना पड़ेगा। उनकी सेवा भक्ति और धर्म में सहायता करना आपका परम कर्त्तव्य है। माता-पिता से यह प्रार्थना करनी चाहिये कि आप संसार का झंझट छोड़कर धर्म मार्ग में समय लगाइये। तथा उनका बोझा अपने पर लेकर उन्हें धर्म करणी करने के लिए अवसर प्रदान करना चाहिए।

इसी प्रकार माता पिता को यह विचार करना चाहिये कि हमने संतान को जन्म देकर कोई महान् उपकार नहीं किया है। हमारा उपकार तो तब है जब हम संतान को सुसंस्कारी बनाकर धर्म के मार्ग में लगा सकें। पुत्र के धर्म मार्ग में बाधक न होकर साधक बनना माता-पिता का कर्त्तव्य है। आपने पर्यूषण के आठों दिनों में अंतकृद्दशांग सूत्र सुना है। उसमें गजसुकुमार और एवन्ता मुनि का वृत्तान्त भी सुना है। क्या इन दोनों के मा-बाप न थे? अवश्य थे। साधारण मा-बाप नहीं किन्तु राजपरिवार के विशिष्ट व्यक्ति उनके मा-बाप थे। किन्तु उन्होंने अपने पुत्रों की परीक्षा करके उन्हें आध्यात्मिक मार्ग अपनाने की सहर्ष अनुज्ञा दे दी।

मित्रो ! इन आदर्श उदाहरणों की रोशनी में आप अपने चरित्र पर दृष्टि डालिये । मैंने देखा है, यदि कोई पुत्र ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने के लिए शादी नहीं करता है या सादगी से जीवन बीताने के लिए खादी पहनता है और मीर्च मसाले नहीं खाता है तो मा बाप रोते हैं और दुःख प्रकट करते हैं। कहने लगते हैं, महाराज ! हमारा पुत्र कुछ खाता पीता पहनता ओढ़ता नहीं है। संसार की मौज नहीं करता। वैरागी सा जीवन बीताता है। मगर यह मोह भावना है, यह मैत्री भावना नहीं है। माता पिता और संतान का कर्त्तव्य है कि एक दूसरे के मार्ग में बाधक न बनकर साधक बनना चाहिये।

इसी प्रकार पति पत्नी का क्या सम्बन्ध और कर्त्तव्य है, समझना चाहिये। यदि पत्नी यह सोचने लगे कि पति ने मेरे से विवाह किया है अतः अच्छा खाना अच्छा वस्त्र और बहुमूल्य दागीने देना उसका फर्ज है और पति सोचने लगे कि मैं शादी करके लाया हूं अतः हर प्रकार की सेवा करना पत्नी का कर्त्तव्य है तो गृहस्थ जीवन सुखमय बनने के बजाय महान् क्लेश का कारण बन जाय। दोनों अपना अपना फर्ज अदा करे यह उचित है किन्तु एक दूसरे पर फर्ज लादना और मजबूरी से फर्ज अदा कराना गृहस्थ जीवन के लिये कांटे बोना है। आज के अधिकांश पति पत्नियों में आपसी क्लेश देखा जाता है। यदि एक दूसरा एक दूसरे का फर्ज न देखकर अपना फर्ज देखने और अदा करने लगे तो जीवन बड़ा सुखमय बन जाय। त्याग भाव के बिना इतनी उत्कृष्ट भावना आना कठिन है। त्याग मार्ग अपना कर्त्तव्य करना

सीखाता है दूसरा क्या करता हैं और क्या नहीं करता इस पर ध्यान नहीं देता। यह पर्व त्याग मार्ग का अभ्यास करने के लिए है। यदि इसमें त्याग भाव सीख लिया तो आपका गृहस्थ जीवन स्वर्गीय जीवन बन जायगा। मैत्री भाव और त्याग भाव में कुछ अंतर नहीं।

मयणरेहा और जुगबाहू के दाम्पत्य जीवन पर नजर दौड़ाइये। महणरेहा पर कितनी आपत्ति थी। उसके पति पर उसके जेठ ने तलवार से वार कर दिया था। तलवार की चोट से जुगबाहू छटपटा रहा था और अपने भाई पर बहुत क्रोधित हो रहा था कि क्यों इस दुष्ट ने मुझे तलवार से घायल किया है। मगर मयणरेहा ने सोचा कि यह समय बड़ा नाजूक है। मेरे पति का अंतकाल सन्निकट है। एक एक क्षण का इस वक्त बड़ा मूल्य है। यदि इस वक्त पतिदेव के सामने मोह में डालने वाली बातें करूंगी तो इनकी गति अच्छी न होगी। उसने पति को गोद में उठा लिया और समझाने लगी कि यह अवसर बड़ा कीमती है। कृपानाथ! मेरी अंतिम सेवा स्वीकार कीजिये और अपना मरण सुधारिये। आप अपने भाई पर क्रोध करना छोड़ दीजिये। आप पर तलवार का वार आपके भाई ने नहीं किया है किन्तु मैंने किया है। यदि मैं आपकी पत्नी न होती और साथ में रूपवती न होती तो यह तलवार आपके कंधों पर क्यों पड़ती। मेरे रूपवान शरीर को देखकर आपके भाई के मन में विकार भाव उत्पन्न हुआ। उसमें आपको बाधक मानकर आपको मिटा देने का विचार जागा और तलवार गिरी। इसके पूर्व आप पर आपके भाई

का कितना स्नेह था जिससे प्रेरित होकर आपको युवराज बनाया था। मेरे रूप से मोहित होकर वह स्नेह भाव लुप्त हो गया। अतः वस्तुतः इस कांड की वास्तविक अपराधिनी तो मैं हूं।

मुझ अने बांधव ऊपरे हो, प्रीतम राग द्वेष परिहार।
सम परिणाम राखजो हो, प्रीतम उतरोगा भवपार।
हिरदे राखीजो हो प्रीतम मांगलिक शरणा चार॥

नाथ! मुझ पर तथा अपने बान्धव पर रागद्वेष न लाकर सम भाव धारण करो जिससे संसार समुद्र से पार उतर जाओगे।

एक आदर्श पत्नी का अपने पति के लिए कितना सुन्दर उपदेश है। पति पत्नी का ऐसा ही सुन्दर सम्बन्ध होना चाहिये। मयणरेहा ने आखीरी वक्त अपने पति के साथ सच्ची मित्रता निभाई है। इनके जीवन से पाठ ग्रहण करके आप लोग भी आपस में ऐसी मित्रता निभाओ। आज का दिन ऐसी मित्रता जोड़ने का है, सबसे सम भाव रखने का है। आप यदि अपने दुश्मन न बनेंगे तो कोई आपका दुश्मन नहीं बन सकता। दुश्मन कोई बन भी जाय तो बिगाड़ कुछ नहीं कर सकता। शत्रु को मित्र बनाने की कला सीखने का आज का दिन बड़ा शुभ है। यह अवसर बार बार नहीं आता है। ऐसा न हो कि आज तो खमत खमावणा कर लिए और कल फिर लड़ाई करली। जिससे एक बार मित्रता जोड़ली उससे

वापस शत्रुता करना उचित नहीं है। भारतीय विवाह पद्धति के अनुसार एक बार लग्न हो जाने पर जीवन पर्यन्त सम्बन्ध नहीं टूटता। जिसके साथ एक बार प्रेम कर लिया उसके साथ सदा के लिए मैत्री हो चुकी। सदा यह भावना भाते रहोः—

खामेमि सव्वे जीवा सव्वे जीवा खमन्तु मे।
मित्ति मे सव्व भूयेसु वेरं मज्झं न केणई॥

अर्थ—

मैं सब जीवों से क्षमा मांगता हूं। सब जीव मुझे क्षमा प्रदान करें। मेरी सब जीवों के साथ मैत्री है। किसी जीव के साथ शत्रुता नहीं है।

कितनी सुन्दर और उदार भावना है यह! किसी भी कार्य में दूसरे का दोष या अपराध न देखकर अपना दोष देखना मित्रता करने का प्रथम चिन्ह है। मैत्री भावना का चिंतन करते करते उत्कृष्ट रसायन आ जाय तो तीर्थंकर गोत्र का बंध हो सकता है। यह भावना मोक्ष की कूंजी है।

यदि युगबाहु क्रोधयुक्त भावना में मृत्यु पाता तो न मालूम किस अशुभ गति में जाता। किन्तु जीवन की सच्ची साथिन मयणरेहा के समयोचित उपदेश से वह पांचवें देव-लोक में गया। आप लोग अपने लिए विचार करो कि आपका दाम्पत्य सम्बन्ध स्वर्ग प्राप्त करने के लिए है या नरक। यदि स्वर्ग प्राप्त करने के लिए सम्बन्ध है, ऐसा मानते हो तो स्वर्ग

मुफ्त में नहीं मिला करता। उसके लिए बड़ी कीमत चुकानी पड़ती है। उसके खरा त्याग करना पड़ता है। जुगवाहू ने क्रोध का त्याग किया था जिससे वह स्वर्ग में गया। जब मदनरेखा पर आपत्ति आई तब देव बने हुए पति ने भी उसकी सहायता की है। मित्रता निभाना सरल काम नहीं है। त्याग भावना होना उसके लिए आवश्यक शर्त है।

मैंने घर से शुभारंभ करने की बात कही है। माता पिता और पति पत्नी का संबन्ध कुछ बताया जा चुका है। अब इसी प्रकार स्वामी सेवक का सम्बन्ध भी आदर्श होना चाहिये। अपने सेवकों के साथ मित्रता का नाता होना चाहिये। आप पर मजदूरों का कितना उपकार है क्या कभी इस बात पर विचार किया है? किसने ईंट पत्थर उठाये हैं? किसने चूना पकाया और किसने लोह लक्कड़ का काम किया है? जो सुन्दर वस्त्र आपने धारण कर रखे हैं उसके पीछे किसका श्रम है? किसने कपास बोया है और किसने उसके लिए भूमि साफ की है? किसने रूई बनाई और किसने धागे निकाले? किसने उसे बुना और किसने उसे रंगा है? तथा किसने सिलाई की है? जो अन्न, दूध दही और घी आप खाते हैं, उन सब के पीछे किन २ का महान् श्रम रहा हुआ है, क्या आपने कभी इन बातों पर ठंडे दिमाग से कुछ सोचा है? यह सब उन मजदूरों का परिश्रम है जिसके कारण आप आनन्दोपभोग करते हैं। क्या उन मजदूरों का आप पर उपकार नहीं है? अवश्य है। अतः उनके साथ सच्ची मित्रता का व्यवहार करो। इसी प्रकार जिन गायों और भैंसों का आप घी दूध खाते

हैं उनका भी आप पर उपकार है। उन पर भी मैत्री भाव रखो। जिन २ का आप पर उपकार है कम से कम उनके साथ तो मित्रता अवश्य रखो। मैत्री भाव रखने के लिए फेशन, आभूषण और नखरों का त्याग करना भी आवश्यक है।

आपने सूत्र के द्वारा जिन नव्वे महापुरुषों का जीवन चरित्र सुना है उनमें दस सतियों का चरित्र शिखर रूप है। जैन शास्त्रा नुसार पुरुषों की तरह स्त्रियां भी मोक्ष प्राप्त करने की अधिकारिणी मानी गई हैं, ये दसों सतियां कर्मरज मिटा-कर मोक्ष पधारी हैं। इन सतियों का गुण वर्णन करने के लिए हृदय उमड़ रहा है किन्तु समय की कमी के कारण आवेग को रोकना पड़ता है। ये सब सतियां राजा श्रेणिक की रानियां थीं। फिर भी जैनदीक्षा अंगीकार करके तपोमय जीवन वीताती थीं। इन सतियों में एक महासेन कृष्णा नामक सती ने आमिल वर्धमान नामक तप किया था। इस तप में एक आमिल एक उपवास फिर दो आमिल एक उपवास फिर तीन आमिल एक उपवास इस प्रकार चार पांच छः आदि बढ़ते २ सौ आमिल और एक उपवास करना होता है। जिस क्रम से बढ़ना होता है उसी क्रम से घटना भी पड़ता है। अर्थात् सौ आमिल करके एक उपवास फिर निन्यानवे आमिल करके एक उपवास, फिर इठयानवे आमिल करके एक उपवास। इस प्रकार एक आमिल और एक उपवास पर उतर आना पड़ता है।

इन सतियों ने इतना उत्कृष्ट तप क्यों किया था? राजा की रानी बन कर भिक्षुणी बनना इन्होंने क्यों पसन्द किया?

इन सब बातों का यदि आप ऐतिहासिक पुरावा ढूंढ़ना चाहो तो मिलना मुश्किल है। त्याग का वर्णन इतिहास में नहीं मिल सकता। इतिहास में लड़ाई का वर्णन मिलेगा। दो राजाओं का आपस में युद्ध हो तो उसका वर्णन इतिहास में मिल सकता है। किन्तु यदि दोनों आपस में लडे ही नहीं, समझदारी पूर्वक विना युद्ध के मामला तय करलें तब इतिहास में उनका जिक्र क्यों आने लगे। विशेष घटना घटे विना सामान्य बातों की कौन नोंध लेना पसन्द करेगा और किसीने नोंध ले ली तो याद कौन रखेगा। इस लिए त्यागियों के जीवन का इतिहास ढूढ़ने की झञ्झट में न पड़ कर उनका अनुसरण करने में लगना अच्छा है।

वौद्ध ग्रंथों में लिखा है कि सम्राट अशोक की वहिन भी भिक्षुणी वनी थी। वल्कि यह भी कहा जाता है कि उसके हाथ का लगाया हुआ पीपल का वृत्त अभी तक सीलोन में मौजुद है। जब अशोक की वहिन भिक्षुणी वन सकती है तो राजा श्रेणिक की रानियां भीक्षुणी वनीं, इस में संदेह करने की क्या वात है।

महासेनकृष्णा महारानी साध्वी वनकर खादी के वस्त्र पहिन कर घर घर भिक्षा मांगती फरती है। उत्तम व्यंजन देने पर कहती है कि ये मुझे नहीं चाहिये। मुझे रूक्ष भात हो तो दो। देने वाले को उस समय कैसा उत्साह और हर्ष होता रहा होगा! नीरस भात लाकर पुनः उन्हें पानी से धोकर रहा सहा स्वाद भी मिटा कर कितने संतोष और आनन्द के साथ

उन्हें खाती है ! जिन चांवलों को उनकी दासियां भी खाना पसन्द नहीं करती थी उनको कैसे आनन्द के साथ खाती हैं। पूर्व में भोगे हुए पक्वान और विविध व्यंजनों की याद उनके चित्त को विह्वल नहीं करती है। स्वेच्छा से इस तपोयज्ञ में अपने आप को होम दिया है। मानो पूर्व में दास दासियों की जो सेवायें लीं थीं उनका प्रायश्चित्त कर रही हैं। आज आपके लिए भी प्रायश्चित्त का दिन है। कम से कम इतना तो त्याग करो कि जिन गायों का आप दूध पीते हैं। उन गायों की चर्बी जिन वस्त्रों में लगती हैं, वे धारण न करो। मिल के बने वस्त्रों का त्याग करो।

दूसरी भावना प्रमोद भावना है। साधु, साध्वी, आचार्य उपाध्याय श्रावक श्राविका आदि जो भी गुणाधिक हैं, उन्हें देखकर प्रसन्न होना चाहिये। उनके गुणों का अनुमोदन करो।

तीसरी करुणा भावना है। दुःखी जनों की करुणा करनी चाहिये। सुखी और सम्पन्न व्यक्तियों की सेवा करने के लिए सदा तैयार रहते हो किन्तु जो दुःखी और अभावग्रस्त हैं उनको सेवा की खरी जरूरत है। वह डाक्टर कितना मूर्ख गिना जाता है जो बीमारों को दवा न देकर स्वस्थ लोगों को पकड़ पकड़ कर जबरन दवा पिलाता है। क्या वे लोग उस डाक्टर से कम मूर्ख हैं, जो भूखों को न खिलाकर लखपतियों को पकड़ पकड़ कर जबरदस्ती खिलाते हैं। एक भक्त कहता है:—

उत्तम जन्मा ये उनी रामा गेलो मी वाया।
दुष्ट पातकी शरण मी आलो सत्वर तव पाया।
व्यंजलें वहु लवण भंजने व्याया जेवाया।
क्षुधित अतिथि कदी नाही घेतला प्रेमे जेवाया॥

भक्त कहता है कि मेरा उत्तम जन्म व्यर्थ चला गया। मैंने व्याही और जमाइयों को मनुहार कर २ के खूब जिमाया। उनके जीम चुकने पर भी खूब आग्रह करने उनकी थाल में सिष्टान्न डाला और चूरण देकर उसे हजम करवाया। किन्तु उसी समय भूख के मारे मरता हुआ व्यक्ति भोजन मांगने आया उसे मैंने दुत्कार दिया और घर से बाहर निकाल दिया। भगवन् ! यह कैसी विडंबना है ! जगत् का यह कैसा उल्टा व्यवहार है !

गरीबों पर करुणा करने से सातावेदनीय कर्म का वंध होता है। मेघकुमार ने हाथी के भव में शशक की करुणा करके सम्यक्त्व प्राप्त किया था। मनुष्य के हृदय की विशालता इसी गुण से मापी जा सकती हैं।

चौथी माध्यस्थ या उपेक्षा भावना है। कई लोग धर्म और धर्म नायकों की निन्दा करते हैं। स्वयं अच्छे बनते हैं और दूसरों को बुरा बताते हैं। ऐसे लोगों के प्रति उपेक्षा भाव धारण करना चाहिये। ऐसा सोचना चाहिये कि मैंने जैन धर्म पाया है तो उसका सार सहन करना है न कि

दूसरों को कोसना या बदला देना । गज सुकुमार के सिर पर सोमिल ने जलते अंगारे रखे थे । श्री कृष्ण के पूछने पर भगवान् अरिष्ट नेमी ने इतना ही कहा था कि कृष्ण ! गजसुकुमार को एक आदमी सहायक मिल गया जिससे आज रात्रि में ही वे अपना कार्य साध गये । मुक्ति में पहुंच गये । क्या सोमिल ने सहायता करने की दृष्टि से गज सुकुमार के सिर पर अङ्गारे रखे थे ? नहीं । किन्तु गजसुकुमार मुनि ने समता भाव धारण करके उसे सहायक मान लिया । अनिष्ट में से इष्ट प्राप्त कर लिया । शत्रु को मित्र मान लिया जिससे अपना प्रयोजन सिद्ध कर गये ।

इसी प्रकार जो आपके निन्दक हों उनके लिए यह सोचना चाहिये कि ये स्वयं पाप करते हैं किन्तु मेरे लिए तो भलाई ही करते हैं । मेरे दोष प्रकट करके मुझे सावधान करते हैं और धर्म पर अधिक दृढ़ रहने की प्रेरणा देते हैं । बिजली का महत्त्व अंधेरे से है । सज्जनों का महत्त्व भी दुर्जनों के कारण वृद्धिंगत होता है । अपनी धर्म रूपी रोशनी बढ़ाओ, अंधेरा अपने आप हट जायगा ।

इन चारों भावनाओं को हृदय में स्थान दोगे तो धर्म रूपी कामधेनु आपके घर में ही है । चारों को न अपना सको तो किसी एक के अपनाने पर भी गाय के एक स्तन से दूध की तरह धर्मरूप अमृत प्राप्त होगा । जिससे इह लोक और परलोक दोनों सुधरेंगे ।।

२१-८-३६

राजकोट

१९

निर्बल के बल राम

जय जय जिन त्रिभुवन धनी ।

प्रार्थना—

यह दसवें तीर्थंकर भगवान् शीतलनाथ की प्रार्थना है। भगवान् शीतलनाथ की प्रार्थना करते हुए मन में क्या भावना होनी चाहिये, यह बताने के लिए भक्त कवि, स्तुति रूप में वाक्य धारा छोड़ते हैं। भक्तों की छोड़ी हुई वाक्य धारा वही काम करती है जो एक धारा दूसरी धारा के लिए करती है। जब पानी की एक धारा पर दूसरी धारा गिरती है तब पहिली धारा दूसरी को अधिक उत्तेजित करती है। शान्त पानी पर यदि कोई धारा गिरती है तो वह पानी में खलबली पैदा कर देती है। यह बात दूसरी है कि जैसी धारा होगी वैसी ही

हरकत भी पैदा करेगी किन्तु अच्छी या बुरी कोई न कोई हरकत किये बिना नहीं रहेगी। यदि हमारे शान्त हृदय में परमात्मा की चाह होगी तो भक्तों की छोड़ी हुई वाक्य धारा खलबली मचाये बिना न रहेगी।

भक्त कहता है कि भगवन्! तेरे गुणों का वर्णन कहां तक करूं? बड़े बड़े ऋषिमुनि भी तेरा गुण वर्णन करते करते हार खा गये तो मैं किस बिसात में हूं। वे भी नेति नेति कह कर रुक गये। आगे कुछ न कह सके। मन, बुद्धि और वाणी तीनों की तुझ तक पहुंच नहीं होती। फिर भी अपनी अपूर्णता बताने के लिए कुछ कह लेता हूं। मौन धारण न करके अपने टूटे फूटे शब्दों में तेरा स्वरूप वर्णन करने की चेष्टा करता हूं। नेति नेति अर्थात् तेरा स्वरूप इतना ही नहीं है और भी कुछ है। किन्तु मेरे पास शब्द नहीं हैं जिनके जरिये उस पर प्रकाश डाल सकूं। मैं अपूर्ण हूं तू पूर्ण है। तेरा वर्णन नहीं कर सकता अतः तेरी सेवा का फल ही बता देता हूं।

जय जय त्रिभुवन धनी।
करुणा निधि करतार, सेव्यां सुरतरु जेहवो,
वांछित फल दातार। जय जय० ॥

हे तीनों लोक के नाथ! तेरा जय जयकार हो। तू त्रिभुवन धनी है और मैं अपूर्ण हूं। मैं इस शरीर में सीमित हूं, इसमें रुका हुआ हूं। तू ज्ञान रूप से सर्वत्र व्यापक है। तेरा ज्ञान रूपी प्रकाश लोक और अलोक में फैला हुआ है।

तेरी जयकार इसलिए बोलता हूं कि तू कल्प वृक्ष के समान मनोवांछित फल देने वाला है। जैसे कल्प वृक्ष को कोई बंधन में नहीं बांध सकता कि तू अमुक को फल देना और अमुक को मत देना। वह सब को फल देता है। वैसे ही हे भगवान्! तू भी सब को फल देने वाला है तू किसी के बंधन में नहीं है।

भगवान् को कल्पवृक्ष कह देना सरल है मगर इस बात की संगति बैठाना उतना सरल नहीं है। यदि परमात्मा कल्पवृक्ष है तो कई लोग अन्न वस्त्र के लिए क्यों तरस रहे हैं? और यदि कोई अपनी मूर्खता से अपने लिए विष की चाहना करता है तो क्या परमात्मा विष भी प्रदान करता है? हां, यदि कोई विष की चाहना करता है तो उसे विष भी मिलना चाहिये। जो मुक्ति की कामना करे उसे मुक्ति और जो सांसारिक भोगों की कामना करे उसे भोग सामग्री मिलनी चाहिये। तब उसके लिए कल्प वृक्ष की उपमा ठीक बैठ सकती है।

इस का उत्तर यह है कि कल्पवृक्ष जड़ है और परमात्मा ज्ञानघन है। जड़ को हिताहित सोचने का ज्ञान नहीं होता। किन्तु चेतन परमात्मा यह जानता है कि जीव के लिए वास्तविक हितकारी क्या वस्तु है। कल्पवृक्ष जड़होने से अहितकारी वस्तु भी दे सकता है। किन्तु ज्ञानघन प्रभु अनिष्टकारी पदार्थ कैसे प्रदान कर सकता है। उदाहरणार्थ, माता पिता पुत्र को सब कुछ देते हैं किन्तु यदि कोई पुत्र अपनी ना समझी से

विष मांगे तो क्या वे देंगे ? पिता देने वाला है। किन्तु अपने पितृपक्ष को तिलाञ्जली देकर अनिष्ट वस्तु नहीं देता। इसी प्रकार परमात्मा भी सब कुछ देनेवाला है मगर ज्ञान पूर्वक जो कामना करता है उसकी मनोवांछा सफल होती है। जो भूखों मरते हैं वे अपने आलस्य और अज्ञान के कारण मरते हैं।

अब एक और प्रश्न खड़ा होता है कि क्या सचमुच परमात्मा कुछ देता है ? हां, परमात्मा प्रार्थी की मनोकामना पूरी करता है, इस में तनिक भी संदेह नहीं है। यदि परमात्मा कुछ न देता होता तो भक्त लोग उसकी प्रार्थना क्यों करने लगते। 'लोगस्स' स्तुति में कहा गया है—

आरूग्गं बोहि लाभं समाहिवरमुत्तमं दिन्तु ।

अर्थात् हे सिद्ध भगवन् ! मुझे आरोग्य, बोधि लाभ (सम्यक्त्व की प्राप्ति) और उत्तम समाधि प्रदान करो। यदि परमात्मा कुछ देता न होता तो इस स्तुति में आरोग्य आदि की मांग कैसे की गई है ? वह देता है इसी लिए मांग की गई है।

परमात्मा सब कुछ देता है किन्तु निमित्त रूप बनकर देता है। उपादान रूप बनकर नहीं देता। उपादान उसीका काम आता है जिसे कामना है। जिसका उपादान ठीक है उसे वस्तु मिल जाती है। अतः परमात्मा से वांछित पदार्थ प्राप्त करने वालों को अपना उपादान ठीक करना चाहिये। अपनी आत्मा में उसके लायक तय्यारी होनी चाहिये तभी परमात्मा देता है। आत्मा में जो शक्ति सोई हुई है उसे जगाने के लिए

परमात्म प्रार्थना की सहायता ली जाती है। किसी कार्य की सिद्धि न केवल उपादान कारण से होती है और न निमित्त कारण से। दोनों कारणों का योग मिलने पर सिद्धि होती है। दृष्टान्त के तौर पर समझियेगा कि आटा रखा हुआ है किन्तु रोटी तब तक नहीं बन सकती जब तक कि इतर साधनों का संयोग न हो जाय। आटा अपने आप रोटी नहीं बन जाता। उसके लिए कोई बनाने वाला होना चाहिये। आटा हो, साधन हो और बनाने वाला हो तब रोटी बनती है। इसका अर्थ यह हुआ कि कार्य की सिद्धि के लिए आटा समान उपादान हो, चूल्हा तथा वेलन चकला आदि की तरह साधन हो और रोटी बनाने वाली बाई के समान कर्त्ता मौजूद हो तब कार्य बनता है। यदि जीव स्वयं प्रयत्न करता है तो परमात्मा उसमें निमित्त बन जाता है। जिस वक्त जिस कारण का वर्णन किया जाता है उस वक्त उस पर भार दिया जाता है। इसका अर्थ यह नहीं होता कि दूसरे कारणों की उपेक्षा है। इस वक्त भक्त परमात्मा की प्रार्थना कर रहा है।

'सेव्यां सुरतरु जेहवो, वांछित फल दातार' (कहा है।)

यह जीव अनेक बार कल्पवृक्ष से भेंट कर चुका है। किन्तु परमात्मा की भेंट कभी नहीं कर पाया है। कल्पवृक्ष से पूरी होने वाली आशायें और इच्छायें पुनः उत्पन्न हो जाती हैं। किन्तु परमात्मा रूपी कल्पवृक्ष की एक बार भेंट कर लेने पर सारी इच्छायें सदा के लिए परिपूर्ण हो जाती हैं। अर्थात् इच्छा ही नष्ट हो जाती है। प्रभु ऐसा कल्पवृक्ष है कि वह

उससे भेंट करने पर मनुष्य के सारे विकार ही मिटा देता है। जिस प्रकार रोगी मनुष्य को इस बात का पता नहीं लगता कि डाक्टर की दवा पेट में पहुंचकर क्या २ काम करती है किन्तु उससे रोग मिट जाता है। उसी प्रकार परमात्मा की प्रार्थना भी हमारे अनजान में हमारे विकारो को मिटाती है और हमें निर्विकार बना देती है। उपमा देने के लिए अन्य वस्तु मौजूं न थी अतः कल्पवृक्ष की उपमा दी गई है।

परमात्मा की प्रार्थना से सब कुछ सिद्ध होता है। किन्तु प्रार्थना करने के लिए वीरता की जरूरत है। किस प्रकार की वीरता आवश्यक है इसके लिए कामदेव श्रावक के जीवन पर दृष्टि डालिये। कामदेव पर अनेक आपत्तियां और विघ्न उपस्थित हुए किन्तु उसने धर्म नहीं छोड़ा। वह सोच सकता था कि धर्म छोड़ देने पर सारे विघ्न और दुःख मिट जायेंगे किन्तु उसने ऐसे कायर विचारों को मन में स्थान नहीं दिया। उसने इस अवसर को अपनी परीक्षा का समय माना। यह देव यदि कष्ट देकर मेरी परीक्षा न लेता तो मैं धर्म पर दृढ़ हूं या नहीं इसका क्या पता लगता। जो परीक्षार्थी वर्ष भर तय्यारी करता है, वह यदि परीक्षा के ऐन मौके पर परीक्षक को या प्रश्नों को देखकर घबड़ा जाय तो वह कैसे उत्तीर्ण हो सकता है? कामदेव बेधड़क होकर परीक्षा के लिए तैयार है।

जब देव उसके शरीर के टुकड़े टुकड़े कर डालने की बात कहता है तब कामदेव यह सोचता है कि शरीर तो

विनाश होने के स्वभाव वाला है ही, एक दिन अवश्य छूट जाने वाला है। उसके यदि टुकड़े कर डाले जाएं तो इसमें मुझे कुछ डर नहीं है। मेरी अविनाशी आत्मा के टुकड़े न होने चाहिये। आत्मा के टुकड़े करने में इन्द्र भी समर्थ नहीं है। यदि मैं धर्म से विचलित हो जाऊं तो मैं स्वयं अपनी आत्मा का हनन करता हूं। इसलिए शरीर के नाश होने से न डरकर आत्मा को भय के भूत से सुरक्षित रखूं, यही मेरे लिए परम कर्त्तव्य है।' इस प्रकार विचार कर कामदेव धर्म पर दृढ़ रहा, जरा भी विचलित न हुआ।

इस कथा को इसी रूप में देखना चाहिये। किन्तु लोगों को धर्म की बातों पर बहुत कम विश्वास होता है अतः अनेक प्रकार के संदेह पैदा करते हैं। जैसे, वह देव सात आठ ताड़ वृक्ष जितना ऊंचा था और पौषधशाला इतनी ऊंची न थी फिर वह देव पौषधशाला में खड़ा किस प्रकार रहा होगा? शंका करने वाले इस बात को भूल जाते हैं कि कामदेव की परीक्षा लेनेवाला देव था, साधारण मनुष्य न था। देव में कितनी शक्ति होती है इसका भगवती सूत्र में जिक्र है। एक मनुष्य अपनी टांग ऊपर उठाकर नीचे रखे उतनी देर में देव मनुष्य का सिर काटकर उसका चूरा चूरा करके एक एक परमाणु उड़ाकर वापस उन परमाणुओं को समेट कर यथावस्थित सिर को जोड़ सकता है। इसलिए खड़ा रहने में कोई बाधा नहीं है। जिसे दैविक शक्ति में ही विश्वास न हो उसका समाधान करना कठिन है। जिसे शास्त्रों पर विश्वास

है उसके मन का समाधान हो जाता है। देव अपनी शक्ति से छोटा बड़ा आड़ा टेढ़ा कैसा भी रूप बना सकता है।

इस कथा का उद्देश्य धर्म पर किस हद तक दृढ़ता रखना, यह बताना है। आप लोग मन से भूत की कल्पना करके उससे भी डर जाते हैं। किन्तु कामदेव के सामने ऐसा पिशाच आया जिसके रूप का वर्णन सुनकर भी कमकमी छूट सकती हैं फिर भी वह निडर रहा और धर्म से चलित नहीं हुआ। इस कथा का उद्देश्य धर्म पर दृढ़ रहने का आदर्श पूर्ण पाठ पढ़ाना मात्र है। इस कथा को इसी दृष्टि से देखना चाहिये और किसी प्रकार का संदेह न करना चाहिये। संदेह किया जाता है अतः इस विषय में कुछ और कहता हूं।

आजकल मकानों में खुली जगह बहुत कम रखी जाती है। पूर्व काल में मकान में चौक बहुत रखा जाता था। पुराने ढांचे के मकानों में अब भी चौक देखा जाता है। यदि वह पिशाच खुली जगह में खड़ा रहा हो तो सात आठ ताड़ जितना शरीर क्या इससे भी कितना ही अधिक ऊंचा क्यों न हो, समा सकता है। खुला हुआ चौक पौषधशाला के अहाते में होने से पौषधशाला ही कहा जायगा। इसी प्रकार उस देवने खुली जगह में हाथी का रूप बनाकर सूंड से काम देव को खींचकर ऊपर उछाला हो तो क्या यह न कहा जायगा कि हाथी ने पौषधशाला में कामदेव को ऊपर उठाकर उछाला था। यह शंका भी निर्मूल है कि शरीर के टुकड़े कर डालने पर कामदेव जिन्दा कैसे रहा होगा। कारण कि देव शक्ति का भगवती

सूत्र प्रतिपादित स्वरूप पहले बताया जा चुका है। आजकल के डाक्टर भी सिर की खोपड़ी उतार कर उसका ऑपरेशन करके वापस जोड़ देते हैं फिर भी मनुष्य जिन्दा रह जाता है, ऐसा सुनने में आया है तो भला देव शक्ति से शरीर के टुकड़े होकर पुनः जुड़ जाना और जिन्दा रह जाना कौन बड़ी बात है।

अब यह सवाल खड़ा होता है कि हाथी और सांप कैसे बोले और उनकी बोली कामदेव समझा कैसे? कोई मनुष्य बोलता हो तो आश्चर्य नहीं होता किन्तु कुत्ता, हाथी और सांप बोलने लगें तो आश्चर्य और संदेह दोनों होने लगते हैं। मगर वह तो दैवी शक्ति थी जो विविध रूप धारण करके काम देव को धर्म से डिगाना चाहती थी। इसमें संदेह को कहां स्थान है। इन पशुओं के रूप में देव शक्ति बोल रही थी कि हे भो! कामदेव! यदि तुम धर्म न छोड़ोगे तो तुम्हारे टुकड़े कर दिये जायंगे। और सच मुच टुकड़े कर भी डाले गये। मगर वीर कामदेव धर्म पर दृढ़ रहा।

वर्धमानजी सेठ कहते थे कि हम कलकत्ता में सीनेमा देखने गये। प्रवेश करते ही ऐसा मालूम हुआ कि कोई स्त्री गायन कर रही है। मगर निकट जाने पर मालूम हुआ कि फोटो बोल रहा है। इस में विचारणीय बात है कि क्या फोटो बोलता है या उसके पीछे रही हुई कोई दूसरी शक्ति बोलती है? फोनोग्राफ की चूड़ी बोलती है या उसके पीछे रही हुई कोई दूसरी शक्ति बोलती है? वस्तुतः ध्वनि का अनुकरण संग्रहित

किया हुआ रहता है जो वैसी ही आवाज पुनः पुनः निकाला करता है। इसी प्रकार हाथी या सांप नहीं बोलेथे किन्तु उनके पीछे रही हुई दैवी शक्ति बोली थी।

अब यह शंका और बच गई है कि कामदेव बड़ा सम्पन्न व्यक्ति था। उसके अनेक नौकर चाकर थे। वे यह कोलाहल सुनकर उसकी रक्षा या सहायता करने क्यों नहीं आये? यह शंका डरपोक वृत्ति के कारण पैदा होती है। आज कल लोग दूसरों के संरक्षण में रहते हैं और अत्यन्त भीरु बन चुके हैं अतः उस जमाने के लोगों के लिए भी वैसी ही कल्पना करते हैं। मगर उन्हें ध्यान में रखना चाहिये कि आज की तरह पहले के लोग डरपोंक न होते थे। जो वीर होते हैं वे दूसरों की सहायता नहीं लिया करते। कामदेव स्वयं वीर था और महावीर भगवान् का अनुयायी था। जिसके आदर्श भगवान् महावीर ने इन्द्र की सहायता को भी ठुकरा दिया उनका चेला नौकरों की सहायता लेना कैसे पसंद करता?

रघुवंश का वर्णन करते हुए कवि कालीदास ने बताया है कि दिलीप राजा स्वयं ही गाय की निगरानी करने जाता था। क्या उसके नौकर चाकर न थे जो स्वयं वह जाता था? किन्तु

स्ववीर्यगुप्ता हि मनुप्रसूतिः

वीर लोग अपने ही पराक्रम से सुरक्षित रहते हैं। दूसरों की मदद लेना उन्हें अच्छा नहीं लगता यही कारण है

कि नौकरों की मदद की कामदेव ने इच्छा तक नहीं की। दूसरी बात उस ज़माने के लोग एकान्त में पौषधशाला में बैठकर धर्म जागरण करते थे, जहां संसार का कोलाहल सुनाई नहीं पड़ता था। आनन्द श्रावक वाणिज्य ग्राम में रहता था। किन्तु उसकी पौषधशाला कोलाक सन्निवेश में थी। एकान्त स्थान को पहले पसंद किया जाता था, यह न देखा जाता कि वक्त वे वक्त वहां कौन सहायता करेगा। कायर लोग सुविधा और सहायता का खयाल पहले करते हैं। मगर मित्रो! मैं पहले बता चुका हूं कि ईश्वर की आराधना और धर्म का सेवन वीरता के बिना होना संभव नहीं है।

युद्ध में जाते वक्त योद्धा यह नहीं सोचा करता कि मैं भाग कर आऊंगा तो कहां रहूंगा और कहां छिपूंगा? साधु बनने वाला यह नहीं सोचता कि यदि साधुपना न पला तो कैसे गुजारा करूंगा। वह तो कृतसङ्कल्प होकर कार्यारंभ करता है। वीरों को ऐसी कायर कल्पना नहीं हुआ करती। मतलब कि कामदेव की पौषध शाला एकांत स्थान में रही होगी जहां के शब्द सुनना संभव न रहा होगा। और इसी लिए नौकर दौड़कर न आये होंगे। नौकरों के आने पर भी कामदेव किसी की सहायता स्वीकार करने वाला कहां था।

अब यह प्रश्न खड़ा होता है कि महाराज! आपने शुरु में प्रार्थना करते हुए बताया है कि भगवान् कामधेनु के समान हैं और सब के कष्ट मिटाने वाले हैं। फिर कामदेव तो भगवान् का बड़ा भक्त था। भगवान् ने उसकी रक्षा क्यों नहीं की?

इसका उत्तर यह है कि कामदेव ने अपनी रक्षा की चाहना कब की थी। उसने मन में तनिक भी यह न सोचा कि हे प्रभो ! इस कष्ट से मुझे बचा। वह तो अपने आत्मिक बल से आये हुए संकट को सहर्ष सहन कर रहा था। उसने उस कष्ट को कष्ट ही न माना था। साधारण लोग अपने मानस से महापुरुषों के मानस की तुलना करते हैं और भूल खा जाते हैं। महापुरुष आपत्तियों से कुश्ती करते हैं। इसमें उन्हें बड़ा अपूर्व आनन्द आता है। अंत में कामदेव की विजय हुई। कष्ट देते देते देव हार गया। उसका प्रयत्न थक गया। उसने क्षमा मांगी और उनका गुलाम बन गया। सच है, जो धर्म पर दृढ़ रहता है देवता भी उसकी सेवा करते हैं।

आप लोग भी यदि धर्म पर दृढ़ रहेंगे तो देवगण आपकी सेवा में उपस्थित रह सकते हैं। मगर आप लोग बनिये ठहरे। आप नफे का सौदा करने वाले हैं। जहां एक रुपये के सत्रह आने होते हों वहां आप दिमाग लगाते हैं। किन्तु धर्म का मार्ग बड़ा विकट है। वह ग्रहण करने का मार्ग नहीं है किन्तु त्याग करने का मार्ग है। बनियावृत्ति से धर्माराधन नहीं हो सकता। कामना में लगे हुए मनुष्य ईश्वर भक्ति या धर्म सेवा नहीं कर सकते। कामना करने से कामना पूर्ति नहीं होती और कामना न करने से क्रिया का फल व्यर्थ नहीं चला जाता। बल्कि कामना रहित होकर क्रिया करने से विशिष्ट फल मिलता है। अकल्पित फल मिलता है। कामना से वस्तु का महत्व कम हो जाता है। अतः निष्काम होकर ईश्वर भक्ति या अन्य काम करना चाहिये।

वह देव इन्द्र के मुख से कामदेव की दृढ़ता की प्रशंसा सुनकर क्रोधित होकर उन्हें डिगाने के लिए राक्षस बन गया था। किन्तु कामदेव की दृढ़ता ने उसका क्रोध शांत कर दिया और वापस देव बना दिया। धर्म में इतनी शक्ति है। फिर भी आप लोग संसार की तुच्छ वासनाओं की पूर्ति के लिए धर्म करणी बेच देने पर उतारु हो जाते हो, यह कितनी गैर समझ है। भोले लोग ऐसी प्रार्थना करते हैं—

शांतिनाथ सोलमा, लाडू देवे गोल मा।
कृपा करे तो कंसार का, दया करे तो दाल का।
ले रे मूंडा लट, उतर जाय गट॥

इसी प्रकार लोग अपनी रक्षा के लिए 'वज्रपिंजर स्तोत्र' आदि भी जपते हैं। संसार के मोहजाल में फंसकर जैसे छोटा बालक मिठाई के लोभ से अपना बहुमूल्य जेवर उतार कर दे देता है, वैसे ही भोले लोग उत्कृष्ट धर्म करणी करके भी उसके बदले में धन स्त्री पुत्र आदि की तुच्छ कामना करते हैं। यह बाल बुद्धि ही कही जायगी। पंडित जन ऐसा नहीं कर सकते। शीतलनाथ की प्रार्थना संसार की तुच्छ ऋद्धि प्राप्त करने की दृष्टि से न करके अपनी आत्मा में रहे हुए विकारों को दूर करने की दृष्टि से करोगे तो कल्याण है।

आप कहेंगे कि आज कल पंचम आरा है। धर्म में दृढ़ रहना कठिन है। पद २ पर विघ्न आते हैं आदि। किन्तु यदि विचार पूर्वक सोचेंगे तो ज्ञात होगा कि अधिकांश विघ्न या

दुःख अपने मनकी निर्बलता में से ही पैदा होते हैं। यदि मनुष्य स्वयं वीर है तो विघ्न दुःख देने के बजाय सहायकर्ता बन जाते हैं। कामदेव का उदाहरण आपके सामने है। भगवान् वर्धमान का नाम देवों ने महावीर क्यों रखा था ? उपसर्ग और परिषद् सहन करने के कारण ही वे महावीर कहलाये ।

आप लोगों को डोरे गंडे पर विश्वास है। मगर धर्मकरणी के फल पर उतना विश्वास नहीं होता, यह खेद की बात है। धर्म में बड़ी शक्ति है। चाहे कितनी ही बाधायें आये भगवान् का शासन इक्कीस हजार वर्ष तक चलेगा। मगर आपका कल्याण दृढ़ता धारण करने से ही होगा। दृढ़ता विश्वास से पैदा होती है। इसलिए भगवान् और धर्म पर विश्वास रखो। प्रतिकार की शक्ति होते हुए कष्ट सहन करना बहादुरी है।

पाण्डवों में शक्ति थी। फिर भी धर्म के लिए उन्होंने कष्ट सहन किये भरी सभा के बीच दुःशासन ने द्रौपदी को नग्न करना चाहा तब उसने यह आवाज लगाई कि मेरे पांचों पतियों के मौजूद रहते हुए भी मैं नग्न की जा रही हूं। क्या कोई मेरी रक्षा करने वाला नहीं है। यह सुनकर भीम का हाथ गदा पर पड़ा और अर्जुन का गांडीव पर वे कहने लगे, हमारे देखते हमारी स्त्री की लाज जा रही है और हम ताकते रहें। हमारी वीरता किस वक्त काम आयेगी ! किन्तु उसी वक्त युधिष्ठिर बोले कि भीम ! तुम्हारी गदा मुझ पर चलाओ

और अर्जुन ! तुम्हारा गांडीव मुझ पर तानो। इस अनर्थ का मैं मूल हूं। मैंने जुआ खेल कर यह विषम परिस्थिति उत्पन्न की है। मैंने ही राज्य और द्रौपदी को दांव पर रख दिया था और हार गया। अतः दण्ड का पात्र मैं हूं। मुझे दण्ड दो।

यह हृदय की बात है। हृदय की आवाज ऐसी ही हुआ करती है। इसे आप युधिष्ठिर की वीरता कहेंगे या कायरता? आज तो इसे कायरता ही कहा जाता है। मगर युधिष्ठर को कायर कहने की कौन धृष्टता करेगा? वे संसार प्रसिद्ध बहादुर माने जाते हैं। उनमें शक्ति थी। किन्तु सत्य के खातिर उसका प्रयोग नहीं किया। यधिष्ठर का कथन सुनकर भीम और अर्जुन बैठ गये। अपने बड़े भाई का ये कितना आदर रखते थे। इस कठिन संकट के प्रसंग पर वाद विवाद में न उतर कर आज्ञाकारिता का उत्कृष्ट परिचय दिया। यह साधारण बात नहीं है। अपने हृदय के आवेग को रोकना महान् हृदय का ही काम है। उन्हें अपने बड़े भाई पर पूर्ण-विश्वास था। भीम और अर्जुन ने अपने बड़े भाई पर विश्वास रखा। क्या आप लोग धर्म पर विश्वास रख सकते हैं? धर्म हमारा बड़ा भाई है।

जब भीम और अर्जुन निष्क्रिय होकर बैठ गये तब द्रौपदी ने उन पर अनेक तीक्ष्ण वाग्बाण छोड़े फिर भी वे टस से मस न हुए। अपने भाई के आज्ञाकारी बने रहे। अंत में द्रौपदी को ध्यान आया कि मैं भूल कर रही हूं। मैं अपने पति और भीष्म आदि श्वसुर की सहायता की भिक्षा मांग रही हूं

इसमें मेरा अभिमान काम कर रहा है। यह सारा कौटुम्बिक या भौतिक बल व्यर्थ है। मुझे परमात्मा का बल प्राप्त करना चाहिये। इस स्थूल बल को छोड़कर निर्बल बनना चाहिये। निर्बल का अर्थ कायर बनना नहीं किन्तु अभिमान के बल को त्याग कर अन्तर्बल-परमात्मबल की प्राप्ति करना है। उस बल को प्राप्त करने के लिए छोटे बल को छोड़ना चाहिये। जो त्याग किये बिना कुछ ग्रहण करता है वह चोरी करता है। बदला चुकाये बिना जो स्वयं ले लेता है और कुछ देता नहीं वह चोर है। यदि मुझे परमात्मा का बल ग्रहण करना है तो अपना बल उसे समर्पण कर देना चाहिये।

इतना सोचकर द्रौपदी ने अपने आप को परमात्मा की शरण में सौंप दिया। हे प्रभो! अब तू ही मेरा आसरा है। बस, यह कहते ही उसका चेहरा खिल उठा। उसमें ईश्वरीय तेज प्रकट हो गया। 'मैंने कितनी भूल की जो दूसरों से रक्षण की आकांक्षा की। और ये मांस के लोभी कुत्ते मेरा शरीर चाहते हैं तो लो मैं अपना शरीर ही त्यागती हूं और अन्तर्यामी की शरण में जाती हूं।'

द्रुपद सुता निर्बल भई ता दिन गहि लाये निज धाम।
दुःशासन की भुजा थकित भई बसन रूप भये श्याम ॥ सुनेरी०॥

द्रौपदी के द्वारा प्रभुशरण स्वीकारते ही ईश्वरीय शक्ति प्रकट हो गई। दुःशासन की भुजायें उसका चीर हरण करते करते थक गईं, मगर वह नग्न न हुई।
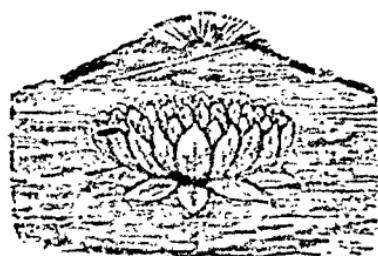
अब आप लोग विचार करिये कि कौनसा बल बड़ा है। धन, कुटुम्ब और शरीर का बल या आत्मिक बल ! अंत में हाथ में तलवार लेकर धृतराष्ट्र आये। वे कहने लगे कि यह मेरे कुल का कलंक है और वंश नाशक है। दुःशासन भाग गया। धृतराष्ट्र ने द्रौपदी से अपने पुत्रों को क्षमा करने की प्रार्थना की और इच्छित वरदान मांगने की बात कही। द्रौपदी ने विचार किया कि मांगना कोई अच्छी बात नहीं है। किन्तु ये वृद्ध हैं और इनका सत्कार करना आवश्यक है, इनकी बात टालना अच्छा नहीं, अतः कुछ मांगना चाहिये। उसने धृतराष्ट्र से कहा कि मुझे और कुछ नहीं चाहिये इतना चाहती हूं कि मैं और मेरे पति स्वतंत्र हो जावें। हमारी परतंत्रता मिट जानी चाहिये। धृतराष्ट्र ने कहा तथास्तु। तुम और तुम्हारे पति स्वतंत्र हैं। और कुछ मांगो। मगर द्रौपदी ने कहा अब कुछ नहीं चाहिये। मेरे पति स्वतंत्र होकर सब कुछ कर सकते हैं।

आज कल लोग पैसे के गुलाम बने हुए हैं। उन्हें धन जितना प्यारा है, स्वतंत्रता उतनी प्यारी नहीं। गुलाम लोग स्वतंत्रता का मूल्यांकन नहीं कर सकते। उनको यदि कुछ मांगने के लिए कहा जाय तो वे स्वतंत्रता न मांगकर धन दौलत पसन्द करेंगे। यह [illegible] निशानी है।

अंत में धर्मराज युधिष्ठिर की विजय हुई, यह सर्व विदित है। जो धर्म पर आस्था रखता है उसकी सदा विजय होती है, यह निश्चित बात है। आप श्रोताजन भी यदि धर्म पर विश्वास रखेंगे तो आपका कल्याण है। इतना भाव कहा, जिसे हृदयंगम करना आपका कर्त्तव्य है।

२३-८-३६
राजकोट

२०

कन्या और पुत्र का समानाधिकार

श्रेयांस जिनंद सुमर रे।

प्रार्थना--

यह ग्यारहवें तीर्थंकर भगवान् श्री श्रेयांसनाथ की प्रार्थना है। इस प्रार्थना में भक्त कवि, जगत् के जीवों को मोह की निद्रा त्यागकर ईश्वर भजन की पेरणा प्रदान करता है। भक्त कहता है कि हे प्राणियों! तुम्हे अपने आप का भान नहीं है, तुम अपने को नहीं पहचानते हो अतः मोह नींद में सोये हुए हो मुझे अपना भान है। मैं जानता हूं कि मैं कौन हूं, मेरा खरा स्वरूप क्या है अतः मैं सदा जाग्रत रहता हूं। तुम को भी प्रेरणा करता हूं कि भाई जागो। कब तक इस गहरी नींद

में सोये रहोगे। जागकर परमात्मा का ध्यान करो, स्मरण करो यह सुन्दर सहयोग मिला हुआ है। मनुष्य जन्म और सद् बुद्धि प्राप्त हुई है।

चेतन जान कल्याण करन को आन मिल्यो अवसर रे।
शास्त्र प्रमाण पिछान प्रभु-गुण मन चंचल थिर रे॥

'कैसे करूं और क्या करूं' इस उधेड़ बुन को त्याग दे। स्थिर चित्त होकर प्रभु का भजन कर। शास्त्र-आगम को प्रमाण भूत मान कर उस में जैसा मार्ग बताया है तदनुसार आचरण कर। तेरी छोटी बुद्धि हर बात की तह तक नहीं पहुंच सकती तो शास्त्र को प्रमाण मान कर उनमें वर्णित साधकों की चर्या के अनुसार तू भी आचरण कर।

यद्यदा चरति श्रेष्ठस्तदेवेतरो जनः।

श्रेष्ठ पुरुष जैसा आचरण करते हैं, वैसा ही इतर मानव समाज भी करता है। शास्त्रानुसार प्रभुके गुणों की पहचान करके कल्याण मार्ग में लग जा।

शास्त्र स्वयं प्रमाण हैं। उसके लिए किसी दूसरे प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। आजकल लोग अपनी बुद्धि से शास्त्र को तोलने लगते हैं। अपनी बुद्धि के प्रमाण से शास्त्र को स्वीकार करते हैं। किन्तु यह नहीं देखते कि शास्त्र महाज्ञानियों के द्वारा बनाये हुए हैं। तुम्हारी छोटीसी बुद्धि उनके सामने समुद्र में बिन्दु के समान है। ज्ञानियों ने अपने ज्ञान और अनुभव से हर बात को तौलकर शास्त्र में रखी है। ज्ञान और

क्रिया से जो बात ठीक सिद्ध है वही शास्त्र में प्रतिपादित है। कदाचित् कोई कहे कि यदि शास्त्र प्रतिपादित बातें सत्य हैं, तो उन में किसी किसी को भ्रान्ति क्यों पैदा होती है? भ्रांति का कारण समझने वाले की बुद्धि में रहा हुआ है। मनुष्य अपनी अपूर्णता के कारण अभ्रांति के स्थान में भ्रांति पैदा कर लेता है। यदि शास्त्र की किसी बात में सन्देह पैदा हो तो भी यह वीतराग की वाणि है ऐसा मानकर उस पर विश्वास रखोगे तो आपको लाभ ही होगा। यदि शास्त्रकथित किसी बात में विकार मालूम दे तो उसे वीतराग वाणि नहीं मानना चाहिये। किन्तु निर्विकारी बात को मानने में तनिक भी देरी न करनी चाहिये। यह सुन्दर अवसर मिला है। इसका सदुपयोग करो। मानव भव कितनी कठिनाई से प्राप्त हुआ है, इस विषय में महावीर भगवान् ने गौतम से कहा है-

वणस्सइ कायमइगओ, उक्कोसं जीवो संवसे।
कालमणंतं दुरंतयं, समयं गोयम ! मा पमायए॥

हे गौतम! संसार की स्थिति बड़ी विकट है। यह आत्मा उस वनस्पति काय में भी रह आया है जिसका अन्त आना महाकठिन है। उसमें अनन्त काल बीता कर अनेक योनियों में होता हुआ यह मानव शरीर प्राप्त किया है। इस अवसर को समझ और समय मात्र भी प्रमाद मत कर।

भगवान् महान् वक्ता थे और गौतम महान् श्रोता थे। उन्होंने भगवान् के हितोपदेश को अपना कर जीवन कल्याण किया। किन्तु हम लोगों को क्या करना चाहिये यह विचार

करो। परमात्मा का स्मरण और भजन करना सब पसन्द करते हैं। किन्तु उसमें विघ्न क्या है उस पर ध्यान दो। मेरे खयाल के अनुसार पुद्गलों की चाह ईश्वर भक्ति में सबसे अधिक बाधक है। पुद्गलचाह मिट जाने से ईश्वर में लीन होने में कोई बाधा नहीं रह जाती। वैसे जड़ पदार्थों की चाह मिटाना कठिन मालूम देता है किन्तु सोचा जाय तो वस्तुतः यह कार्य बड़ा सरल है। जीव स्वयं न तो पुद्गल है और न पुद्गलों का स्वामी। कहा है —

जीव नहीं पुग्गली नेव पुग्गल कदा,
पोग्गलाधार नहीं तासरंगी।

ऐसी दशा में पुद्गलों की चाहना मिटा देना क्या कठिन है। यदि पुद्गल चाह मिटाना असंभव कार्य होता तो भगवान् ऐसी चाह मिटाने का कभी उपदेश न देते। जीव ने अपने अज्ञान के कारण इस कार्य को कठिन मान रखा है। जैसे कोई मनुष्य अपनी अज्ञानता के कारण विषधर सर्प को पुष्प की माला मान लेता है या शीप को चांदी मानकर पकड़े रहता है। यदि कोई हितैषी उसे समझाता है कि अरे यह तो विष धर सर्प है। यदि काट खायेगा तो तेरा जीवन नष्ट हो जायगा। इस को छोड़ दे। और जिसे तू चांदी मानकर बोझा ढोये हुए है वह चांदी नहीं किन्तु शीप है। इसे छोड़ दे। किन्तु अपने अज्ञान के कारण वह मूर्ख हितैषी मित्र की बात नहीं मानता और अहितकर आचरण करता है। वैसे ही अज्ञानता के कारण संसार में मनुष्य, स्त्री पुत्र धन वैभव आदि को अपना समझता

है और उनमें चिपटा रहता है। परमज्ञानियों के उपदेशक पर ध्यान नहीं देता। वह समझता है कि मेरे सारे कार्य पुद्गलों से ही चलते हैं। खाना पीना पहनना ओढ़ना निवास करना आदि सारे कार्य पुद्गलों से होते हैं। इनको कैसे छोड़ा जा सकता है। जब तक समझ में अंतर न पड़े तब तक छोड़ना असंभव है। जब मनुष्य समझ जाय कि अहो! यह तो विषधर है, तब क्या एक क्षण के लिए भी वह उसे छोड़ने में रुकेगा। नहीं। इसी प्रकार जब जीव को विवेक हो जाता है तब पुद्गल चाह मिटाना सबसे सरल काम है। पुद्गलों का उपयोग करना दूसरी बात है और पुद्गलों की चाह करना दूसरी। किसी वस्तु की आसक्ति बंधन का कारण है।

सांप को छोड़कर मनुष्य बड़ा प्रसन्न होता है कि अच्छा हुआ जो मैंने उसे छोड़ दिया। नहीं तो काट खाता। छोड़ने का उसे अफसोस नहीं होता। कारण कि अब उसको सांप का वास्तविक ज्ञान हो गया है। इसी प्रकार ज्ञानीजनों को अपनी छोड़ी हुई ऋद्धि सिद्धि के लिए दुःख नहीं होता। बल्कि वे यह विचार करते हैं कि जो हमारी वस्तु न थी उसे अपनी मानकर इतने काल तक बड़े दुःख उठाये। अब इससे छुटकारा हो गया है अतः निज आनन्द और निज गुण में विचरण करने का अच्छा अवसर हाथ लगा है। सांप का डंक एक जीवन बिगाड़ता है किन्तु पुद्गलों का डंक अनेक जीवन बिगाड़ता है। इस प्रकार विचार कर पुद्गल चाह मिटाकर प्रभु का भजन करो।

शास्त्र—

राजा श्रेणिक को अनाथी मुनि इसी प्रकार का उपदेश देते हैं। राजा ने मुनि से कहा था कि आपने भर युवावस्था में संसार के भोग छोड़कर योग क्यों स्वीकार किया। आपको किसने भरमा दिया था। इस पर मुनि ने कहा कि राजन्! मुझे किसी ने नहीं भरमाया। मेरी आत्मा के भीतर से ही यह आवाज आई कि ये बाह्य पदार्थ तेरे नहीं हैं। तू इनको अपना मानकर भूल कर रहा है। मेरी आत्मा ने संसार के पदार्थों का सच्चा रूप जानकर, उन्हें त्यागा है। जब राजाने यह पूछा कि मुनिवर! आपने संसार का सच्चा रूप किस प्रकार जाना। तब मुनि ने अपनी पूर्वावस्था का सारा हाल सुनाकर साधु बनने का कारण समझाया। यहां अभी न तो राजा श्रेणिक है और न मुनि। अभी आप और मैं हूं। इस कथा का रस तभी मिल सकता है जब आप और मैं श्रेणिक और मुनि की तरह बनकर सुनें सुनावें। भाड़ के टट्टू कहने वाले हों और भाड़े के टट्टू ही यदि सुनने वाले हों तो वह रस कैसे उत्पन्न हो सकता है, जो मूल कथा में भरा पड़ा है। महाज्ञानी ही इस कथा का रस प्रकट कर सकते हैं। किन्तु अभी तो यहां मैं हूं अतः मुझे ही अपनी अल्प बुद्धि के अनुसार इसका विवरण कहना होगा।

अनाथी मुनि ने राजा से कहा कि मेरे शरीर में उज्जवल वेदना उत्पन्न हुई। लोग वेदना को अनिष्ट का कारण मानते हैं। किन्तु मेरे लिये वह वेदना संयम का कारण बन गई।

मेरी वेदना को मिटाने के लिये मेरे कुटुम्बियों ने अनेक प्रकार के उपाय किये। मगर कोई उपाय कारगर न हुआ। अंत में मैं इस निर्णय पर पहुंचा कि बाहर के साधन मेरी वेदना मिटाने में सर्वथा असमर्थ हैं।। राजन्! यही मेरी अनाथता है।

भइणी ओ मे महाराय! सगा जिट्ठ कणिट्ठगा।
न य दुक्खा विमोयन्ति एसा मज्झ अणाहया॥

राजन् मेरे छोटी और बड़ी बहनें भी थीं। वैसे तो धर्म के नाते संसार की किसी भी स्त्री को बहन कहा जा सकता है। किन्तु मेरे सगी बहनें थीं। सहोदरा अर्थात् मेरी माता के उदर से जन्मी हुई बहनें थीं। वे मेरा रोग मिठाने के लिए जो कुछ कर सकती थीं, किया। किन्तु मेरा रोग न मिटा।

यहां यह प्रश्न खड़ा हो सकता है कि जब माता पिता और भाई के विषय में यह कहा जा चुका है कि वे भी रोग नहीं मिटा सके तो बहन का अलग जीक्र करने की क्या आवश्यकता थी। जहां बड़े का प्रयत्न काम नहीं करता वहां छोटे का प्रयत्न क्या करेगा। गेस की बत्ती भी उजाला न कर सकी तो टिमटिमाते दिये की बत्ती क्या करेगी?

इस प्रश्न का उत्तर यह है कि संसार में बड़ी विचित्रता देखी जाती है। कभी २ जो काम बड़े आदमी नहीं कर सकते वह छोटे आदमी करते हुए देखे जाते हैं।। बड़ी शक्ति से जो नहीं बन पाता वह छोटी से हो जाता है। उदाहरण के तौर

पर समझियेगा कि सुनार सोने चांदी की झलाई का काम सूर्य के प्रकाश से नहीं कर सकता। उसके लिए दीपक का प्रकाश उपयोगी होता है। सूर्य का अधिक प्रकाश क्या काम का। इसी प्रकार कई स्त्रियां सूर्य के रहते हुए भी दीपक जला-कर उसे नमस्कार करती हैं। वे ऐसा क्यों करती हैं इसका कारण खोजने का अभी अवसर नहीं है किन्तु यह बात सत्य है कि संसार में बड़ी विचित्रता है। मेरी समझ के अनु-सार संसार की विचित्रता बतलाने के लिए ही बहन का वर्णन किया जाना संभव है। विचित्रता के कारण ही संसार संसार कहलाता है।

तथा जैसा भाई का भाई से सम्बन्ध है वैसा ही बहन का भाई के साथ है। यदि संसार में भाई हों और बहनें न हों तो क्या संसार चल सकता है? कदापि नहीं। फिर भी कई लोग इस महत्त्वपूर्ण मुद्दे पर विचार नहीं करते। और लड़की होने पर प्रसन्न होने के स्थान पर अप्रसन्न होते हैं। कई श्राविका नाम धराने वाली बाइयां भी लड़की होने पर जापे (सुवावड़) में वह सामग्री नहीं खाती जो लड़का होने पर खाती हैं। कहती हैं, क्या करें लड़का होता तो बादाम आदि खातीं। लड़की हुई है अतः खाने का मन नहीं होता। क्या इस प्रकार लड़के लड़कियों में भेदभाव करना उचित है? जिन को आप अनार्यदेश वासी कहते हो वे यूरोपियन लोग भी लड़के लड़कियों में पक्षपात नहीं करते तो क्या श्रावक नाम धराने वाले लोग ऐसा करेंगे? यूरोपियन देशवासी लड़के और लड़कियों में भेद नहीं मानते हैं। वहां लड़का न होने पर

लड़की अपने पिता की सम्पत्ति की अधिकारिणी मानी जाती है। माता पिता के नाते भी यह अनुचित है कि अपनी संतान में भेदभाव रखा जाय। भेदभाव न होना चाहिये। समभाव होना चाहिये। पुत्र और पुत्री दोनों के होने से यह संसार रूपी गाड़ी चल रही है। संसार रूपी गाड़ी के ये दोनों पहिये हैं। वहिन को लेकर स्त्री जाति का महत्त्व बताना भी शास्त्रकार का उद्देश्य हो सकता है।

अनाथी मुनि ने वहन--भाई का नाता छोड़ दिया था और वे मुनि वन चुके के फिर भी भाई और वहन का जो नाता है उसे वे स्वीकार करते हैं। और कहते हैं कि मेरे कष्ट मिटाने के लिए मेरे माता पिता और भाईयों ने जो प्रयत्न किये, मेरी वहिनों ने उनसे कम नहीं किये। जव कि त्यागी महात्मा भी वहन का हक स्वीकार करते हैं तव आप लोग गृहस्थ होकर कन्या का हक क्यों नहीं मानते हैं! क्यों पुत्र और पुत्रियों के अधिकार में भेदभाव रखते हैं।

आजकल कई लोग यह कहते भी सुने गये हैं कि हमें पुत्र पुत्री किसी की जरूरत नहीं है। भारत की आवादी वहुत वढ़ चुकी है अत: संतानोत्पत्ति करना इस वक्त उचित नहीं है। ऐसे लोगों से मैं पूछता हूं कि आवादी क्यों वढ़ गई? क्या आसमान में से मनुष्य टपक पड़े? ऐसा तो नहीं होता। तो फिर मानना पड़ेगा कि विषय वासना के सेवन से सन्तान वृद्धि होती है और आवादी वढ़ती है। यदि संतानोत्पत्ति रोकना है तो विषय वासना को रोकना चाहिये। विषय वासना

तो नहीं छुटती और गर्भाशय कटवा डालना आदि जैसे कृत्रिम उपाय काम में लिए जाते हैं। यह कितना दुष्कर्म है। इस दुष्कर्म के विषय में इस विचार से दुःख होता है कि हे प्रभो ! पराधीन भारत की जनता किस प्रकार निर्बल बनाई जा रही है। इसका कितना पतन किया जा रहा है। जब तक स्त्री को संतति होती रहती है तब तक तो कम से कम संतान होने के कुछ मास पूर्व और पश्चात् ब्रह्मचर्य पालने का प्रसंग रहता है और मन या बेमन ब्रह्मचर्य का पालन करना पड़ता है। किन्तु जब बच्चादानी निकलवा दी जाती है तब अब्रह्मचर्य से रोकने के लिए क्या साधन बच जाता है ! स्त्री और पुरुष दोनों स्वच्छन्द बन जाते हैं। उनको किसी प्रकार का नियम नहीं रहता। हां, सन्तान के पालन पोषण की जिम्मेवरी से वे बच जाते हैं किन्तु अपना स्वास्थ्य और धर्म नष्ट करने से कैसे बचेंगे। संतति निरोध से विषय वासना कम हो जाती हो ऐसा नहीं देखा जाता। बल्कि विषय वासना की वृद्धि देखी जाती है। जिन स्त्रियों को संतान नहीं होती उनकी भोगेच्छा विषय वासना बढ़ी हुई रहती है, कम नहीं होती। संतति निरोध से भोगेच्छा बढ़ेगी और पानी की तरह वीर्य बहाया जायगा। इस से निर्बलता आयेगी। और निर्बलता से अन्य अनेक दुर्गुण पैदा होंगे।

जिस प्रकार मोती की किमत पानी से और हीरे की कीमत उसके तेज से है। उसी प्रकार पुरुष की कीमत उसके वीर्य से है। वीर्य ही से तीर्थंकरादि महा पुरुष बने हैं और आपका शरीर भी वीर्य से ही पैदा हुआ है। अतः वीर्य नाश

से वचना चाहिये। यदि संतति--निरोध करना है तो भोगेच्छा को रोकना चाहिये। इसके लिए यही एक मात्र उचित साधन है। ब्रह्मचर्य का बड़ा महत्त्व है। तीर्थंकर स्वयं कह गये हैं कि यद्यपि हम माता पिता के वीर्य से पैदा हुए हैं फिर भी आत्मा का उद्धार तो ब्रह्मचर्य के पालने से ही होता है। मैं आशा करता हूं, जैन समाज कृत्रिम उपायों के द्वारा संतान निरोध न करेगी। कृत्रिम उपाय का उपयोग करना महान् नीचता और अनर्थकारी है। इसका परिणाम बड़ा भयंकर है।

अनाथी मुनि कह रहे हैं कि राजन्! मेरी वहनें मेरा हित चाहती थी। वे मेरे सुख में सुखी और दुःख में दुःखी थीं भाई का कर्त्तव्य है कि वह वहिन को कुछ देवे। उससे कुछ लेने की आश न करे। उसे दुःखी न रहने दे, सुखी वनावे। उस वक्त यदि उनको कुछ जेवर दिये जाते तो भी वे खुश न होतीं। वे कहती थीं कि हम जेवर आदि के लिए वहनें नहीं वनी हैं किन्तु भाई के सुख दुःख में साथ देने के लिए वहने वनी हैं। राजन् उस वक्त मेरा कर्त्तव्य था कि मैं उनको सुखी करता। किन्तु मैं स्वयं दुःखी था अतः उनका दुःख न मिटा सका। यह देखकर मुझे ज्ञान हुआ कि यह शरीर ही दुःख का कारण है। इसलिए इस शरीर से सदा के लिए छुटकारा पाने का प्रयत्न करना चाहिये। मैं स्वयं मेरा दुख मिटा सकता हूं। दूसरे की कोई ताकत नहीं जो मेरे दुःख मिटा सके।

मुनि ने राजा से भी पूछा कि क्या तुम्हारी वहनें तुम्हारा दुःख मिटा सकती हैं? यह सुनकर राजा विचार में पड़ गया

कि बेचारी बहनें किसी का दुःख कैसे मिटा सकती हैं। कोई दूसरा कुछ नहीं कर सकता। जो कुछ कर सकता है वह अपनी आत्मा ही अपने लिए कर सकती है।

सुदर्शन-चरित्र----

सुदर्शन की कथा कहते हुए कुछ विषय छूट गया है। दूसरी तरह से विवेचन कर लिया गया था। मैंने अभी तक जो कुछ कहा है उसमें एक उत्सव की बात कही है। किन्तु कथा देखने से ज्ञात हुआ कि दो उत्सव हुए थे। और दोनों का इस कथा से सम्बन्ध है। अतः जहां से इस विषय में सुधार करने की जरूरत है, वहां से पुनः कथा कहता हूं।

कपिला सुदर्शन की दृढ़ता और महत्त्व समझ चुकी थी। वह जान गई कि यह पुरुष किसी के हाथ में आने वाला नहीं है। कुछ दिन बाद इन्द्रोत्सव का समय आया। राजा ने प्रजा के लिए घोषणा करवाई कि सब लोग मेरे साथ नगर के बाहर उत्सव मनाने आवें। जिन लोगों को आमोद प्रमोद और उत्सव प्रिय होते हैं उनके लिए ऐसी घोषणा वरदान सिद्ध होती हैं। प्रकृति के स्वभावानुसार कार्य कराने में अधिक प्रयत्न की आवश्यकता नहीं होती। प्रकृति विरुद्ध कार्य कराने में अधिक जोर लगाना पड़ता है। पानी को नीचे की ओर ले जाने में विशेष प्रयत्न की अपेक्षा नहीं रहती। किन्तु उसे ऊपर चढ़ाने में बड़े २ एंजिनों की आवश्यकता होती है।

राजा की आज्ञा से रानी, कपिला और सेठ सुदर्शन की पत्नी मनोरमा तीनों नगर के बाहर उत्सव में गई। मनोरमा

को देखकर कपिला और रानी में जो वार्तालाप हुआ वह पहले कहा जा चुका है। यद्यपि कपिला ने सुदर्शन के समक्ष यह प्रतिज्ञा की थी कि वह किसी के सामने उस काण्ड का जिक्र न करेगी और सुदर्शन ने भी वचन दिया था कि वह भी इसे गुप्त रखेगा। किन्तु कपिला अपनी प्रतिज्ञा पर कायम न रह सकी और उसने सारा हाल रानी के सामने प्रकट कर दिया।

सुदर्शन का अब क्या कर्त्तव्य है इसका हम खयाल करें। कपिला अपनी बात पर कायम न रह सकी और उसने रानी के समक्ष सारा काण्ड कह सुनाया, क्या सुदर्शन भी कपिला की तरह उसकी बात प्रकट कर दे? सुदर्शन को अपनी प्रतिज्ञा पालनी चाहिये या नहीं? कई लोग यह कह कर अपना वचन पालने से छूटना चाहते हैं कि जब सामने वाला अपनी बात पर टिका न रहा तो हम क्यों अपनी बात पर दृढ़ रहें। किन्तु यह दलील पोची है। दूसरा वचन भंग करता है तो हमें भी करना चाहिये यह कहां का नियम है! ज्ञानी और सत्पुरुष अपना वचन नहीं तोड़ा करते। वे प्राण छोड़ना पसंद करते हैं किन्तु वचन छोड़ना नहीं चाहते। यदि सुदर्शन की तरह कपिला भी अपनी बात पर कायम रहती और किसी के सामने अपना आपसी काण्ड न कहती तो आगे घटने वाली अनर्थ परंपरा न घटती। प्रतिज्ञा पालन से बड़ा लाभ होता है।

कई लोग यह कहकर छूट जाना चाहते हैं कि हमने तो बात भर कही थी। किन्तु बात का बतंगड़ बन जाता है

इसका खयाल रख कर कोई बात कहना चाहिये। इसी बात को ध्यान में रखकर स्त्रीकथा, राजकथा आदि को रोका गया है। धर्म कथा का जितना सहारा लिया जाय उतना अच्छा है।

कपिला ने कहा था कि सुदर्शन नपुंसक है, उसके पुत्र कैसे हो सकते हैं। इस पर अभया ने उत्तर दिया था कि यह तेरी भूल है। वह तुझे भ्रम में डालकर बच निकला है। उसके पांचों पुत्र ही इस बात की साक्षी हैं कि वह पुरुषत्व-सम्पन्न है। पिता का रूप गुण पुत्र में उतर आता है। तू इन पुत्रों को देखकर सुदर्शन से मिलान कर। कई लोग तो यहां तक कहते हैं कि पिता ही पुत्ररूप में उत्पन्न होता है। पिता अपनी मानसिक वाचिक और कायिक शक्ति पुत्र में उतार देता है। दूसरी बात यह सेठानी कितनी शान्ति से बैठी हुई है। यदि यह दुराचारिणी होती तो इतनी शान्ति से कभी नहीं बैठ पाती। इसकी आंखों में और शरीर में चंचलता होती।

कपिला विचार करने लगी कि सचमुच ये लड़के सुदर्शन के समान ही हैं। मैं ठगी गई हूं। इतना विचार करके यदि कपिला चुप हो जाती तो आगे बात न बढ़ने पाती। किन्तु दुष्ट लोग अपनी शक्ति का उपयोग दूसरों को पराभव करने में लगाते हैं। इस नियम के अनुसार कपिला अपने आपको न रोक सकी और दुष्टता करने लगी। उसने अभया रानी से कहना शुरू किया कि मैंने सुदर्शन की बड़ी परीक्षा

की है। वह बड़ा दृढ़ और अडिग पुरुष है सुरनारी भी उसे डिगाने में समर्थ नहीं हो सकती।

अभया कहने लगी—कपिला! तू अपने मन के अनुसार दूसरों की शक्ति का माप करती है, यह तेरी भूल है। स्त्रियां क्या नहीं कर सकतीं। पुरुष लोग स्त्रियों के आंख के इशारे पर नाचते है। बड़े २ राजाओं को अपने आंख के इशारे से मौत के घाट पहुंचा सकती हैं। बेचारा सुदर्शन किस बाग की मूली है, बड़े २ योगी त्रिया चरित्र के सामने फैल हो गये हैं।

कपिला अभया का जोश बढ़ाने लगी कि रानी जी! अभिमान मत करो। मैं आपकी बात तब मानूंगी जब आप सुदर्शन को अपने काबू में कर दिखायेंगी।

लोग झूठी प्रशन्सा में बहुत फूल जाते हैं। दूसरे लोग ऐसे चालाक रहते हैं जो व्यर्थकी प्रशंसा करके किसी सीधे सादे व्यक्ति से अनर्थ करवा डालते हैं। उसका फल उस मूर्ख को भोगना पड़ता है। अतः झूठी प्रशंसा के चक्कर में न फंसना चाहिये। झूठी प्रशंसा में फंसकर किसी का अहित किया तो अभया का सा काम गिना जायगा। चाहे साधु हो चाहे गृहस्थ झूठी प्रशंसा में फंसकर दूसरों को गलत मार्ग में न घसीटना चाहिये। हम साधु भी यदि झूठी प्रशंसा में फंसकर आप लोगों को ठगने लगें तो हमारा घोर पतन है।

झूठी प्रशंसा में फंसकर अभयारानी ने सुदर्शन को वश करने की प्रतीक्षा की है। यह सारी बात इन्द्रोत्सव के समय की है। कौमुदी महोत्सव के समय क्या हुआ तथा इन्द्रोत्सव और कौमुदी महोत्सव में क्या अंतर है यह यथावसर आगे बताया जायगा।

नोटः—बीच में चार दिन पूज्य श्री तपस्या होने से स्वयं व्याख्यान न फरमाया।

२६—८—३६

राजकोट

२१

शत्रु को मित्र बनाने की कला

प्रणमूं वासु पूज्य जिन नायक ! सदा सहायक तू मेरो ।

प्रार्थना—

यह बारहवें तीर्थंकर वासुपूज्य स्वामी की प्रार्थना है। प्रार्थना में प्रति पादित सब भावों पर नजर डालने से अनेक पहलु सामने उपस्थित होते हैं। किन्तु उन सब पर प्रकाश डालना मेरी शक्ति के बाहर की बात है। जिस विषय का विचार मेरी बुद्धि हृदय और विवेक में अभी उपस्थित है, उस पर थोड़ा वक्तव्य है, जो आपके सामने रखता हूं।

परमात्मा की प्रार्थना परमात्मा में विलिन होने के लिए अनन्य भाव से की जाती है। यह आत्मा भय का मारा अनेक

लोगों का आसरा लेता फिरता है। भटकते भटकते जब उसे कहीं सुरक्षित सहारा न मिला तो वह इस परिणाम पर पहुंचता है कि जिसकी शरण में जाता हूं वह स्वयं भयभीत है। जो स्वयं भयभीत है वह दूसरों को निर्भय कैसे रख सकता है? भूखा व्यक्ति दूसरों को क्या खिला सकता है और प्यासा दूसरों की क्या प्यास बुझायेगा। जो खुद अनाथ है वह दूसरों को क्या शरण देगा? संसार के जिन २ लोगों की शरण में मैं गया वे सब मुझे अनाथ ही मालूम हुए। अतः ऐसे व्यक्ति की शरण में जाऊं जो स्वयं नाथ हो-निर्भय हो। इस प्रकार विचार कर भक्त कहता है—

विषम वाट घाट भय थानक, परमेश्वर शरणो तेरो।

जो परमात्मा का सदा सहायक बना रहता है। उसकी शरण जाने से आत्मा निर्भय बन जाती है। अनन्य भाव से परमात्मा की शरण होने के लिए ही प्रार्थना की जाती है। आप लोग अपनी आत्मा से पूछिये कि वह इतर पदार्थों का का ध्यान छोड़ कर अनन्य भाव से प्रभु की प्रार्थना करने के लिए तैयार है या नहीं? वैसे जबाब से कौन इन्कार करेगा कि मैं प्रभु शरण में नहीं जाना चाहता। किन्तु उसके साथ जो शर्त लगी हुई है उसे पुरा करना सरल काम नहीं है। अनन्य भाव प्राप्त करना संसार की झंझटों में फंसे हुए व्यवहारी व्यक्ति के लिए कठिन है। वह सोचता है कि यह मार्ग बड़ा विकट है। कहीं ऐसा न हो कि मैं बीच ही में अटक जाऊं। संसार के पदार्थ भी छूट जाय और परमात्मा भी न

मिले ऐसे विचार आना साधारण बात है। किन्तु ज्ञानी जन कहते हैं कि जीव ! तू परमात्मा की शरण में जाने का एक वार पक्का निश्चय करले। फिर सारे विघ्न अपने आप नष्ट हो जायंगे। अनन्य भाव से शरण गहने पर विघ्नों का क्या काम है।

खल दल प्रवल दुष्ट अति दारुण जो चौतरफ करे घेरो।
तदपि कृपा तुम्हारी प्रभुजी अरियन होय प्रगटे चेरो॥

भक्त कहते हैं कि हे प्रभो ! हमें ज्ञानियों से तेरी महिमा सुनकर विश्वास होता है कि जो तेरी शरण गहता है वह निर्भय वन जाता है। तलवार लेकर मारने के लिए समक्ष उपस्थित शत्रु भी तेरा शरण लेने से मित्र वन जाता है। मौत के घाट उतारे जाने के वक्त तिनके का सहारा मिल जाय तो उसे भी जीव स्वीकार करने के लिए तैयार हो जाता है। प्रभु का सहारा सदा तय्यार है किन्तु अपनी अज्ञानता से जीव उसे भूल जाता है। और छोटे मोटे सहारे ढूंढता फिरता है। अन्य लोगों का सहारा लेने से शत्रु अधिक शत्रुता धारण करता है। किन्तु वीतराग भगवान् का सहारा लेने से शत्रु भी शत्रुता छोड़ कर मित्र भाव धारण कर लेता है। भक्षक, रक्षक वन जाता है।

श्रद्धालु लोग विना कर्क वितर्क किये इस वात पर विश्वास कर लेंगे। किन्तु यह जमाना तो तर्कवाद का है।

यह वैज्ञानिक युग है। इस में हर बात तर्क पर कसी जाती है। यदि वह उसमें ठीक उतरे तब मानी जाती है। अतः इस विषय में थोड़ा और विचार किया जाता है।

क्या यह बात पूर्ण सत्य है कि परमात्मा की शरण में जाने से शत्रु भी मित्र बन जाते हैं? यदि ऐसा है तब तो राजा लोगों को सेना रखने की आवश्यकता नहीं। देश पर किसी विरोधी राजा के आक्रमण करने पर परमात्मा का शरण ग्रहण करने से काम चल जायगा। आक्रमण कारी फौरन मित्र बनकर सामने आजायगा। कितना सस्ता सौदा है यह! किन्तु बात ऐसी नहीं है। यह तो कोरी कल्पना है कि शत्रु मित्र बन जाता है। इस उपदेश से न मालूम देश किस स्थिति में पहुंच जायगा। सारा संसार अंधा धुन्धी में फंस जायगा।

इस तर्क का समाधान यह है। परमात्मा की शरण का जो विचार किया जा रहा है वह आध्यात्मिक दृष्टि से किया जा रहा है। आध्यात्मिक विचार को भौतिक कार्य से तोलना अनुचित है। लोग भौतिक बात को देखते हैं। किन्तु हमारी आत्मा का भला कैसे हो, इस आध्यात्मिक तत्त्व को नहीं देखते। शत्रु और मित्र तुम्हारी वृत्ति में रहे हुए हैं। यदि परमात्मा की शरण लेकर, जिसे तुमने शत्रु मान रखा है, मित्र बना लोगे तो भौतिक युद्ध की आवश्यकता न पड़ेगी। आध्यात्मिक शत्रु है इसलिए भौतिक शत्रु भी है। यदि मन में राग-द्वेष और लोभ मोह की भावना नहीं है तो बाहरी शत्रु कैसे टिक सकता है। वह मित्र बन जायगा। हमारे स्वार्थ के कारण

ही किसी को शत्रु या मित्र माना जाता है ! जब स्वार्थ ही न रहेगा तो शत्रु कैसे रह सकता है ! लोग केवल भौतिक बात को देखते हैं आध्यात्मिक को नहीं ! यह चालबाजी है ! यह अनन्य भाव से प्रभुशरण जाना नहीं है ! अनन्य भाव से शरण जाने का अर्थ है पहले आध्यात्मिक शत्रुओं—काम क्रोध लोभ भय मोह आदि को मिटाओ ! फिर भौतिक शत्रु नहीं रह सकते ! एक भक्त कहता है—

ताही ते आयो शरण तिहारी ।
काम क्रोध मद लोभ मोह रिपु, फिरत रैन दिन घेरी ।
तिनाहि मिलत मन भयो कुपथ रत फिरइ तिहारे हु फेरी ॥

जिस प्रकार काच में मुख देखकर मुख की कालिमा मिटाई जाती है उसी प्रकार इस प्रार्थना में अपना चरित्र देख कर उसे सुधारने का यत्न करो । आपके वास्तविक शत्रु कौन हैं इस बात को समझो । भक्त कह रहा है कि मुझे काम क्रोधादि शत्रुओं ने रात दिन घेर रखा है । कभी काम सताता है तो कभी क्रोध । कोई न कोई शत्रु सदा मेरे पीछे लगा रहता है । कभी २ यह इच्छा होती है कि मन के द्वारा इन शत्रुओं को दूर हटा दूं । किन्तु मन भी इन में मिल गया है । मन ने भी शत्रुओं का पक्ष ग्रहण कर रखा है । वह भी इन में मिल कर कुपथगामी हो गया है । जिस प्रकार किसी राजा का सेनापति अपने राजा से दगा करके शत्रु पक्ष से मिल जाता है वैसे ही मेरा मन मुझ से दगा कर के मेरे शत्रु काम

लोभादि से मिल गया है। मेरे शत्रु काम लोभादि से मिल गया है। मेरे शत्रुओं के साथ मिल कर मन ने उनका बल और अधिक बढ़ा दिया है। अतः हे प्रभो! अब मुझे तेरे सिवा अन्य कोई आधार नहीं है। तेरी थोड़ी सी कृपादृष्टि हो जायगी तो ये सारे शत्रु दुम दबाकर भाग जायेंगे।

इस तरह आध्यात्मिक शत्रुओं को हटाने के लिए प्रभु की शरण ली जाती है। जब आध्यात्मिक शत्रु न रहेंगे तो बाहर के भौतिक शत्रु कैसे रह सकते हैं। आप लोग अपने लिए विचार करो कि आप काम क्रोध आदि को बढ़ाने के लिए प्रार्थना करते हो या घटाने के लिए? ज्यादातर लोग काम क्रोधादि की वृद्धि के लिए भगवान् का आसरा लेते हैं। यह तो काम क्रोधादि की शरण जाना हुआ न कि परमात्मा की शरण गहना। विषयवासना मन में रखकर प्रभु की शरण लेना प्रभु का अपमान करना है। यदि प्रभु से वास्तविक प्रेम है तब तो मन में से अन्य सब वासनाओं को निकाल कर शुद्ध अनन्य भाव से भगवान् को स्थान देना चाहिए। कहना मेरा काम है किन्तु उस पर अमल करना आपका काम है। मैं अमल करूंगा तो मुझे लाभ होगा और आप अमल करेंगे तो आपको। जिसका काम जो करता है तभी लाभ होता है। प्रभु भी उसी की मदद करता है जो अपनी मदद आप करता है। गीता में भी स्पष्ट कहा है कि 'उद्धरेदात्मानात्मानम्' आत्मा का आत्मा से उद्धार करो। दूसरा कोई किसी का उद्धार करने में समर्थ नहीं है। आत्मा ही आत्मा का शत्रु मित्र है।

ऊपर से लोग यह कहा करते हैं कि हम अंतरंग शत्रुओं का नाश करने के लिए ईश्वर की शरण ग्रहण करते हैं। किन्तु ईमानदारी के साथ विचार करेंगे तो उन्हें पता लगेगा कि भीतर ही भीतर वे अंतरंग शत्रुओं का पोषण कर रहे हैं। भीतर में अनेक कामनायें छिपी पड़ी हैं। मन के अनन्त पटों के भीतर सूक्ष्म वासनाएं और इच्छाएं दबी पड़ी हैं। कभी वे छिपी रहती हैं और कभी निमित्त मिलने पर विकराल रूप धारण करके सामने आकर खड़ी हो जाती हैं। अतः तहमन तनमन से इन भीतरी शत्रुओं को बाहर निकाल फेंकने का प्रयत्न होना चाहिये। हम शत्रुओं से बचना चाहेंगे तो परमात्मा भी हमारी मदद करेगा। जो व्यक्ति कुछ काम ही नहीं करता है तो उसका मित्र उसकी क्या सहायता करेगा और किस काम में करेगा। परमात्मा आपको काम क्रोध आदि से बचाने के लिए सदा तत्पर बैठा है। आप अपना स्वार्थ त्यागकर दूसरों का हित साधन में लग जाओ। परमात्मा आपकी मदद पर दौड़ा आयेगा। यदि आप से यह उत्कृष्ट मार्ग न अपनाया जा सके तो मध्यम श्रेणी के पुरुष बनकर अपने स्वार्थ के साथ दूसरे का हित करो। यह तो मत करो कि अपने हित के लिए दूसरे की हानि करो।

बात करने में सब लोग अच्छी बातें करते [illegible]
व्यवहार में आचरण उस[illegible] देखा ज[illegible]
मनुष्य ने अपने शरीर पर [illegible] रखे [illegible]
बनियान जाकेट आदि ब[illegible] पहन[illegible]
उसको गर्मी हो रही है। [illegible] है

के लिए समझिये या रिवाज के लिए समझिये वस्त्र पहने हुए हैं। उधर एक दूसरा आदमी वस्त्र के अभाव में नंगे बदन फिर रहा है। ठंड से सिकुड़ रहा है। उसे वस्त्र की परम आवश्यकता है। क्या उस वस्त्र हीन व्यक्ति को देखकर व्यर्थ बोझा लादे हुए उस मनुष्य का चित्त अपना बोझा हल्का करके उसकी मदद करने का होता है? ऐसा बहुत विरल देखा जाता है। पास में भरी हुई वस्त्र की पेटियों में दीमक भले लग जाय मगर वे वस्त्र जरूरत मंदों के उपयोगमें न आ सकेंगे। इस प्रकार की भावना और आचरण वाले व्यक्ति क्या यह कह सकते हैं कि हम काम, क्रोधादि मिटाने के लिए प्रभु की शरण ग्रहण करते हैं। यदि वे एसा कहते हैं तो अपने आप को ठगते हैं।

एक आदमी तीन दिन से भूखा है। दूसरा भोजन कर रहा हैं। उस के पास भोजन की प्रचूर सामग्री है। उसके खाने के उपरांत एसी बहुतसी सामग्री है जिसे रख छोड़ने से उसके खराब हो जाने की संभावना है। फिर भी वह जिमने वाला आदमी भूखे को भोजन नहीं देता है। क्या ऐसी हालत में उस बुभुक्षु की नियत उस पेट भरे के प्रति अच्छी रहेगी ? क्या उसको क्रोध न आवेगा। क्या उसके मन में यह प्रतिक्रिया न होगी कि राक्षस इतना लेकर बैठा है फिर भी मुझ भूखे को कुछ नहीं देता है? इस प्रकार वह जीमने वाला उस भूखे का शत्रु बन जाता है और भूखा भी मन में उसके लिए विरुद्ध विचारणा बांध लेता है। इस स्वार्थपरता ने शत्रु पैदा कर लिया। यदि जीमने वाला

भूखे को देखकर प्रसन्न हो और उसे बड़े आदर और प्रेम से जीमाये तो वह उसका मित्र बन जाता है। भगवान् ने देने वाले को दाता का पद प्रदान किया है और मांगने वाले को याचक का। याचक सदा दाता का ऋणि रहता है। और उसका उपकार स्वीकार करता है। यह शत्रु और मित्र बनाने का रास्ता है। जिसे जो अच्छा लगे वह करे।

मैंने कई लोग ऐसे देखे हैं जिनके घरों में पुराने वस्त्रों के ट्रंक भरे पड़े हैं साल में एक बार उसको धूप खिलाकर वापस पेटियों में दाखिल कर देते हैं मगर उनका मन इस बात के लिए तय्यार नहीं होता कि ये वस्त्र हमारे काम में नहीं आते हैं, व्यर्थ मकान रोक रखा है, इनकी साल संभाल करनी पड़ती है, क्यों न इनको उन लोगों को दे दें जिनको इनकी सख्त जरूरत है। जब कई वर्ष तक उनकी साल संभाल करते करते वे कतई जीर्ण शीर्ण हो जाते हैं तब दूसरों को देने की बड़ी कठिनाई से हिम्मत होती है। किन्तु वे वस्त्र किसी के उपयोग लायक नहीं रह जाते। यह मनुष्य के मन की कितनी विडंबना है। इसी प्रकार मिठाई या अन्य खाद्य पदार्थ सड़ जाते हैं, उनमें बदबू या फूलन आ जाती है, जब वे खाने लायक नहीं रह जाते तब दूसरों को देने का मन होता है। यदि वे पदार्थ पहले ही दिये गये होते तो किसी की आत्मा उनसे तृप्त होती और उससे शुभ आशीर्वाद प्राप्त होता। किन्तु इतना उदार मन हो तब न? इस प्रकार की विषमवृत्ति शत्रु पैदा करती है। स्वयं भूखे रहकर दूसरों को तृप्त न कर

सको तो कम से कम अपने खा लेने के उपरान्त बचा हुआ अन्न तो दूसरों के लिए दे सकने का उदाहरण धारण करो।

इस संसार में ऐसे लोगों की भी नास्ति नहीं है जिन्होंने स्वयं भूखे रहकर दूसरों की आत्मा को शान्ति पहुंचाई है। पुराण में एक कथा है। एक चालीस दिनों से भूखे परिवार ने इकतालीसवें दिन भोजन मिलने पर भी स्वयं भूखे रहकर उससे अतिथि का सत्कार किया था। इतना न कर सको तो बढ़िया भोजन के बदले सादा भोजन बनाकर एक की जगह चार का पेट पाला जा सकता है। मन में दूसरे की भलाई करने की वृत्ति होनी चाहिये। सादा भोजन करने से स्वयं भी अनेक बुराइयों से बचा जा सकता है। इससे अपनी भलाई भी साथ साथ २ हो जाती है। यह दुष्काल का समय है एक ओर अनेक लोग भूखों मर रहे हैं और दूसरी ओर जाति भोज के नाम पर माल उड़ाया जा रहा है। यह कैसे ठीक माना जा सकता है? कदाचित् कोई कहे कि जाति भोजन तो होना चाहिये। उनसे मैं पूछता हूं कि क्या जाति वालों को सादा भोजन नहीं दिया जा सकता? जाति को लड्डू देने की क्या जरूरत है।

जो लोग यह कहते हैं कि हम लड्डू लिखाकर लाये हैं अतः लड्डू खाते हैं और भुखों मरने वाले भूखों मरना लिखाकर लाये हैं अतः भुखों मरते हैं। जिसने पूर्वजन्म में जैसा बोया है वह वैसा पाता है। यह ठीक है लेकिन भूखों मरने वालों की जगह यदि आप होते तो माल उड़ाने वालों

को क्या कहते। माना कि आप लड्डू लिखाकर लाये हैं और पुण्य से आपको लड्डू मिलते हैं किन्तु पुण्य से पुण्य बढ़ाना है या घटाना है। ठाणांग सूत्र के नवमें ठाणे में कहा है—

नव विहे पुण्णे पण्णत्ते तं जहा--अन्नपुन्ने पाण पुन्ने लयणपुन्ने आदि

अर्थात् अन्न से, पानी से, मकान से, पुण्य होता है। अन्न, पानी, मकान, शैया और वस्त्र देने से पुण्य होता है। मन वचन और काया से भी पुण्य होता है। नमस्कार करने से भी। भगवान् ने गौतम स्वामी से कहा कि हे गौतम! 'पुनातीति पुण्यम्' जो स्वयं को पवित्र बनाता है और जग का भी भला करता है वह पुण्य कहाता है। उन सब बातों को नव बातों में संग्रहित करके शास्त्रकार ने नव प्रकार का पुण्य बताया है। उन में सब से प्रथम अन्न पुन्ने हैं।

क्या अन्न पुण्य का मतलब ठूंस ठूंसकर खाना है? अधिक खाना अन्न पुण्य नहीं है। किन्तु अन्न को व्यर्थ न जाने देकर दूसरे को देना अन्न पुण्य है। मनुष्य खाने में भी पुण्य उपार्जन कर सकता है। उदाहरण के लिए समझिये कि एक आदमी यह सोचता है कि मैं भारी भोजन करके शरीर की हानि न करूं। किन्तु शरीर निभाना है अतः हल्का भोजन करके निभा लूं। तथा जो बचत का भोजन है उसे किसी भूखे को देकर उसे शान्ति पहुंचाऊं।' तो ऐसा करने से वह पुण्य उपार्जन करता है। इस प्रकार अन्न से पुण्य कमाया जा सकता है। लेकिन जो मनुष्य दूसरों का खयाल न करके खुद पेट

भर लेता है वह पाप पैदा करता है। जो पुण्य लेकर आया है उसे क्या पाप नहीं लग सकता ? एक आदमी को सुनहरी हीरा जटित म्यान वाली तलवार मिल गई। यद्यपि यह तलवार पुण्य से मिली है किन्तु क्या उसका दुरुपयोग पाप बंध का कारण नहीं हो जाता ? अवश्य होता है। उस तलवार से मनुष्य अपने व दूसरों के बंधन भी काट सकता है और अपना तथा दूसरों का गला भी। इस प्रकार पुण्य से प्राप्त वस्तु द्वारा पाप भी हो सकता है। कहावत है कि 'आ पत्थर मेरे पैर पर गिर' अथवा 'आ बैल मुझे मार'। यदि दोनों बातें सचमुच बन जायं तो कैसा रहे। पत्थर से भलाई भी की जा सकती है और बुराई भी। पत्थर का उसमें कोई दोष नहीं होता। दोष तो प्रयोक्ता की बुद्धि में रहा हुआ है। पाप से पुण्य और पुण्य से पाप उत्पन्न किया जा सकता है।

यदि कोई कहे कि हम दान क्या दें हमारे पास दान देने के लिए कुछ है ही नहीं। तो यह कहना गलत है। यदि इंसान अपना रहन सहन बदलकर सादा रहन सहन बनाले तो वह दूसरों की सहायता कर सकता है। जैसे बहुत से मनुष्य बीड़ी पीते हैं। बीड़ी पीने से क्या लाभ होता है ? यदि बीड़ी पीना छोड़ दिया जाय तो खुद का भी भला हो जाता है और उससे बची हुई रकम से दूसरों की सहायता भी की जा सकती है। इसी प्रकार नाटक सीनेमा देखकर अपना दिल और दिमाग खराब किया जाता है तथा आंखों की रोशनी और जागरण से शरीर को भी हानि पहुंचती है। पैसे का भी नुक्सान होता है। यदि नाटक सीनेमा न देखे जाय तो क्या

हानी है ? उनसे बची हुई रकम से दूसरों का भला हो सकता है। यदि नाटक सीनेमा मुफ्त में देखने को मिल जायं तो देखने में क्या हानि है ? ऐसा कहने वालों से मैं पूछता हूं कि यदि आपको मुफ्त में जहर खाने को मिल जाय तो क्या आप खाना पसन्द करेंगे ? वस्तु मुफ्त मिली है या कीमतन यह न देखो। मगर उससे आपको हानि होती है या लाभ, यह देखो।

जब वारनिश का रंग चला था तब के लिए यह कहा जाता है कि कम्पनी वाले मुफ्त में मकान रंग दिया करते थे और चाय वाले मुफ्त में चाय पिलाते थे। आपका मकान कैसा अच्छा बन जाता है कह कर रंग चढ़ा देते थे। किन्तु जब रंग उतर जाता और मकान की सुन्दरता चली जाती तब जाकर लोग कहते कि एक बार और रंग लगा दो। मगर कम्पनी वाले कहने लगते अब तो पैसा खर्च करो तब रंग मिल सकता है। चाय के पीने वालों को भी जब पीने की आदत लग गई तब पैसे लिये जाने लगे। शुरू में लोगों की आदत बिगाड़ने के लिए मुफ्त में चीजे दी जाती हैं। बाद में जब लोग उस वस्तु के आदी बन जाते हैं, मुफ्त में देना बंद कर दिया जाता है। मुफ्त में रंग लगाकर भारतवासियों को ऐसा शौक पैदा कर दिया कि अब करोड़ों रुपये इस निमित्त विदेश खींचे चले जाते हैं। इसी प्रकार फ्री नाटक सीनेमा दिखाकर आपकी आदत नाटक सीनेमा देखने की बना दी जाती है और आप गरीबों को चूस कर पैदा किया हुआ या चोरी डाका डाल कर लाया हुआ पैसा देकर नाटक सीनेमा देखने लग जाते हो।

स्त्रियां भी आज कल यह कहने लगी हैं कि नाटक सीनेमा न देखा तो हमारा मनुष्य जन्म किस काम का ? किसी मेहमान के आने पर उसे सीनेमा देखने के लिए ले जाने का आग्रह किया जाता है गांठ से पैसे देकर उसको ले जाया जाता है। मेहमान की खातिरदारी का यह नया तरीका चालू हुआ है। कितने भद्दे रिवाज दिनों दिन चालू हो रहे है। मानव समाज पतन की तरफ प्रयाण कर रहा है। यह अमूल्य मानव जन्म दूसरों की सेवा करने और काम क्रोधादि अंतरंग शत्रुओं को जीतने के लिए मिला है न कि अपनी आदतें और विगाड़ने के लिए। अब आपकी समझ में यह बात बैठ गई होगी कि बाहर के शत्रु ईश्वर भक्ति से कैसे दूर हो सकते हैं। राजनीति में और धर्म नीति में थोड़ा अंतर है। आध्यात्मिक शिक्षा को बाहरी बातों से तोलना ठीक नहीं हैं। जो राजा धर्म शिक्षा के अनुसार आचरण करता है उसे सेना रखने की जरूरत न होगी। उसके लिए चक्रवर्ती की ऋद्धि भी व्यर्थ है, तुच्छ है। उसके लिए बाह्य संपत्ति त्याग का मल है। आप लोग त्याग का महत्त्व समझ कर उसे अपनाओ तो कल्याण है।

कई लोग यह बात कहते हैं कि हम किसी पर उपकार क्या करें। आज कल लोग उपकार के बदले अपकार करने लगते हैं। उपकार का बदला चुकाना तो दूर रहा उपकार स्वीकार भी नहीं करते हैं। ऐसी दशा में किसी पर उपकार करने से क्या लाभ ? इसका मतलब तो यह हुआ कि जिसपर आपने उपकार किया है उसमें बुराई है। अपनी बुराई के

घाट घड़ा नानाविध जब मन इक उपाय मन आया।
कौमुदी महोत्सव निकट आवे तब काम करुं मन भाया। रे धन.।

जो लोग दूसरों का दोष न देखकर अपना ही देखते हैं और आत्म निरीक्षण करते हैं वे महापुरुष कहे जाते हैं। सुदर्शन ने घोर संकट में पड़ने पर भी यह विचार मन में न आने दिया कि ओह ! मैंने इतने दिनों तक धर्माराधन की फिर भी यह आपत्ति मुझ पर आ गई। धर्म से कष्ट नहीं होता और न धर्माराधन करने वाले लोग ऐसा मानते हैं। वे तो यह सोचते हैं कि धर्म की आराधना न होना ही सबसे बड़ा संकट है। संसार की मोज मजा में फंस जाने से बढ़कर और क्या विपत्ति होगी।

विपद् विस्मरणं शंभोः संपद् संस्मरणं विभोः।

शंभु अर्थात् परमात्मा का विस्मरण करना सबसे बड़ी विपत्ति है। ईश्वर भक्त लोग विपत्ति उपस्थित होने पर उसे धर्माराधन में बाधक न मानकर साधक मानते हैं। संतों का या महापुरुषों का मार्ग कुछ जुदा है।

कपिला की संगति से अभया रानी का मन कुछ का कुछ हो गया। वह अपना पद और मर्यादा भूल गई। मैं कौन हूं और मेरा पति कौन है तथा इस नीच कार्य से हमारी कितनी बदनामी होगी आदि सब बातें वह भूल गई। सच है, बुरे व्यक्ति की संगति से मनुष्य में बुराई आ जाती है। बुरी सोबत से बचकर रहना चाहिये।

अभया ने कपिला से कहा कि मैं किसी भी उपाय से सुदर्शन को काबू में करके रहूंगी। बेचारा सुदर्शन क्या है, तिरियाचरित्र से इन्द्र नरेन्द्र भी वश में किये जा सकते हैं।

कपिला के सामने प्रतिज्ञा करके अभया अपने मकान में आकर बैठ गई। वह उदास बैठी है। किसी गहरी चिन्ता में निमग्न है। उसके एक पंडिता नाम की धाय है। धाय दूध पिलाने वाली स्त्री को कहते हैं जो माता के समान गिनी जाती है। पंडिता को अपना मातृपक्ष सुरक्षित रखना चाहिये था। उसे लज्जित न करना था। माता का कर्त्तव्य है कि संतान को चरित्रशील बनावे किन्तु उसने इसके विपरीत कार्य किया। अपनी पुत्रीय समान अभया की दुश्चरित्रता में वह मददगार बनी। माता पिता भी संतान के शत्रु बन जाते हैं यह बात इस कथा से ज्ञात होती है। कदाचित् यह कहा जाय कि यह कथा तो पुरानी हो गई है क्या आजकल भी ऐसा होता है? हां, आजकल भी अपने अज्ञान के कारण माता-पिता संतान के लिए शत्रु का काम करते दिखाई देते हैं। माता सांपनी भी होती है और पिता बंदर भी होते हैं। किन्तु क्या वे अपनी संतान को खाने के लिए माता-[illegible] ! सर्पिणी अपने बच्चों को भूख के मारे खा भी [illegible] तथा बिलाड़े अपने बच्चों को गुस्से के [illegible] हैं। ये तो पशु हैं इनमें विवेक की बड़ी [illegible] कहा जाने वाला मनुष्य भी संतान का [illegible] पशु तो एक भव के लिए अनिष्ट करते [illegible] मूर्खता से संतान के अनेक भव बिगाड़ [illegible]

उदाहरणार्थ समझिये कि बालक यह नहीं जानता कि उसे जेवर पहनना चाहिये या नहीं। उसे न तो सोना चांदी के जेवर पहनने का शौक है और न वह उसकी कीमत ही जानता है। फिर भी माता पिता बच्चों को गहने पहनाते हैं या नहीं? गहनों के कारण बच्चों की जान चली जाती है फिर भी लोग गहने पहनाना नहीं छोड़ते। इसी प्रकार अन्य आदतें भी ऐसी डाल दी जाती हैं कि जन्म भर बच्चे दुःख पाते हैं। ऐसी भद्दी और कुसंस्कारी बातें बच्चों के दिमाग में बैठा दी जाती हैं कि वे मा-बाप कहलाने वाले भी बालक के शत्रु बन जाते हैं। नीति का यह पद आपने सुना होगा।

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।

वह माता शत्रु है और पिता वैरी है जिसने अपने बच्चे को नहीं पढ़ाया है। किन्तु संतान के झूठे प्रेम में फंसकर कितने माता पिता अपने बच्चों को मूर्ख रख देते हैं। क्या ऐसे माता-पिता पंडिता धाय से कुछ कम हैं?

पंडिता, अभया के दुश्चरित्र में मददगार बनने के लिए जाती है। अभया को उदासीन बैठी देखकर वह कहने लगी कि आज इतनी अन्यमनस्का क्यों हो। मैं सदा आपकी हर प्रकार की सेवा करने के लिए तय्यार हूं। अभया ने कहा, क्या बताऊं पंडिता! मैं बड़ी अभागिन हूं। पंडिता बोली—राजा तेरे इशारों पर नाचता है। फिर तू अभागिन कैसी? अभया कहने लगी कि जब तक मन की कामना पूरी न हो

तब तक अभागिन ही हूं। पंडिता बोली—मेरे रहते तेरी मनोकामना अपूर्ण रहे तब तो मेरा जन्म व्यर्थ है। अभया बोली—मेरे सद्भाग्य से तुम जैसी चतुर धाय माता और सहायिका मिली हो। किन्तु क्या कहूं? तुम्हारे सामने मन की बात कहने में भी लज्जा और दुःख होता है।

प्रत्येक बुरा काम करते वक्त एक बार आत्मा हिचकिचाती है। उसे यह विवेक होता है कि यह काम अच्छा नहीं है। किन्तु आदत से लाचार होकर इन्सान बुरी प्रवृत्ति में फंसता है और आत्मा की आवाज को सुनी अनसुनी कर देता है।

अभया का कथन सुनकर पंडिता कहने लगी तब तो तू तुझ में और मुझ में भेद मानती है। जैसे अन्य लोग वैसी मैं भी। मैं तेरी वही बात जान सकती हूं जो दूसरे सब जान सकते हैं। दूसरे लोग तेरी जिस बात को न जान सकें वह बात मैं भी जानने की अधिकारिणी नहीं हूं। ऐसा होना तो नहीं चाहिये। मुझ से अपनी मनोगत बात न छिपानी चाहिये। तू ईश्वर से भले कोई बात छिपा मगर मुझ से मत छिपा। मैं तुझ को विश्वास दिलाती हूं कि जो काम ईश्वर भी नहीं कर सकता वह मैं कर सकती हूं।

अभया कहने लगी—मेरी प्यारी माता! मैं भूल में थी। तुम मेरी हो और मेरी ही रहोगी। मैं अपना दुःख तुम्हारे सामने प्रकट न करूंगी तो किसके सामने प्रकट करूंगी। हमारे नगर में सुदर्शन नाम का जो सेठ रहता है वह बड़ा

धर्म ढोंगी है। वैसे तो मैं यह चाहती हूं कि संसार से धर्म का नाम ही उठ जाय ताकि 'न रहे बांस न बजे बांसरी'॥ किन्तु इस वक्त पहला काम है सुदर्शन को काबू में करना। मैं कपिला के सामने इस वनिये को काबू में करने की प्रतिज्ञा करके आई हूं। यह वनिया उसके वश में न आया। उसकी इज्जत भी गई और काम न बना। मैंने उससे कह दिया है कि मैं उसे वश में किये विना तेरे को मुख न दिखाऊंगी।

पंडिता कहने लगी कि बस इस साधारण सी बात के लिए तू इतनी उदास हो गई और चिन्ता करने लगी। बड़े २ इन्द्र धरेन्द्रों को भी तेरे वश में करा सकती हूं। बेचारा वह वनिया क्या चीज है। तुम चिन्ता छोड़ो। मैं उसे लाकर तेरे चरणों में छोड़ दूंगी। मगर एक बात है। मैं उसे लाकर एकान्त में तुझ से मिला दूंगी। फिर तुम जानों और तुम्हारा काम जाने। आगे का सारा काम तुमको खुद करना होगा।

अभया बोली—पण्डिता! इससे अधिक और क्या चाहिये। तुम तो उसे लाकर मुझसे एकान्त में भेंट करा दो। फिर सारा काम मैं निपट लूंगी।

पंडिता ने कुछ दिनों में कार्य कर दिखाने की बात कही। अब अभया प्रसन्न मन हो गई। उसके दिल में हौंस आ गया। मगर पंडिता चिन्ता में पड़ गई कि इस काम को कैसे पार लगाना। सुदर्शन बड़ी धर्मनिष्ठा वाला व्यक्ति है। वह पर घर प्रवेश नहीं करता। इसलिए उसे लाना तो कैसे लाना।

विपरीत ज्ञान में भी बहुत शक्ति होती है। जो उल्टी दिशा में सोचता है उसका ज्ञान विपरीत गिना जाता है। है तो वह भी ज्ञान ही। किन्तु उसका प्रयोग यदि उल्टा हुआ तो आत्मा नीचे गीर जाती है।

पण्डित सुदर्शन को फांसने के लिए अपने ज्ञान के घोड़े दौड़ाने लगी। वह अपने तरीकों के हानि लाभ और सुविधा असुविधाओं का ध्यान करने लगी। मन में अनेक घाट घड़े और उन्हें विखेर दिया। वह सोचती थी यदि ऐसा करूंगी तो ऐसा हो जायगा और वैसा करूंगी तो कैसा रहेगा आदि। अंत में एक युक्ति उसे सूझ आई। देव पूजन के बहाने सुदर्शन को रानी के पास महल में लाना ठीक रहेगा।

यह उपाय सोचकर पण्डिता बड़ी प्रसन्न हुई। अभया ने उसे देखकर पूछा कि धाय! आज तुम बहुत प्रसन्न दिखाई देती हो। क्या बात है? पंडिता बोली कि मैंने तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करने का भार अपने ऊपर लिया है। उसकी सिद्धि का उपाय मुझे मालूम हो गया। अतः प्रसन्न हूं। अभया पूछने लगी कि क्या उपाय सोचा है, मुझे भी बतादे। पंडिता ने कहा—कामदेव की पूजा से तुम्हारा मनोरथ सिद्ध होगा। क्या देव को बुलाओगी? पूछने पर पंडिता बोली कि देव तो न आते हैं और न जाते हैं। यह तो बहाना मात्र है। हमें इस बहाने से अपना प्रयोजन सिद्ध करना है। कौमुदी महोत्सव मनाया जाय। उत्सव को सिपाही या राजा कोई नहीं रोक सकता। उस उत्सव पर कामदेव की मूर्ति बनाकर बाहर ले

जाना और भीतर लाना। कार्तिकी पूर्णिमा के दिन सेठ सुदर्शन पौषध शाला में बैठता है। उस समय उसको महल में तुम्हारे पास ले आऊंगी।

पंडित द्वारा बताया गया उपाय सुनकर अभया बहुत खुश हुई। उसने उस की प्रशंसा की और इनाम के तौर पर एक हार दिया। साथ में यह भी कह दिया कि यह हार तो उपाय सोचने का उपहार है। कार्य पूराकर देने पर विशेष पुरस्कार दूंगी।

लोभ क्या नहीं कराता। लोभ के वश होकर पिता पुत्र को पुत्र पिता को पत्नी पति को और पति पत्नी को मार डालते हैं। बच्चों को पढ़ाई जाने वाली एक बाल पोथी में लिखा है कि **लोभ पाप का बाप** है। सच ही लिखा है। सारे अनर्थों की जड़ लोभ है पंडिता लोभ के वश होकर इस अनीति पूर्ण कार्य में जुटी है। संसार में अनेक पक्ष हैं। एक पक्ष सेठ सुदर्शन का है। और एक पक्ष कपिला अभया और पंडिता का भी है। हमें यह सोचना चाहिये कि हम कौनसा पक्ष ग्रहण करें। यदि हमें सेठ सुदर्शन का पक्ष ग्रहण करना है तो एक बार सच बोलो—

धन सेठ सुदर्शन शियल शुद्ध पाली तारी आत्मा।

सुदर्शन ने कष्ट में पड़कर भी शील भंग नहीं किया। किन्तु वर्तमान में अनेक भाई प्रसन्न होकर शीलभ्रष्ट हो रहे

हैं। बल्कि जो व्यक्ति शील पालन करना चाहता है उसको कष्ट में डालते हैं और उसे भ्रष्ट करने की चेष्टा में रहते हैं। साथ गरीबों से अपनी बुद्धि चातुरी से पैसे छीनकर नाटक सीनेमा आदि बुरे कामों में लगाते हैं। इन सब बातों पर विचार करो और गरीबों की सहायता करो। बोलशेविज़्म को रोकने का उपाय अपने गरीब और दुःखी देशवासियों की तन मन धन से सेवा करना ही है। यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो बोलशेविजम आपके सिर पर मंडरा रहा है। आपको कष्ट में पड़ना पड़ेगा।

आप सुदर्शन को आदर्श मानकर दूसरों की बुराई न देखते हुए अच्छे काम करते जाओ तो आपका सदा कल्याण है।

३०–८–३६
राजकोट

समाप्त

मण्डल से प्राप्य पुस्तकें ।

१ पुष्प अहिंसा व्रत ।)
२ ,, सकडाल पुत्र ।-)
३ ,, -धर्म व्यवस्था ।=)
४ ,, -सत्य व्रत ।)
५ ,, -हरिश्चंद्र तारा १।)
६ ,, -अस्तेय व्रत ≡)
७ ,, -सुबाहुकुमार
८ ,, -ब्रह्मचर्य व्रत ।-)
९ ,, -सनाथ अनाथ निर्णय ।।।=)
१० ,, रुक्खमणी विवाह ।।।)
११ ,, -सती राजमती ।।-)
१२ ,, सती चन्दनबाला १।)
१३ ,, परिग्रह परिमाणव्रत ।)
१४ ,, सुदर्शन चरित्र ।।।)
१५ ,, सेठ धन्नाजी ।।।)
१६ गुण व्रत ।=)
१७ ,, -मदनरेखा ।।।)
१८ ,, -चार शिक्षा व्रत ।।)
१९ ,, -भगवती प्र. भा. १)
२० ,, - ,, द्वि. भा. १।)
२१ ,, - ,, तृ. ,, १।।)
२२ ,, -सम्यक्त्व स्वरूप ।)
२३ ,, -भगवती ४ भा. १।)
२४ ,, - ,, ५ ,, १।)
२५ ,, - ,, ६ ,, १।।)
२६ ,, -अनुकम्पा विचार (भावार्थ सहित) १ भाग १।।)
२७ राजकोट व्याख्यान १)
२८ अनुकम्पा विचार भाग दूसरा १।।)
जीवन संस्मरण ।)
मुखवस्त्रिका सिद्धि ।)
कर्म प्रकृति =)
स्वर्गीय पूज्य श्रीश्रीलालजी म. का जीवन चरित्र १)
सृष्टि कर्त्तव्य मिमांसा -)
तीर्थंकर चरित्र १ भाग ।।=)